विराटा की पद्मिनी

(ऐतिहासिक उपन्यास)

डॉ० वृन्दावनलाल वर्मा

मयूर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, झाँसी (उ० प्र०)
शाखा : झाँसी दतिया (म० प्र०)

प्रकाशक :—
सत्यदेव वर्मा बी० ए०, एल०-एल० बी०
मयूर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, झाँसी

तेरहवाँ संस्करण १९८६
मूल्य रु० ९–०० मात्र

मुद्रक :—
स्वाधीन प्रेस, जवाहर चौक, झाँसी

परिचय

सुल्तानपुरा (परगना मोंठ, जिला-झाँसी) निवासी श्री नन्दू पुरोहित के यहाँ मैं प्रायः जाया करता था। उन्हें किवदंतियाँ और कहानियाँ बहुत आती थीं। वह कहते-कहते कभी नहीं थकते थे, चाहे सुनने वालों को सुनते-सुनते नीद भले ही आ जाय।

एक रात मैं उनके यहाँ गया। नीद आ रही थी, इसलिये एक कहानी कहने के लिये प्रार्थना की। जरा हँसकर बोले—'तुम भाई, सो जाते हो। कहानी समाप्ति पर 'ओफ्फो!' कौन कहेगा?'

मैंने उनसे कहा—'काका, आज नहीं सोऊँगा, चाहे होड़ लगा लो।'
'अच्छा' वह बोले—'भैया, मैं आज ऐसी कहानी सुनाऊँगा, जिस पर तुम कविता बनाकर छपवा देना।'

वह पढ़े-लिखे न थे इसलिये हिन्दी की छपी हुई पुस्तकों को प्रायः कविता की पोथियाँ कहा करते थे।

'विराटा की पद्मिनी' की कहानी उन्होंने सुनाई थी। यह कहानी सुनकर मुझे उस समय तो क्या, सुनने के बाद भी बड़ी देर तक, नींद नहीं आई। परन्तु खेद है, उसके प्रस्तुत रूप के समाप्त होने के पहले ही उन्होंने स्वर्गलोक की यात्रा कर दी, और मै उन्हें परिवर्तित और सम्वर्द्धित-रूप में यह कहानी न बता पाया!

पद्मिनी की कथा जहाँ-जहाँ दाँगी है, झाँसी-जिले के बाहर भी प्रसिद्ध होगी। उपन्यास लिखने के प्रयोजन से मैने नन्दू काका की सुनाई हुई कहानी के प्रचलित अंशों की परीक्षा करने के लिये और कई जगह उसे सुना। विराटा के एक वयोवृद्ध दांगी से भी हठ-पूर्वक सुना। उस वयोवृद्ध ने मुझसे कहा था—'अब का धरो इन बातन में? अपनो काम देखो जू। अब तो ऐसे-ऐसे मनुष होने लगे कै फूक मार दो, तो उड़ जायँ।' इसके पश्चात मैंने विराटा रामनगर और मुसावली की दस्तूर-देहियाँ सरकारी दफ्तर में पढ़ी। उनमें भी पद्मिनी के बलिदान का सूक्ष्म वर्णन पाया। मुसावली की दस्तूरदेही में लिखा है कि मुसावली—

पीठ के नीचे के दो कुओं को एक वार दतिया के महाराज ने खुदवाया था। कुयें पक्के थे, परन्तु अब अस्त-व्यस्त हैं।

देवीसिंह लोचनसिंह, जनार्दन शर्मा, अलीमर्दान इत्यादि नाम काल्पनिक है, परन्तु उनका इतिहास सत्य-मूलक है। देवीसिंह का वास्तविक नाम इस समय नही वतलाया जा सकता। अनेक कालों की सच्ची घटनाओं का एक ही समय में समावेश कर देने के कारण मैं इस पुरुप के सम्बन्ध की घटनाओं को दूसरी घटनाओं से अलग करके वत-लाने में असमर्थ हूं। जनार्दन शर्मा का वास्तविक व्यक्तित्व एक दुःखांत घटना है, जिस तरह जनार्दन शर्मा ने जाल रचकर देवीसिंह को राज्य दिलाया था, उसी तरह वह इतिहास और किंवदंतियों में भी प्रसिद्ध है, परन्तु वास्तविक जनार्दन का अन्त बड़ा भयानक हुआ था।

कहा जाता है, राजा नायकसिंह के वास्तविक नामधारी राजा के मर जाने के वाद उनकी रानी ने प्रण किया था कि जव तक जनार्दन (वास्तविक व्यक्ति) का सिर काट कर मेरे सामने नहीं लाया जायगा, तव तक मैं अन्न ग्रहण न करूँगी। रानी का एक सेवक जव उस वेचारे का सिर काट लाया, तव उन्होंने अन्न ग्रहण किया। यह घटना झाँसी के निकट के एक ग्राम गोरामछिया की है।

लोचनसिंह के वास्तविक रूप को इस संसार में विलीन हुये लगभग वीस वर्ष से अधिक नही हुये। वह वहुत ही उद्दण्ड और लड़ाकू प्रकृति के पुरुष थे। मेरे मित्र श्रीयुत् मैथिलीशरण जी गुप्त ने उनके एक उद्दण्ड कृत्य पर 'सरस्वती' में 'दास्ताने' शीर्षक से एक कविता भी लिखी थी।

परन्तु जैसा मैं पहले कह चुका हूं उपन्यास–कथित घटनायें सत्य मूलक होने पर भी अपने अनेक कालों से उठाकर एक ही समय की लड़ी मे गूथ दी गई है, इसलिये कोई महाशय उपन्यास के किसी चरित्र को अपने वास्तविक रूप का सम्पूर्ण प्रतिविम्व न समझें और यदि कोई वात ऐसे चरित्र की उन्हें खटके तो वुरा न मानें। इसी कारण मैं-उपन्यास-वर्णित मुख्य चरित्रों का विस्तृत परिचय इस समय न दे सका।

विराटा की पद्मिनी

[१]

मकर-संक्रांति के स्नान के लिये दलीपनगरी के राजा नायकसिंह पहूज में स्नान करने के लिये विक्रमपुर आये। विक्रमपुर पहूज-नदी के बायें किनारे पर बसा हुआ था। नगर छोटा-सा था, परन्तु राजा और राजसी ठाट-बाट के इकट्ठे हो जाने से चहल-पहल और रौनक बहुत हो गई थी।

दूसरे दिन दोपहर के समय स्नान का मुहूर्त था। बिना किसी काम के ही राजा के कुछ दरबारी सन्ध्या के उपरान्त राजभवन में मुजरा के बहाने गपशप के लिये आ गये। जनार्दन शर्मा मन्त्री न था, तथापि राजा उसे मानते बहुत थे। वह भी आया।

बातचीत के लिये सिलसिले में राजा ने जनार्दन से कहा—'पहूज मे तो पानी बहुत कम है। डुबकी लगाने के लिये पीठ के बल लेटना पड़ेगा।'

'हाँ महाराज!' जनार्दन ने सकारा—'पानी मुश्किल से घुटनों तक होगा। थोड़ी दूर पर एक कुण्ड है, उसमें स्नान हो, तो वैसी मर्जी हो।'

अधेड़ अवस्था का दरबारी लोचनसिंह, जो अपने सनकी स्वभाव के लिये विख्यात था, बोला—'दो हाथ के लम्बे-चौड़े उस कुण्ड में डुबकी लगाकर कीचड़ उछालना होली के हुल्लड़ से कम थोड़े ही होगा।'

जिससमय लोचनसिंह राजा के सामने बातचीत करने के लिये मुंह खोलता था, अन्य दरबारियों का सिर घूमने लगता था। उमर के साथ-साथ राजा के मिजाज मे गरमी बढ़ गई थी। बहुधा आपस में अकेले

में, लोग कहा करते थे, पागल हो गये हैं। लोचनसिंह की बात पर राजा ने गरम होकर कहा—'तब तुम सबों को कल कोस-भर नदी खोदकर गहरी करनी पड़ेगी।'

लोचनसिंह बोला—मैं अपनी तलवार की नोक से कोस-भर पहूज-नदी तो क्या बेतवा को भी खोद सकता हूं। हुक्म भर हो जाय।'

राजा को कोप तो न हुआ, परन्तु खीज कुछ बढ़ गई। कुछ कहने के लिये राजा एक क्षण ठहरे। सैयद आगा हैदर राजवैद्य एक सावधान दरबारी था। मौका देखकर तुरन्त बोला—'महाराज की तबियत कुछ दिनो से खराब है। धार्मिक कार्य थोड़े जल से भी पूरा किया जा सकता है। अगर मुनासिब समझा जाय, तो गहरे, ठण्डे पानी मे देर तक डुबकी न ली जाय।'

लोचनसिंह तुरन्त बोला—'ऐसी हालत में मैं महाराज को पानी में अधिक समय तक रहने ही न दूंगा। जितना पानी इस समय पहूज में है, वह बीमारी को सौ-गुना कर देने के लिये काफी है!'

राजा ने दृढ़तापूर्वक कहा—'यही तो देखना है लोचनसिंह। बीमारी बढ़ जाय, तो हकीमजी के हुनर की परख हो जाय और यह भी मालूम हो जाय कि तुम मुझे पानी में एक हजार डुबकियाँ लगाने से कैसे रोक सकते हो?'

लोचनसिंह बोला—'हकीमजी का कहना न मानकर जब महाराज को डुबकी लगाने पर उतारू देखूंगा, तब अपना गला काटकर उसी जगह डाल दूंगा, फिर देखा जायगा, कैसे हौसला होता है।'

लोचनसिंह की सनक से राजा की भड़क का ज्वर बढ़ा। बोला—शर्माजी पहूज में स्नान न होगा। उसमे पानी नही है। पहले तुमने नही बतलाया, नही तो इस कम्बख्त नदी की तरफ सवारी न आती।'

'महाराज, महाराज!' जनार्दन ने सकपकाकर कहा—'मुझे स्वयं पहले से मालूम न था।'

राजा बोले—'बको मत। तुम्हारे षणयन्त्रों को खूब समझता हूं। कुञ्जरसिंह को बुलाओ।'

कुञ्जरसिंह राजा की दासी का पुत्र था। वह राज्य का उत्तराधिकारी न था, तो भी राजा उसे बहुत चाहते थे। राजा के दो रानियाँ थीं। बड़ी रानी उसे चाहती थी, इसलिये छोटी का उस पर प्यार न था। राजा बहुत वृद्ध न हुये थे। इधर-उधर के कई रोगों के होते हुये भी राजवैद्य ने आशा दिला रक्खी थी कि उत्तराधिकारी उत्पन्न होगा। इसीलिये राजा ने दूसरा विवाह भी कर लिया था और दासियों के बढ़ाने की प्रवृत्ति में भी चाहे पागलपन से प्रेरित होकर चाहे किसी प्रेरणा-वश, बहुत अधिक कमी नहीं हुई थी। यह देखकर राजसभा के लोगों को विश्वास था किसी-न-किसी दिन पुत्र उत्पन्न होगा।'

कुञ्जरसिंह आया। २०–२१ वर्ष का सौन्दर्यमय बलशाली युवा था। राजा ने उसे अपने पास बिठलाकर कहा—'कल पहूज में स्नान न होगा।'

'क्यों काकाजू?' कुञ्जरसिंह ने संकोच के साथ पूछा।

'इसलिये कि उसमें पानी नही है।' राजा ने उत्तर दिया—'हमको व्यर्थ ही यहाँ लिवा लाये।'

कुञ्जरसिंह राजा के विक्षिप्त स्वभाव से परिचित था। जनार्दन और लोचनसिंह ने कहा 'हकीम जी कहते है, नहाने से बीमारी बढ़ जायगी।'

कुञ्जरसिंह ने धीरे से कहा—'दलीपनगर में ही मालूम हो जाता तो यहां तक आने का कष्ट महाराज को क्यों होता?'

आत्मरक्षा में हकीम को कहना पड़ा—'थोड़ी देर के स्नान से कुछ नुकसान न होगा।'

राजा बोले—'अब पालर की झील में डुबकी लगाई जायगी, बड़े सबेरे डेरा पालर पहुंच जाय।'

पालर ग्राम विक्रमपुर से चार कोस की दूरी पर था। चारों ओर

पहाड़ों से घिरी हुई पालर की झील में गहराई बहुत थी। उसमें डुबकियाँ लगाने के परिणाम का अनुमान करके आगा हैदर काँप गया। बोला—'ऐसी मर्जी न हो। झील बहुत गहरी है और उसका पानी बहुत ठण्डा है।'

'और तुम्हारी दवा घूरे पर फेकने लायक।' राजा ने हँसकर और फिर तुरन्त गम्भीर होकर कहा—'तुम्हारे कुश्तों में कुछ गुण होगा और तुम्हारी शेखी में कुछ सचाई, तो झील में नहाने से कुछ न बिगड़ेगा। नही तो रोज-रोज के मरने से तो एक ही दिन मर जाना कही अच्छा।'

जनार्दन विषयान्तर के प्रयोजन से बोला—'अन्नदाता, सुना जाता है पालर में एक दाँगी के घर दुर्गाजी ने अवतार लिया है। सिद्धि के लिये उनकी बड़ी महिमा है।'

'तुमने आज तक नही बतलाया ?' राजा ने कड़ककर पूछा और तकिये पर अपना सिर रख लिया।

लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'सुनी हुई खबर है। गलत निकलती तो कहने वाले को यों ही अपने सिर की कुशल के लिये चिन्ता करनी पड़ती।'

'चुप-चुप।' राजा ने तमककर कहा—'बहुत बड़बड़ मत करना, नही तो पीछे पछताओगे।'

'मूड़ ही कटवा लेंगे आप ?' लोचनसिंह अदम्य भाव से बोला—'सो उसका मुझे कुछ डर नहीं है।'

राजा प्रतिहत से हो गये।

उपस्थित उलझाव का एक ही सुलझाव सोचकर कुञ्जरसिंह ने कहा—'काकाजू, पालर चलकर संक्राँति का स्नान हो जाय और उस अवतार-कथा की भी मीमांसा कर ली जाय।'

किसी दरबारी को विरोध करने का साहस नही हुआ। लोचनसिंह कोई नवीन उत्तेजनापूर्ण बात कहने को ही था कि राजा ने जनार्दन से प्रश्न किया—'इस अवतार को हुये कितने दिन हो गये ?'

'सुनता हूँ अन्नदाता कि वह लड़की अब १६-१७ वर्ष की है।' जनार्दन ने राजा को प्रसन्न करने के लिये उत्तर दिया—'पालर में तो उसके दर्शनों के लिये दूर-दूर से लोग आते है।'

राजा ने कहा—'कल देखूंगा।'

जनार्दन जी कड़ा करके बोला—'परन्तु महाराज।'

'हर बात में परन्तु।' राजा ने टोककर कहा —'क्या परन्तु ?'

'पालर बड़नगर वालों के राज्य में है।' जनार्दन ने उत्तर दिया—'बिना पूर्व-सूचना के पराये राज्य से जाने का न-मालूम क्या अर्थ अनर्थ लगाया जाय। सब तरफ गोलमाल छाया हुआ है। दिल्ली में तो गड़बड़ ही मची हुई है।'

राजा ने बात काट कर कहा—'तुम दलीपनगर को गड़बड़ में डाल दोगे। देखो शर्मा, एक बात है हम पालर मे डाका डालने तो जा नहीं रहे है, जो पहले से बड़नगर वालों को सूचना दें। वे हमारे भाई-बन्ध है। कोई भय की बात नहीं। तैयारी कर दो।'

आगा हैदर को भी राजा की हाँ-में-हाँ मिलानी पड़ी—'कोई डर नहीं शर्माजी, किसी साँडनी-सवार के जरिये सूचना भिजवा दी जाय। बड़नगर यहाँ से बहुत दूर भी नही है। यदि दूरी का मामला होता, तो और बात थी।'

[२]

दूसरे दिन राजा ने पालर की विशाल झील में, जो आज-कल गढ़मऊ की झील के नाम से विख्यात है, खूब स्नान किया। बीमारी बढ़ी या नहीं यह तो उस समय किसी ने नहीं जाना परन्तु राजा के दिमाग को कुछ ठण्डक जरूर मिली और वह उस दिन उतने उतावले नहीं दिखलाई पड़े। अवतार की बात वह भूल गये और किसी ने उन्हें उस समय स्मरण भी नहीं दिलाया।

स्नान करने के वाद कुञ्जरसिंह को उक्त अवतार के दर्शन की लालसा हुई।

१५–१६ वर्ष पहले नरपतिसिंह दांगी के घर लडकी उत्पन्न हुई थी। जव वह गर्भ में थी, उसकी मां विचित्र स्वप्न देखा करती थी। लड़की के उत्पन्न होने पर पिता को ऐसा जान पडा मानो प्रकाशपुज ने घर में जन्म लिया हो। उसकी माँ लड़की को जन्म देने के कुछ मास उपरात मर गई।

नरपति दुर्गा का भक्त था और जागते हुये भी स्वप्न-से देखा करता था। गाँव वाले उसे श्रद्धा और भय की दृष्टि से देखते थे।

वह कन्या रूप-राशि थी। उस पर देवत्व के आरोप होने मे विलम्ब न हुआ। अविश्वास कराने के लिये कोई स्थान न था। वालिका दांगी की लड़की में इतना रूप, इतना सौन्दर्य कभी न देखा गया था। गाँव के मन्दिर में दुर्गा की मूर्ति थी, शिल्प की कला ने उसे वह रूप रेखा नही दे पाई थी, जो इस बालिका में सहज ही भासित होती है। ज्यों-ज्यों उसने वय प्राप्त किया, त्यों-त्यों अङ्ग सुडोल होते गये, सौन्दर्य की विभूति वढती, निखरती गई और गांव वाले नरपतसिह की उस कन्या को किसी निभ्रान्त सिद्धान्त की तरह स्वीकार करते गये। कभी विश्वास से फल हुआ और कभी नही भी। पहले बालिका की पूजार्चा वहुधा नरपतिसिह के ही घर पर होती रही, पीछे बालिका द्वारा मन्दिर मे स्थापित मूर्ति की पूजा कराई जाने लगी। जैसे आरम्भ में लोग नव निर्मित मन्दिर मे वहुधा पूजन के लिये जाया करते है और कुछ समय वाद अपने घर मे ही वैठे वैठे मन्दिर मे स्थापित मूर्ति की वन्दना करने लगते है, उसी तरह नरपतिसिह की कन्या के प्रति कई वर्ष गुजर जाने पर भी अविश्वास या अश्रद्धा तो किसी ने भी प्रकट नही की परन्तु पूजा का रूप पलट गया। अटक-भीर पड़ने पर कभी-कभी कोई-कोई प्रत्यक्ष पूजा भी कर लेता था। परन्तु देवी के नाम पर शुरू-शुरू में जो वड़े वड़े मेले लगे थे उनमें

क्षीणता आ गई। लोगों के आश्चर्य में ओज न रहा। उस कन्या को देवी का अवतार मानते हुये न केवल गाँव के लोग ठठ–के–ठठ जमा होकर उसके घर पर या मन्दिर में जाते थे बल्कि बाहर के दूर–दूर के लोग भी अब मानता मान-मानकर आते थे।

कुञ्जरसिंह के मन में देवी के दर्शन की इच्छा तो हुई, परन्तु लज्जाशील होने के कारण अकेले जाने की हिम्मत नहीं पड़ी। कोई शायद पूछ बैठे-'क्यों आये ? देवी अवश्य है युवती भी है।' संयोग से लोचनसिंह मिल गया। साथ के लिये सुपात्र-कुपात्र की अपेक्षा न करके लोचनसिंह ने कहा—'दाऊजू, देवी-दर्शन के लिये चलते हो ?'

उसने उत्तर दिया-'किन बातों में पड़े हो राजा ? दाँगी की लड़की दुर्गा नही होती। देहात के भूतों ने प्रपञ्च बना रक्खा होगा।'

कुञ्जरसिंह की इच्छा ने जरा हठ का रूप धारण किया। बोला—'अवतार के लिये कोई विशेष जाति नियुक्त नही है, देख न लो ?'

लोचनसिंह ने विरोध नही किया। आगे आगे लोचनसिंह और पीछे पीछे कुञ्जरसिंह नरपतिसिंह के मकान का पता लगाकर चले। वह घर पर मिल गया।

लोचनसिंह ने बिना किसी भूमिका के प्रस्ताव किया—'तुम्हारी लड़की देवी है ? दर्शन करेंगे।'

नरपति की बड़ी-बड़ी लाल आँखो मे आश्चर्य छिटक गया। बोला-'कहां के हो ?'

'दलीपनगर के राजकुमार।' उत्तर देते हुये लोचनसिंह ने कुन्जर की ओर इशारा किया।

'इस तरह दर्शन करने के लिये तो यहाँ देवता भी नहीं आते। सन्देह के स्वर में नरपति ने कहा।

'तब किस तरह देख पायेंगे ?'

'मन्दिर में जाओ।'

कुञ्जरसिंह की हिम्मत टूट गई। लौट पड़ने की इच्छा हुई। परन्तु पैर वहीं अड़-से गये। धीरे से लोचनसिंह ने कहा—'तो चलो दाऊजू' और नरपति के खुले हुये घर की ओर मुंह फेर लिया। पौर के धुंधले प्रकाश में उसे एक मुख दिखलाई पड़ा, जैसे अन्धेरी रात में बिजली चमक गई हो। आँखों मे चकाचौंध-सी लग गई।

लोचनसिंह ने कुञ्जर के प्रस्ताव को एक कन्धा जरा-सा हिलाकर, अस्वीकृत कर दिया। नरपति से बोला—'मन्दिर मे पाषाण-मूर्ति के दर्शन होंगे। हम लोग यहाँ तुम्हारी लड़की को, जो देवी का अवतार कही जाती है, देखने आये है।'

प्रस्ताव की इस स्पष्ट भाषा के कारण कुञ्जरसिंह को पसीना-सा आ गया।

नरपतिसिंह ने जरा सोचकर कहा-'हमारी बेटी देवी है, इसमें जरा भी सन्देह जो भी करता है, उसका सर्वनाश तीन दिन के भीतर ही हो जाता है। तुम लोगो को यदि दर्शन करना हो, तो मन्दिर में चलो। यहाँ दर्शन न होंगे। कोई मेला या तमाशा नहीं है। नारियल, मिठाई, पुष्प, गन्ध इत्यादि लेकर चलो, मैं वहाँ लिवाकर आता हूं।'

नरपति की आँखो मे विश्वास के बल को और हवा में लम्बे-लम्बे केशों की एक लट को उड़ते हुये देखकर लोचनसिंह की अदम्यता नहीं डिगी।

पूछा—'इत्यादि और क्या?'

दृढ़ता-पूर्ण उत्तर मिला-'सोना-चाँदी और क्या?'

लोचनसिंह के उत्तर देने के पूर्व ही कुञ्जरसिंह ने नम्रता के साथ कहा—'बहुत अच्छा।'

नरपति तुरन्त घर के भीतर अदृश्य हो गया और किवाड़ बन्द कर लिये।

लोचनसिंह ने कुञ्जर से कहा—'मन तो ऐसा होता है कि तलवार के एक झटके से लम्बे केश वाले इस सिर को धूल चटा दूँ, परन्तु हाथ कुण्ठित है।'

'चुप चुप।' कुञ्जर आदेश के उच्चारण में बोला—'बाजार से सामग्री मँगवा लो।'

लोचन बाज़ार की ओर, जिसमें केवल दो दुकानें थीं चला गया और कुञ्जर नरपति के चबूतरे के एक कोने को झाड़कर छिपने की सी चेष्टा करता हुआ वहीं बैठ गया।

इतने ही में दो आदमी और आये। वेश-भूषा से मुसलमान सैनिक जान पड़ते थे। उनमें से एक ने कुञ्जर से पूछा—'क्यों जी नरपति दाँगी का यही मकान है?'

'हाँ क्यों?'

'देवी के दर्शनों को आये हैं?'

कुञ्जर को यह अच्छा न मालूम हुआ। बोला—'होगा कहीं, क्या मालूम तीव्र उत्तर न दे सकने के कारण उसे अपने ऊपर ग्लानि हुई। वह कहने और कुछ करने के लिये आतुर हुआ।

वे दोनों उसी चबूतरे पर बैठ गये। कुछ क्षण उपरान्त लोचनसिंह एक पोटली में पूजन की सामग्री बाँधे हुये आ गया। कहने लगा—'बनिया हमको धोका देना चाहता था। दो धौल दिये तब अभागे ने ठीक भाव पर सामग्री दी।'

लोचनसिंह ने उन दो नवागन्तुकों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। घर की कुण्डी खटखटाकर पुकारा—'पूजा की सामग्री ले आये है। लिवाकर आ जाओ।'

भीतर से कर्कश स्वर में उत्तर मिला—'मन्दिर चलो।'

लोचनसिंह कुञ्जर को लेकर मन्दिर की ओर चला, जिसकी उड़ती हुई पताका नरपति के मकान से दिखलाई पड़ रही थी।

लोचन और कुञ्जर के मन्दिर पहुंचने के आधी ही घड़ी पीछे नरपति अपनी लड़की को लेकर आ गया। वे दोनों मुसलमान सैनिक भी पीछे-पीछे आकर मन्दिर के बाहर बैठ गये। कुञ्जरसिंह ने देखा मन खीझ गया। परन्तु नरपति के ऊपर उन दोनों सैनिको की उपस्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

कुञ्जरसिंह ने रूप लावण्य और पवित्रता के उस अवतार को देखा। एक बार देखकर फिर आँख नही उठाई गई। दुर्गा की पाषाण-मूर्ति की ओर स्थिर दृष्टि से देखने लगा।

'पूजा करो।' नरपति ने आदेश दिया।

'किसकी पूजा करूँ ?' कुञ्जर ने सोचा और एक बार रूप-राशि की ओर देखकर फिर पाषाण-मूर्ति पर अपनी दृष्टि लगा दी।

लोचनसिंह ने बिना सङ्कोच के लड़की को ऊपर से नीचे तक ध्यान से देखा। उसने आँखें नीची कर ली। लोचनसिंह बोला—'किसकी पूजा पहले होगी ?'

नरपति ने मूर्ति की ओर संकेत किया।

कुञ्जर ने भक्ति के साथ मूर्ति का पूजन किया। सोचा—'अब संदेह सजीव देवी की पूजा होगी।'

'इनका क्या नाम है ?' लोचन ने पूछा।

'दुर्गा, दुर्गा का अवतार।' उत्तर मिला।

कुञ्जर प्रश्न और उत्तर से सिकुड़ सा गया, परन्तु नाम जानने की उठी हुई उत्सुकता ठण्डी नही पड़ी। लड़की के मुख पर इस बेधड़क प्रश्न से हलकी लालिमा दौड़ आयी। लोचन ने फिर शिष्टता के साथ पूछा—'यह नाम नहीं, यह तो गुण है। घर में इस बेटी को क्या कहते हो ?'

'कुमुद—पर तुम्हें इससे क्या ? पूजा हो गई। अब चढ़ावा चढ़ाकर यहाँ से जाओ। दूसरों को आने दो।' नरपति ने कहा। लोचन के दाँत से दाँत सट गये, परन्तु बोला कुछ नहीं।

कुन्जर ने अपने गले से सोने की माला और उङ्गली से हीरे की अँगूठी उतार कर मूर्ति के चरणों में चढ़ा दी। नरपति ने प्रसन्न होकर माला हाथ में लेली और अँगूठी लड़की को पहनादी, जिसका नाम उसके मुंह से कुमुद, निकल पड़ा था। कुमुद ने पहले हाथ थोड़ा पीछे हटाया। परन्तु पिता की व्यग्रता ने उसकी उङ्गली को अँगूठी में पिरो दिया।

नरपति ने कुन्जर से पूछा—'आप कौन है?'

कुन्जर के मुंह से नम्रता—पूर्वक निकला—'राजकुमार।'

लोचन ने गर्व के साथ कहा—'यह हैं दलीपनगर के महाराजधिराज के कुमार राजा कुन्जरसिंह।'

कुमुद ने धीरे से गर्दन उठाकर कुन्जरसिंह की ओर पैनी निगाह से देखा। लालिमा मुख पर नहीं दौड़ी और न आँखें नीची पड़ीं। फिर सरल, स्थिर दृष्टि से मन्दिर के कोने की ओर देखने लगी।

नरपतिसिंह ने कुमुद से कहा—'देवी पूजक को प्रसाद दो।'

कुमुद मिठाई के दोने से एक लड्डू उठाकर कुन्जर को देने लगी।

नरपति ने रोककर कहा—'यह नहीं और गेंदे का एक फूल भस्म के दो चार कणों से लपेटकर कुमुद के हाथ में दिया और कहा—'यह दो। राजकुमार के लिये प्रसाद उपयुक्त है।'

कुमुद ने अँगूठी वाले हाथ में गेंदे का फूल लिया। हाथ, सोने, हीरे और गेंदे के फूल के रङ्गों में आधे क्षण के लिये स्पर्द्धा-सी हो उठी। श्रद्धा-पूर्वक कुन्जर ने वह फूल अपनी अन्जलि में ले लिया और कुमुद की बड़ी-बड़ी, सरल, सुन्दर आँखों में अपने सङ्कोच चंचल नेत्र मिलाकर पुष्प को पगड़ी में सयत्न खोस लिया। फिर कुमुद से आँख मिलाने का साहस नही हुआ।

परन्तु कुमुद की आँखों में सङ्कोच या लज्जा का लक्षण नहीं था।

(३)

लोचन और कुन्जरसिंह मन्दिर के बाहर निकल आये। कुमुद भीतर ही बैठी रही। नरपति दरवाजे के पास खड़ा होकर मुसलमान सैनिकों से बोला-'पूजा करना हो तो करलो, नहीं तो हम घर जाते हैं। ज्यादा देर नहीं बैठेंगे।'

'जाइये' उन में से एक बोला-'हम लोगों ने तो यहीं से दीदार कर लिया।'

'तब क्यों बैठे हो?' कुन्जर ने स्पष्ट स्वर में पूछा।

उसने लापरवाही के साथ उत्तर दिया-'चले जायेंगे बैठे हैं, किसी का कुछ लिये तो है नहीं।'

कुन्जर की भ्रृकुटी टेढ़ी हो गई। 'जाओ अभी जाओ।' आपे से बाहर होकर बोला—'यह देवी का मन्दिर है दिल्लगी की जगह नहीं।'

नरपति ने ढले हुये कण्ठ से कहा-'झगड़ा मत करिये, पूजन के लिये आये होंगे।'

'पूजन के लिये नहीं आये हैं, दूसरे सिपाही ने कहा-'मन बहलाने आये हैं। अपना काम देखो, हम भी चले जायेंगे। कड़े होने की जरूरत नहीं है, क्योंकि हमारी जबान और तेग दोनों ही कड़े हैं।'

लोचनसिंह दांत पीसकर बोला-'उस जबान और तेग दोनों के टुकड़े कर डालने की ताकत हमारे हाथ में है। सीधे-सीधे चले जाओ वरना कौए यहाँ से हड्डियाँ उठाकर ले जायेंगे।'

दोनों सिपाहियों ने अपनी अपनी तलवारें खींच लीं। लोचनसिंह की उनसे पहले ही निकल चुकी थी।

नरपति मन्दिर की ओर मुंह करके चिल्लाकर बोला—'माई माई निवारण करो।'

कुमुद दरवाजे के पास आ गई। कुन्जर से बोली—'राजकुमार

इन शब्दों में जो प्रबलता थी, जो आदेश था, उसने कुञ्जर को कर्तव्यारूढ़ कर दिया। तुरन्त दोनों ओर की खिची तलवारों के बीच पहुंचकर बोला—'यहाँ पर नहीं किसी उपयुक्त स्थान पर।'

'हम सैयद की फौज के आदमी है।' एक बोला—'कोई स्थान और कोई भी समय हमारे लिये उपयुक्त है।'

लोचनसिंह अप्रतिहत भाव से बोला—'सयद का बड़ा डर दिखलाया। न मालूम कितने सैयदों को तो हम कच्चा गटक गये हैं।'

'और हमने न-मालूम तुम सरीखे कितने लुक्कों को तो चुटकी से ही मसल दिया है।' उनमें से एक ने चुनौती देते हुये कहा।

लोचनसिंह उन दोनों पर लपका। कुञ्जर अपने प्राणों की जरा भी परवा न करके बीच में धँस गया।

लोचन वार को रोककर खिसियाने हुये स्वर में बोला—'कुंवर, कुंवर बचो। लोचनसिंह की जलती हुई आग शत्रु-मित्र के अन्तर को नहीं पहचानती।'

कुमुद दो कदम आगे बढ़कर एक हाथ आकाश की ओर जरा-सा उठाकर बोला—'मत लड़ो, अपने-अपने घर जाओ। पुण्य-पर्व है, जो लड़ेगा, दुःख पावेगा।'

दोनों मुसलमान सैनिकों ने अपनी तलवार नीची कर ली। कुंवर ने लोचनसिंह का हाथ पकड़ लिया। वे दोनों सिपाही एक टक कुमुद की ओर देखने लगे, अतृप्त, अचल नेत्रों से, मानों अनन्त काल तक देखते रहेंगे।

कुञ्जरसिंह ने हाथ के इशारे से भीड़ हटाने का प्रयत्न किया।

कुमुद ने कुञ्जर से कहा—राजकुमार, इनको यहाँ से ले जाइये।' फिर मुसलमान सैनिकों से बोली—'आप लोग यहाँ से जायँ।'

इतने में शोर—गुल सुनकर गाँव के कुछ आदमी आ गये।

मन्दिर पर मुसलमानों की उपस्थिति देखकर उन लोगो ने सैनिकों पर झगड़े का सन्देह ही नहीं, चुपचाप विश्वास भी कर लिया। कई कंठों

से यकायक निकला—'कौन हो ? क्या करते हो ? मन्दिर की वेइज्जती करने आये हो ?'

भीड़ में से एक ने खूब चिल्लाकर कहा—'इस आदमी ने हमारे नारियल अगरबत्ती छीन लिये और हमें मारा है।' और भीड़ इकट्ठी हुई।

कुमुद भीड़ की ओर मुड़कर चिल्लाई, जैसे कोयल ने जोर की कूक दी हो—'जाओ अपने अपने घर व्यर्थ झगड़ा मत करो।'

'जाओ कमबख्तो यहाँ से।' दोनों मुसलमान सिपाहियों ने भी कहा। कुञ्जरसिंह ने हाथ के इशारे से भीड़ हटाने का प्रयत्न किया।

परन्तु आगे वाले पीछे को न मुड़ पाये थे कि पीछे से और भीड़ आ गई। उसमें दिलीपनगर के राजा के कुछ सैनिक भी थे। वास्तविक स्थिति को विना ठीक-ठीक समझे ही पीछे वाले चिल्लाये—'मारो मारो।' लोचनसिंह को तलवार निकाले और कुञ्जरसिंह को बीच में देखकर पीछे आये सिपाहियों ने तलवारें निकाल लीं। इतने मे लुटा हुआ दुकानदार फिर चिल्लाकर बोला—'लूट लिया भाईयो, मुझे तो लूट लिया मेरे नारियल चुरा लिये।' लोचनसिंह ने उस ओर देखा, परन्तु आरोपी को पहचान न पाया।

शब्द बढ़ता गया। कुमुद का बारीक स्वर उस भीड़ के हुल्लड़ को न चीर पाया, प्रत्युत पीछे वालों को पूरा विश्वास हो गया कि न केवल लोचनसिंह उनका सरदार, बल्कि उनका राजकुमार और धर्म भी उन दो मुसलमान सैनिकों के कारण सङ्कट मे पड़ गये है। कुछ ही क्षण में मुसलमान सैनिक भीड़ से घिर गये।

उनमे से एक ने चिल्लाकर कहा—'अरे वेवकूफो, हमको यहाँ से निकल जाने दो, नही तो तलवार से हम अपना रास्ता साफ करते हैं।

इस समय दो तीन मुसलसान सिपाही और उस स्थान पर आ गये। 'क्या है ? क्या है ?' उन्होंने आवेश के साथ पूछा।

पहले आये हुये मुसलमान सैनिकों में से एक ने कहा— 'कुछ नहीं, यों ही हुल्लड़ है। खून-खराबी मत करना।'

उन दो-तीन नवागन्तुक मुसलमान सिपाहियों के आने पर गाँव वाले जरा पीछे हटे और पीछे वाले दलीपनगर के सैनिक नङ्गी तलवारें लिये आगे आ गये। तुरन्त 'मारो-मारो' की पुकारें मच गईं और खिंची हुई तलवारों ने अपना काम शुरू कर दिया।

लोचनसिंह ने पीछे आये हुये मुसलमान सिपाहियों में से एक को समाप्त कर दिया। पूर्वागन्तुकों ने भी आरम्भ कर दिये। भीड़ के कई आदमी कतर डाले और घायल कर दिये। कुञ्जरसिंह तलवार निकाल-कर कुमुद के पास जा खड़ा हुआ। वह कुञ्जर को वहीं छोड़कर अपने पिता के साथ धीरे-धीरे घर चली गई।

दलीपनगर के और सैनिक आ गये। युद्ध घमासान हो उठा। थोड़े से मुसलमान सैनिक दृढ़ता से लड़ते-लड़ते पीछे हटने लगे। थोड़ी दूर से लड़ते-लड़ते मुसलमान सैनिक एक ओर भाग गये। उनका बहुत दूर तक पीछा नहीं किया गया।

मुसलमान सैनिक की लाश वहीं पड़ी रही और इधर के जो आदमी मारे और घायल किये गये थे, उन्हें वहीं छोड़कर भीड़ तितर-बितर हो गई। मन्दिर में केवल देवी की मूर्ति थी। कुञ्जरसिंह को वह थोड़ी ही देर पहिले का शब्दमय स्थान सुनसान मालूम होने लगा। वहाँ केवल किसी आलोक की कोई छाया-मात्र दिखाई पड़ती थी, किसी मधुर स्वर की गूँज-भर।

मृतकों और घायलों का उचित प्रबन्ध करके जो कुछ हुआ था, उस पर पछतावा करता हुआ कुञ्जरसिंह अपने डेरे की ओर लोचन को लेकर चला गया।

[४]

सन्ध्या होने के पहले गाँव में खबर फैल गई कि ४–५ कोस पर मुसलमानों की एक बड़ी सेना ठहरी हुई है और वह शीघ्र ही आक्रमण करेगी, गाँव मे आग लगावेगी और देवी के अवतार का जबरदस्ती अपहरण करेगी।

इस प्रकार की मार-काट उन दिनों प्रायः हो जाया करती थी। इसलिये आश्चर्य तो किसी को नही हुआ, परन्तु भय सभी को। दलीप-नगर के राजा के साथ भी बहुत से सैनिक थे, इसलिये गाँव वालों को अपनी रक्षा का बहुत भरोसा था। जो लोग हाथ-पाँव चलाने लायक थे, वे हथियार बन्द होकर इधर-उधर टुकड़ियों में जमा हो गये। परन्तु गाँव में जनसंख्या अधिक न थी, इसलिये दलीपनगर की सेना की तैयारी की प्रतीक्षा चिन्ता के साथ करने लगे।

राजा ने अभी तक कोई मंतव्य प्रकट नहीं किया था। समाचार उन्हें मिल गया था।

राजा का रामदयाल नामक एक विश्वस्त निजी नौकर था। उसके साथ थोड़ी देर बातचीत होने के बाद राजा ने पूछा—'तूने उस लड़की को देखा है?'

'हाँ महाराज।'

'बहुत खूबसूरत है?'

'ऐसा रूप कभी देखा-सुना नहीं गया।'

'कुछ कर सकता है?'

'कोई कठिन बात नहीं है।'

'राजमहल की दासियों में डाल ले।'

'जब आज्ञा होगी तभी।'

'आज रात को।'

'बहुत अच्छा, परन्तु—'

'परन्तु क्या बे?'

राजा की चढ़ी हुई आँखों से नौकर घबराया नहीं। बोला—'महाराज, कहीं से मुसलमानों की फौज आई है।'

'मार डाल सबों को, परन्तु उस लड़की को लिवा ला।' राजा ने कहा।

रामदयाल अनसुनी-सी करके बोला—'महाराज, लोचनसिंह दाऊजू ने उस फौज के एक जवान को मार डाला है और कई एक को घायल कर दिया है। उन लोगों ने भी गाँव के कई आदमी मार डाले हैं और अपने भी कई सिपाहियों को घायल कर गये हैं।'

राजा ने उपेक्षा के साथ कहा—'इस लम्बी दास्तान को शीघ्र समाप्त कर। बोल, उसको किस समय लिवा लायेगा।'

उत्तर न देते हुये रामदयाल बोला—'मुसलमानी सेना पास ही दो-तीन कोस फासले पर ठहरी हुई है। तुरही-पर-तुरही बज रही है। गाँव पर हल्ला बोला जाने वाला है।'

'यह तुरही हमारी फौज की थी। तू झूठ बोलता है।'

'रात को वे लोग गाँव में आग लगा देंगे और उस लड़की को उठा ले जायेंगे।'

राजा रामदयाल के इस अन्तिम कथन को सुन उठ बैठे। आँखें नाचने-सी लगीं। कहा—'लोचनसिंह को इसी समय बुला ला।'

कुछ क्षण पश्चात लोचनसिंह आ गया। जुहार करके बैठा ही था कि राजा ने तमक कर पूछा—'तुमने आज एक आदमी मार डाला है?'

उसने शांति-पूर्वक जवाब दिया—'हाँ महाराज, एक ही मार पाया बाकी भाग गये। बनिये को भी नहीं मार पाया, वह मुझे चोर बताता था।'

'यह कहाँ की सेना है?'

'कहीं की हो महाराज! मुझे तो उनमें से कुछ को मारना था, सो एक को देवी की भेंट कर दिया।'

'देवी ! देवी ! तुम लोगों ने एक छोकरी को मुफ्त देवी वना रक्खा है। मैं देखूंगा, कैसी देवी है।'

'महाराज देखें या न देखें परन्तु उसकी महिमा देवी से कम नहीं। उसके लिये आज रात को फिर तलवार चलाऊँगा।'

'कैसे ? क्यो ?'

'महाराज ऐसे कि मुसलमान लोग उसको आज लेकर भाग जाने वाले है। लोचनसिंह उन्हे ऐसा करने से रोकेगा। वस।'

'उसे हमारे डेरे पर भिजवा दो लोचनसिंह, हम उसकी रक्षा करेंगे।'

लोचनसिंह ने उपेक्षा के साथ कहा—'राजमहल की रक्षा का भार दूसरों के सुपुर्द कर दिया गया है। कुंवर और हम उस देवी की रक्षा करेंगे।'

राजा क्रोध से थर्रा गये। वोले—'रामदयाल, जनार्दन शर्मा को लिवा ला।'

रामदयाल के जाने पर लोचनसिंह ने कहा-'महाराज एक विनती है।'

भर्राये हुये गले से राजा ने पूछा—'क्या ?'

'विनती करने भर का वस मेरा है।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'फिर मर्जी महाराज की। वह लड़की अवश्य देवी या किसी का अवतार है। उसका वाप वज्र लोभी और मूर्ख है। परन्तु वालिका शुद्ध, सरल और भोली-भाली है। हकीम जी से महाराज पूछ लें कि अब महाराज को ऐसी वातो की ओर ध्यान नही देना चाहिये। महाराज के रोग को देखकर ही कभी-कभी मुझे डर लग जाता है।'

राजा विष का-सा घूट पीकर चुप रहे। इतने में जनार्दन शर्मा आ गया। राजा ने जरा नरम स्वर में कहा-शर्मा जी मेरी दो आज्ञायें हैं।'

'महाराज !'

'एक तो यह कि जो मुसलमान सेना यहाँ आई है उसे किसी प्रकार यहाँ से हटा दो।'

'महाराज !' जनार्दन बोला और दूसरी आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा।

'दूसरी यह कि लोचनसिंह को इस समय मरवा कर झील में फिकवा दो।' राजा ने क्षोभातुर कण्ठ से कहा।

जनार्दन दोनों आज्ञाओं पर सन्नाटे में आकर एक बार लोचनसिंह और दूसरी बार राजा का मुंह निहार कर माथा खुजलाने लगा।

लोचनसिंह ने अपनी तलवार राजा के हाथ में देते हुये कहा—'मुझे मारने की यहाँ किसी की सामर्थ्य नहीं। जब तक यह मेरी कमर में रहेगी, तब तक आपकी इस आज्ञा के पालन किये जाने में सहस्त्रों बाधायें खड़ी होंगी। आप ही इससे मेरी गर्दन उतार दीजिये।'

राजा तलवार को नीचे पटक कर थके हुये स्वर में बोले—'तुम बहुत बातूनी हो, लोचन।'

'जैसे था, वैसे ही हूं और वैसा ही रहूंगा भी। मरवा डालिये महाराज परन्तु अपने शरीर को अब और मत बिगाड़िये।' लोचनसिंह ने हाथ बाँध कर कहा।

राजा बोले—'उठा लो तलवार लोचनसिंह, तुमको मारकर हाथ गन्दा नही करूँगा।'

तलवार कमर में बाँधकर लोचनसिंह ने पूछा—'महाराज ने मुझे किसलिये बुलाया था?'

'जाओ, जाओ।' राजा ने फिर गरम होकर कहा—'तुम्हारी हमको जरूरत नहीं है।'

'है महाराज।' लोचनसिंह ने सोचते-सोचते कहा—'उस देवी के घर का पहरा न लगाकर मै आज रात राजमहल का ही पहरा दूँगा।'

राजा ने जनार्दन से पूछा—'यह सेना कहाँ की है?'

'कालपी की अन्नदाता।' जनार्दन ने उत्तर दिया।

'भगा दो मार दो, आग लगा दो कोई हो, कहीं का ही।' राजा ने हाथ-पैर फेककर आज्ञा दी।

'अन्नदाता—'

बको मत जनार्दन, कालपी पर अब हमारा फिर राज्य होगा।'

'होगा अन्नदाता, परन्तु अभी कुछ विलम्ब है। दिल्ली गड़बड़ के तूफान में पड़ी हुई है किन्तु तूफान अभी काफी जोर पर नहीं है। कालपी के फौजदार अलीमर्दान की सेना मालवे में मराठों से हारकर लौटी है, परन्तु अब भी इतनी अधिक है कि मुठभेड़ करना ठीक न होगा। दूसरे राज्यों का रुख हमसे कटा हुआ-सा है।'

'वह सब षड़यन्त्र, वही पुराना प्रपञ्च।' राजा ने तकिये के सहारे लेटकर धीरे-धीरे कहा—'तुम्हारे छली-कपटी स्वभाव से तो हमारे लोचनसिंह की बेलाग बात अच्छी।'

लोचनसिंह तुरन्त बोला—'नहीं महाराज, शर्मा जी बुद्धिमान आदमी हैं। मै तो कोरा सैनिक हू।'

राजा फिर बैठ गये। बोले—'अच्छा, तुम सब जाओ। जिसको जो देख पड़े, सो करो। मैं सवेरे कालपी की सेना को अकेले मार भगाऊँगा। मैं निजाम-इजाम को कुछ नहीं समझता। कालपी बुन्देलों की है।'

जनार्दन और लोचनसिंह चले गये। परन्तु उन लोगों ने सिवा रक्षात्मक यत्नों के किसी आक्रमण-मूलक उपाय का प्रयोग नहीं किया। जनार्दन ने राजा के डेरे का अच्छा प्रबन्ध कर दिया। लोचनसिंह कई सरदारो के साथ पहरे पर स्वयं डट गया।

राजा ने रामदयाल को पास बुलाकर धीरे से कहा—'आज ही थोडी देर में अभी।'

'जो आज्ञा।' कहकर रामदयाल चला गया।

[५]

रात हो गई। खूब अंधकार छा गया। जगह-जगह लोग आक्रमण रोकने की योजना में लग गये। गाँव में खूब हल्ला-गुल्ला होने लगा, मानो असंख्य सैनिक किसी स्थान पर आक्रमण कर रहे हों। कुंजरसिंह

नरपति के मकान के बाहर वेश बदले, शस्त्र-सुसज्जित टहल रहा था। पहरे वालों की टोलियाँ इधर-उधर से आकर, शोर करती हुई, इस मकान के सामने कछ छण के लिये खड़ी होकर 'अम्बा की जय, दुर्गा मैया की जय' कहती हुई गुजर जाती थीं, परन्तु कुन्जर चुपचाप टहल रहा था। केवल कभी-कभी कहीं दूर की आहट लेने के लिये एक-आध बार ठिठक जाता था। नरपति के किवाड़ बन्द थे, भीतर से सुगन्धित द्रव्यों के होम की खशवू आ रही थी।

थोड़ी देर में एक मनुष्य ने आकर नरपतसिंह के किवाड़ खटखटाये। कुन्जरसिंह ने कदाचित उसे पहिचान लिया। भाला साधा और स्वर बदलकर पूछा—'कौन ?'

'महाराज का अदमी रामदयाल।' उस व्यक्ति ने दम्भ के साथ उत्तर दिया।

कुन्जर ने कहा—'रामदयाल इतनी रात तुम यहाँ कैसे ?'

वदले हुये स्वर के कारण रामदयाल ने न ताड़ पाया। समझा, दलीपनगर का कोई सैनिक है। बोला—'महाराज यहाँ की रक्षा के निमित्त बड़े चिंतित हो रहे है। सारी मुसलमानी सेना छिपे-छिपे यहीं आ रही है। अवेर-सबेर आक्रमण होगा, इसलिये मै देवी को राजमहल में सुरक्षित रखने के लिये लिवाने आया हूं।' रामदयाल ने फिर कुण्डी खटखटाई। कुन्जर भाला टेककर खड़ा हो गया और आकाश की ओर देखने लगा।

जव कई बार कुण्डी खटखटाने पर भी भीतर से कोई उत्तर न मिला, तब रामदयाल ने कुन्जर से पूछा—'आप कौन है ? बतला सकते हैं, नरपतिसिह कहाँ हैं और देवी जी कहाँ हैं ?'

'मैं हूं कुन्जरसिंह। नरपतिसिह भीतर है।'

रामदयाल सकपका गया, परन्तु शीघ्र सम्भलकर बोला—'राजा, यहाँ कैसे ?' 'देवी की रक्षा के लिये।'

'लो, यह वहुत अच्छा, परन्तु क्या राजा अकेले ही रक्षा करने के लिये डटे रहेंगे।'

'हाँ, उनके लिये मुझे तुम्हारी जरूरत नही पड़ेगी।'

इतने समय में रामदयाल ने अपनी स्वभाव सिद्ध स्थिरता पुनः प्राप्त कर ली। वोला—'महाराज की आज्ञा है कि देवी राजमहल में आज की रात सुरक्षित रहे।'

वैसे ही भाले के वल अपने शरीर को थामे हुये कुन्जर ने कहा—'रामदयाल देवी की रक्षा उसके मन्दिर मे ही सवसे अच्छी होती है। तुम जाओ। मेरे साथ तर्क मत करो।'

दासी पुत्र होने पर भी कुन्जर राजकुमार और रामदयाल चाकर होने पर दलीपनगर के राजा का विश्वासपात्र। इसलिये कोई एक दूसरे से विचलित न हुआ।

रामदयाल वोला—'मैंने देवी की रक्षा का वीड़ा उठाया है।'

'मैंने तुमसे पहले।'

'उन्हें राजमहल मे जाना होगा। महाराज की आज्ञा है। ऐसे रक्षा न हो सकेगी राजा।'

'कभी नही।'

'तो महाराज से जाकर यही कह दूंगा राजा?'

'कह दो।'

'मेरे प्राण वड़े संकट में हैं। उधर आज्ञा का पालन नहीं होता तो सिर से हाथ धोने पड़ेगे इधर आपको अप्रसन्न करता हूं तो प्राणों पर आ वनेगी।'

कुन्जरसिंह भभक उठा। वोला—'जा यहाँ से नीच। मैं तेरी प्रकृति से खूब परिचत हूं। यदि यहाँ कोई और होता तो शायद तेरी चाल चल जाती।' रामदयाल चला गया और थोड़ा नमक-मिर्च लगाकर सारी वात राजा से कह सुनाई।

(६)

गाँव में रात भर हो-हल्ला होता रहा, परन्तु किसी ने किसी पर आक्रमण, नहीं किया।

सबेरे नहा-धोकर राजा के सामने लोग इकट्ठे हुये।

सैयद आगा हैदर राजा की हालत देखकर सहम गया। धीरे से जनार्दन के कान में कहा—'महाराज को यहाँ लाने में बड़ी भूल हुई।'

'क्या करते?' जनार्दन ने भी धीरे से कहा—'उनके हठ के सामने किसी की नही चलती। लोचनसिंह सरीखे वीर को कल संध्या समय कत्ल करवाये डालते थे। उसने अपनी वीरता से अपने प्राण बचाये।' इतने में कुन्जरसिंह आया। रात भर के जागरण के कारण आँखें फूली हुई थी और चेहरे पर थकावट छाई थी। प्रणाम करके राजा के पास जाकर यथानियम बैठ गया। राजा की आँखें चढ़ गईं, परन्तु कुछ कहा नहीं। देर तक किसी दरबारी की हिम्मत कोई बात कहने की नहीं पड़ी।

लोचनसिंह बहुत समय तक कभी चुप नही रहा था। बोला-'किसी ने हल्ला-बल्ला नहीं किया। जानते थे कि अभी तो एक ही आदमी की लाश ढोनी पड़ी है, आगे न मालूम कितनी लाशें ढोनी पड़ेंगी।'

कुन्जरसिंह ने पूछा—'लाश को वे लोग कब उठा ले गये थे?'

हम लोगों के वहाँ से चले आने के थोड़ी ही देर पीछे।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया।

राजा ने रुखाई के साथ कहा— 'हमको यह सब चबर-चबर पसन्द नहीं है।'

फिर सन्नाटा छा गया, इतना कि दूर से आने वाली रमतूलों और ढोल-ताशों की आवाज स्पष्ट सुनाई पड़ने लगी।

जनार्दन ने धीरे से राजवैद्य से कहा-'हकीमजी, कालपी की फौज छापा मारने वाली है।'

'यह मुसलमानों के लिये मूर्खता की बात होगी, यदि उन्होंने कुछ

आदमियों के अपराध के लिये गाँव भर को सताया, या अपने राज्य की सेना पर धावा किया। रमतूलों और ढोल-ताशों की जो आवाज आ रही है, वे किसी की बारात के बाजे है।'

जनार्दन ने धीरे से मंतव्य प्रकट किया-'न-मालूम किस बुरी सायत में यहाँ आये थे।'

'सारा कुसूर लोचनसिंह का है।'

आगा हैदर ने अपने आस-पास कनखियों से देखते हुये सतर्कता के साथ कहा-'पण्डितजी, यह ठाकुर एक दिन अपने राज्य को किसी गहरे खंदक मे खपा देगा।'

जब इस तरह से किसी बड़ी जगह के सन्नाटे में दो आदमी काना-फूमी करते है, तब टोलियाँ-सी बनकर अन्य उपस्थित लोग भी काना-फूसी करने लगते है।'

स्थान-स्थान पर कानाफूसी होती देख राजा उस सन्नाटे को अधिक समय तक न सह सके। बोले— 'लोचनसिंह !'

'महाराज !' उसने उत्तर दिया।

'तुम्हारे घराने में चामुंडराय की उपाधि चली आई है, जानते हो?'

'हां महाराज, सारा संसार जानता है कि सिर-पर-सिर काटने के बाद यह उपाधि हम लोगों को मिली है।'

'वह तुमको प्यारी है?'

'हाँ महाराज, प्राणो से भी अधिक और कदाचित् इस संसार के सम्पूर्ण जीवों से अधिक।'

'यानी महाराज।'

'हाँ महाराज।'

'निर्लज्ज, मूर्ख।'

'सो नही महाराज। चामुण्डराय की जो प्रतिष्ठा है वह हृदय का खून बहा कर प्राप्त की गई है। किसी भी लोभ के वश मे वह दलित नही हो सकती। बस यही तात्पर्य था और कुछ नहीं।'

'लोचनसिंह, तुमने रात को कहाँ पहरा लगाया था ?'

'राजमहल पर।'

'झूठ बोलते हो। उस लड़की के यहाँ, जो देवी कहलाती है, रखवाली करने पर तुम भी तो थे ?'

'मैं न था महाराज।'

'काकाजू, वहाँ पर मै अकेला ही था।' बहुत विनीत, परन्तु दृढ़ भाव के साथ कुन्जरसिंह बोला।

'हाँ तुम अब बहुत मनचले हो गये हो।' राजा ने उपस्थित लोगों की परवा न करते हुये कहा—'तुम्हारे ये सब लक्षण मुझे बहुत अखरने लगे है। तुम क्या यह समझते हो कि ऐसी बेहूदा हरकतों से मैं प्रसन्न बना रहूंगा ?'

कुन्जरसिंह स्थिर दृष्टि से एक ओर देखता रहा। उत्तर में कुछ नहीं बोला।

राजा लोचनसिंह की ओर एकटक दृष्टि से देखने लगे। लोचन ने नेत्र नीचे नही किये।

'आज तुम्हारी चामुण्डराई की परीक्षा है लोचनसिंह।' राजा ने कुछ क्षण पश्चात् कहा।

'आज्ञा हो महाराज।' लोचनसिंह बोला।'

'यह मुसलमानी फौज हमको और हमारे धर्म को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिये आयी है।' राजा ने कहा—'उन लोगों की आँख मन्दिर की मूर्ति तोड़ने और मूर्ति की पुजारिन—उस दाँगी की लड़की—को उड़ा ले जाने पर है। मेरी आज्ञा है, उस सेना का मुकाबिला करो और लड़की को सुरक्षित दलीपनगर पहुंचा दो।'

कुन्जरसिंह काँप उठा। जनार्दन को रोमांच हो आया और लोचनसिंह की नाही पर सबकी आशा जा अटकी।

लोचनसिंह ने हाथ बाँधकर उत्तर दिया—'उस सेना का सामना करने के लिये मै अभी तैयारी कराता हूं, अपने पास इस युद्ध के लिये

काफी सैनिक नहीं है। दलीपनगर से और सेना बुलाने का प्रबन्ध कर दीजिये। दूसरी आज्ञा जो दाँगी की लड़की को दलीप नगर पहुंचाने से सम्बन्ध रखती है, उसका पालन उस लड़की की इच्छा पर निर्भर है। यदि वह दलीपनगर न जाना चाहेगी तो मैं उसे पकड़ कर न भेजूंगा।'

लोचनसिंह—चला गया।

उसी समय ढोल-ताशों रमतूलों का शब्द फिर सुनाई पड़ा। आगा हैदर ने कहा—'सवारी दलीपनगर वापिस चली जाय, तो बहुत अच्छा। वहाँ शांति के साथ दवादारू होगी।'

'तुम सब गधे हो।' राजा जरा कष्ट के साथ बोले—'यह आवाज क्या है, इसका पता तुरन्त लगाओ, नहीं तो मार खाओगे। याद रखना मैं लडूंगा और किसी को नही छोडूंगा।'

[७]

राजा के जासूसों ने बाजों का पता दिया। मालूम हुआ, एक दरिद्र ठाकुर की बारात आ रही है और दूरी पर, उसके पीछे-पीछे, छिपी-छिपी कालपी की सेना भी आक्रमण करने के लिये आ रही है।

हकीम ने मना किया परन्तु राजा ने एक न सुनी। घोड़े पर सवार होकर लड़ाई की तैयारी कर दी।

हकीम ने जनार्दन से कहा—'पण्डितजी, इस राज्य की खैर नहीं है। अब क्या होगा?'

जनार्दन ने माथा ठोककर उत्तर दिया—'बड़ी कठिनाइयों से राज्य को अब तक बचा पाया है। मंत्री केवल गुणा-भाग जानता है। नीति-मीति कुछ नही समझता। कुमार दासी-पुत्र है। अधिकांश सरदार उसे अङ्गीकार न करेंगे। रानियों में लड़ाई ठनी रहती है। लोचनसिंह एक महज झंझावात है। उत्तराधिकारी कोई नियुक्त नही है। महाराज का

पागलपन और भी अधिक बढ़ गया है। राज्य की नैया डूबने से बचती नहीं दिखाई देती।'

और इधर कालपी के सैयद से यह बैर बिसाहना गजब ही ढा देगा। 'आगा हैदर ने कहा—'आज किसी तरह महाराज की जान बच जाय, तो बाद में सैयद को तो मैं मना लूंगा।'

जनार्दन—'आपके पास रोग की दवा है, परन्तु मौत की दवा किसके पास है? क्या ठीक है कि आज यह या हममें से कोई बचेंगे या नहीं। इस अकारण युद्ध से रोका भी, न माने। दलीपनगर से और सेना बुलाने के लिये हरकारा तो भेज दिया है कदाचित जरूरत पड़े। बड़ी साँसत है। यदि लोचनसिंह बिगड़ जाते तो राजा के सिर पर लड़ाई का भूत इतना जोर न करता।'

यह कष्ट-कहानी शायद और लम्बी होती, परन्तु इसी समय राजा की सवारी आ पहुंची। पीछे-पीछे कुन्जरसिंह का घोड़ा था। जहाँ जनार्दन और हकीम खड़े थे, राजा ने घोड़े की बाग थामकर कहा—'आप लोग लड़ नहीं सकते। पीछे रहें।' फिर मुड़कर कुन्जरसिंह से कहा—'तुम मेरे साथ मत रहो। लोचनसिंह इधर आवें।'

लोचनसिंह तुरन्त घोड़ा कुदाकर आ गया।

'क्या आज्ञा है?'

'कालपी की फौज पर धावा बोल दो।'

'जो हुकुम।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया। दलीपनगर की सेना जासूसों के बतलाये मार्ग पर चल पड़ी और लोचनसिंह की स्वल्प सावधानता पवन पर।

कुन्जरसिंह मन मसोसकर पीछे रह गया था। नरपति के दरवाजे के सामने से निकला। उधर दृष्टि गई। कुमुद को देखा। सचमुच अवतार। कुन्जर ने नमस्कार किया। कुमुद जरा-सी—बहुत जरा-सी मुस्कराई, शायद उसे मालूम भी न हुआ होगा कि मुस्करा रही हूं।

कुन्जरसिंह आगे बढ़ गया।

जिस घर बारात आ रही थी, उसके दरवाजे पर तोरण-वंदनवार लगे हुये थे। वहीं होकर दलीपनगर की सेना निकली। राजा ने लोचनसिंह से पूछा— 'क्या यही उस ठाकुर की बारात आ रही है?'

'हाँ महाराज।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया।

राजा ने कहा—'बहुत दरिद्र मालूम होता है। द्वार पर कोई ठाट-बाट नहीं।'

'होगा महाराज, किस-किस का दुख रोवें यहाँ और सब कही ऐसे अनेक भरे पड़े हैं।'

'अजी नहीं।' राजा ने चलते-चलते कहा—'सब शरारत है, बदमाशी है, घर में सम्पत्ति गाड़कर रखते हैं, ऊपर से गरीबी का दिखलावा करते है। इस लड़ाई से लौट कर साहूकारों से सारी क्षति की पूर्ति कराऊँगा। बहुत दिनों से उनसे कुछ नहीं लिया है।'

लोचनसिंह कुछ नही बोला। थोड़ी देर में दलीपनगर की छोटी-सी सेना पालर के बाहर जङ्गल के मुहाने पर पहुंच गई। ठाकुर की छोटी-सी बारात एक ओर से आ रही थी। वह कुछ दूरी पर ठिठक गई। दूल्हा पालकी में। कहार पालकी को अपने कन्धों पर ही लिये रहे।

राजा ने लोचनसिंह से कहा—'इस घमन्ड को देखते हो? पालकी नहीं उतारी गई। चाहूं, तो अभी दूल्हा के खण्ड-खण्ड कर डालूं।'

लोचनसिंह ने उपेक्षा के साथ कहा—'महाराज, यह बुन्देला की बरात है। दूल्हा किसी के लिये भी पालकी से नही उतारेगा। निर्धन हो, चाहे श्रीसम्पन्न, परन्तु बुन्देले आपस में सब बराबर है।'

'सब बराबर है? तुम और हम?'

'मैं प्रजा हूं।' लोचनसिंह ने उसी स्वर में कहा—वह बुन्देला आपकी प्रजा नहीं है। उसकी पालकी नीची नही हो सकती।' फिर चिल्लाकर कहारों से बोला—'ले जाओ अपनी पालकी को।' पालकी और बारात कतरा कर निकली।

थोड़ी देर में कालपी की सेना से मुठभेड़ हो गई।

राजा, लोचनसिंह और कुन्जरसिंह थोड़ी देर घोड़ों पर ही लड़ते रहे। आधी घड़ी पीछे राजा का घोड़ा आहत हो गया। राजा के घोड़े से उतरते ही उनके अन्य सरदार भी पैदल लड़ने लगे।

कालपी की सेना बड़ी दृढ़ता और दिलेरी के साथ लड़ी, परन्तु वह अल्पसंख्यक थी।

दलीपनगर की सेना भी बहुत न थी। एक को दूसरे के बल का पता न था। टुकड़ियों में बँटकर दोनों ओर की सेनायें भिड़ गई और कटने लगीं।

कालपी की एक टकड़ी ने राजा को उनके कुछ सरदार-सहित घर दबाया। रोग ग्रस्त होने पर भी राजा पागलों की तरह, लड़ने लगे। कई आक्रमणकारी हताहत हुये, परन्तु ठेल-पर-ठेल होने के कारण एक किनारे दूर तक राजा को हटना पड़ा। उनके साथी जरा दूर पड़ गये। राजा मुश्किल से अपना बचाव करने लगे। क्षण-क्षण पर यह भासित होता था की राजा अब आहत हुये और अब। सहायता के लिये ऐसे समय में पुकारना राजा की बची-खुची शक्ति के बाहर था। इतने में पेड़ों की एक झुरमुट के पीछे इधर-उधर कुछ आदमी जोर से भागे। हमला करने वालों का ध्यान जरा उचटा कि ब्याह का झाँगा पहने और मुकुट बांधे बरात का वह दूल्हा तलवार भाँजता हुआ वहाँ आ टूटा। ठेठ बुन्देलखण्डी में बोला—'काकाजू, एक हाथ मोरोई देखवे में आवे उधर पालकी पटककर भागे हुये कहारों ने कुहराम मचाया।

वह दूल्हा इतने वेग से लड़ा कि जगह-जगह से उसका झाँगा कट-फट गया, रुधिर की धार वदन से वह निकली और सिर का मौर टुकड़े टुकड़े होकर धरती पर रुंध गया। उसी समय दलीपनगर की सेना सिमिट आई। तलवार अनवरत रूप से चली। ऐसे चली कि कालपी-वालों के छक्के छूट गये। जो सशक्त थे वे भाग खड़े हुये। मालवा से

एक लड़ाई तो हारकर वे लोग आये ही थे, इस लड़ाई में भी एक वार पैर उखड़ने पर फिर भागने में ही कुशल देखी।

सन्ध्या होने के पूर्व ही युद्ध समाप्त हो गया। कालपी की घबराई हुई सेना कालपी की ओर कोसों दूर निकल गई।

राजा घायल हो गये थे और बहुत थक गये थे। दूल्हावाली पालकी में राजा को लिटाकर ले चले। दूल्हा साथ-साथ था। शरीर से रक्त बह रहा था, परन्तु उसकी दृढ़ता में कमी नहीं दिखलाई पड़ती थी। जान पड़ता था, मानो लोहे का बना हो।

राजा ने पालकी में लेटे-लेटे क्षीण स्वर में उसका नाम पूछा।

उत्तर मिला—'अन्नदाता, मुझे देवीसिंह कहते हैं।'

'ठाकुर हो?'

'हाँ, महाराज।'

'बुन्देला?'

'हाँ महाराज।'

'जीते रहो। तुमको ऐसा पुरस्कार दूंगा, जैसा कभी किसी को न मिला होगा।'

इस समय जनार्दन शर्मा और आगा हैदर भी पालकी के पास गांव की ओर से आ चुके थे और बड़े आदर की दृष्टि से उस दरिद्र दूल्हा को देख रहे थे। कुन्जरसिंह उदास-सा पीछे-पीछे चला आ रहा था। लोचनसिंह कुछ गुनगुनाता हुआ चला जा रहा था। चन्दनवार वाले दरवाजे पर जब राजा की पालकी पहुंची तब देवीसिंह से राजा बोले,- 'देवीसिंह, अब तुम अपना व्याह करो। टीके का मुहूर्त आ गया है। व्याह होने के बाद दलीपनगर आना—अवश्य आना भूलना मत।'

पालकी दरवाजे पर ठहर गई। दूल्हा ने पालकी का कोर हाथ में पकड़कर क्षीण स्वर में कहा—'मेरा व्याह तो रणक्षेत्र में हो गया। अब महाराज के चरणों में मृत्यु हो जाय, बस यही एक कामना है।'

जब तक कोई संभालने को दौड़ता, तब तक देवीसिंह धड़ाम से पालकी का सहारा छोड़कर अपनी भावी ससुराल के सामने गिर पड़ा।

लोचनसिंह ने आगे बढ़कर कहा—'वाह, क्या बाँकी मौत मर रहा है। सब इसी तरह मरें, तो कैसे आनन्द की बात हो।'

राजा ने तीव्र स्वर में कराहते हुये कहा—'काठ के कठोर कलेजे वाले मनुष्य, इस नन्हें से दूल्हा की मौत पर तू खुश हो रहा है। संभाल इसको।'

'यह न होगा।' लोचनसिंह ने अविचलित स्वर में कहा—'क्षत्रिय को बिना किसी सहारे और लाड़-दुलार के मरने दीजिये। वह बचेगा नहीं।' फिर पालकी वालों से बोला—'महाराज को शिविर में ले चलो। हकीमजी तुरन्त दवा-दारू का बन्दोबस्त करें। मैं इसकी क्षत्रियोचित अंत्येष्टि-क्रिया का प्रबन्ध किये देता हूं।'

राजा कुछ कहने को हुये; परन्तु दर्द ने फिर न बोलने दिया। इतने में कुन्जरसिंह वहां आ गया। तुरन्त घोड़े से उतर पड़ा। अचेत देवीसिंह को या उसकी लाश को घोड़े पर रखकर आगे बढ़ गया। लोचनसिंह ने पीछे से आकर कहा—'आज देवी ने लाज रख ली। चलो राजा पुजारी को कुछ देते चलें।'

कुन्जरसिंह ने कोई उत्तर न दिया। जब वे दोनों नरपतिसिंह के मकान के सामने पहुंचे, राजा की पालकी आगे निकल गई थी। लोचनसिंह ने घोड़े पर चढ़े-चढ़े नरपति को पुकारा। दरवाजे पर सांकल चढ़ी थी किसी ने उत्तर न दिया।

कुन्जरसिंह ने आगे बढ़ते हुये कहा—'आओ, मैं नहीं ठहरूंगा।'

लोचनसिंह ने फिर पुकार लगाई। उस मकान से तो कोई उत्तर नहीं मिला, परन्तु एक पड़ोसी ने किवाड़ों के पीछे से कहा—'वह तो देवी के साथ दोपहर के बाद न जाने कहाँ अन्तर्धान हो गये।'

लोचनसिंह चल दिया। कुञ्जरसिंह कुछ और प्रश्न करना चाहता था, परन्तु वह पड़ोसी पौर से खिसककर अपने घर के किसी भीतरी भाग में जा छिपा। लोचनसिंह बोला—'देवी कूच कर गई। चलिये।'

सब लोग डेरे पर पहुंचे। राजा की मरहम पट्टी हो गई। घाव काफ़ी लगे थे, परन्तु कोई भय की बात न जान पड़ती थी। लोग रात भर उपचार में लगे रहे। देवीसिंह को भी बुलाया गया। कुञ्जरसिंह उसकी दवा-दारू करता रहा। अवस्था चिन्ताजनक थी।

दलीपनगर के सरदार राजा को दूसरे ही दिन दलीपनगर ले गये। राजा ने देवीसिंह भी साथ ले लिया।

[८]

दलीपनगर पहुंचने पर राजा के घाव अच्छे हो गये, परन्तु पागलपन बहुत बढ़ गया और उनकी दूसरी बीमारी ने भी भयानक रूप धारण किया। देवीसिंह को अच्छे होने में कुछ समय लगा। राजा का स्नेह उस पर इतना बढ़ गया कि निजी महल में उसे स्थान दे दिया।

राजा का स्नेह-भाजन होने के कारण बड़ी रानी भी देवीसिंह पर कृपा करने लगीं और छोटी रानी अकारण ही घृणा।

रामदयाल बचपन से महलों में आता-जाता था। उन दिनों तो वह राजा की विशेष टहल ही करता था। रानियाँ उससे पर्दा नही करती थीं। छोटी रानी का वह विशेष रूप से कृपा-पात्र था, परन्तु इतना चतुर था कि बड़ी रानी को भी नाखुश नहीं होने देता था।

एक दिन किसी काम से छोटी रानी के महल में गया। छोटी रानी ने राजा की तबियत का हाल पूछा। वह स्वयं राजा के पास महीने में एकाध बार जाती थी।

अवस्था का समाचार सुनकर रानी ने कहा—'अभी तक महाराज ने किसी को उत्तराधिकारी नही बनाया। यदि भगवान् रूठ गये, तो बड़ी विपद आयेगी।'

बात टालने के लिये रामदयाल बोला,—'महाराज, काकाजू की तबियत जल्दी अच्छी हो जायेगी। हकीम जी ने विश्वास दिलाया है।'

'भगवान ऐसा ही करे। परन्तु हकीम की बात का कुछ ठीक नही।' फिर कुछ सोचकर रानी ने कहा—'कुन्जरसिंह राजा तो दासी के पुत्र हैं, उन्हें गद्दी नहीं मिल सकती। वैसे ही राजसिंहासन उसकी रोनी सूरत के विरुद्ध है।'

'इसमें क्या सन्देह है महाराज!' रामदयाल ने हाँ में हाँ मिलाई

'महराज ने अपने महलों में उस नये मनुष्य को क्यो रक्खा है?'

एक बुन्देला ठाकुर है, महाराज पालर की लड़ाई में वह बहुत आड़े आये थे, इसलिये दवा—दारू के लिये अपने खास महलों में काकाजू ने रख लिया है।'

'जनार्दन शर्मा की उस पर कृपा है या नहीं? मन्त्री तो बेचारा अपने बाप का लड़का होने के कारण मन्त्रित्व कर रहा है। उस गधे मे गाँठ की जरा भी बुद्धि नहीं। लोचनसिंह जङ्गल के बाँस की तरह सीधा बस, राज्य तो धूर्त जनार्दन कर रहा है। बड़ी रानी के महलों में भी जुहार करने जाता है या नहीं?'

'महाराज वह तो सभी जगह आते—जाते है।'

'अच्छा एक बात बतला। जनार्दन महाराज के कान में कभी कुछ कहता है या नही?'

'मेरे सामने अभी तक तो कुछ नहीं। महाराज तो उन्हें गाली देते रहते है।'

'लोचनसिंह तो आते—जाते रहते हैं!'

'नित्य महाराज, परन्तु उनसे काकाजू की बातचीत बहुत कम होती है।'

'बातचीत किससे ज्यादा होती है?'

इसके बाद ही कालपी से एक दूत आया। दिल्ली में फर्रुखसियर नाम-मात्र का राज्य या कुराज्य कर रहा था। चारों ओर मार-काट मची हुई थी। अन्तिम मुगल सम्राट के थपेड़ों ने जो भयंकर लहर भारतवर्ष में उत्पन्न कर दी थी, उसने क्रांति उपस्थित कर दी। दिल्ली के शासन का संचालन सैयद भाई कर रहे थे। किसी राजा या रजवाड़े को चैन न था। सब शासक परस्पर गुट्टों में बट एक दूसरे से उलझे हुए थे। सब अपनी अपनी स्वतंत्रता की चिन्ता में डूबे हुए थे। उत्तर-भारत में सैयद भाइयों की तूती बोल रही थी। उनकी एक छाया सैयद अलीमर्दान के रूप मे कालपी-नामक नगर में भी थी, जो उस समय बुन्देलखण्ड की कुन्जी और मालवे का द्वार समझा जाता था। सैयद भाइयों को उत्तर-भारत के ही झगडों से अवकाश न था, दक्षिण-भारत अलग दम घोटे डालता था। अलीमर्दान का भविष्य बहुत कुछ सैयद भाइयो के पल्ले से अटका हुआ था। दलीपनगर उस समय के राजनीतिक नियमानुसार दिल्ली का आश्रित राज्य था। दिल्ली को उस समय दलीपनगर और कालपी दोनों की जरूरत थी। कम-से-कम दिल्ली को उन दोनों से आशा भी थी। कालपी वस्तुतः दिल्ली की सहायक थी, दलीपनगर केवल शाही कागजों मे दोनों की मुठभेड़ में दिल्ली को कालपी का पक्ष लेना अनिवार्य सा था। परन्तु यह तभी हो सकता था, जब दिल्ली को अपनी अन्य उलझनों से साँस लेने का अवकाश मिलता। अलीमर्दान इस बात को जानता था और उसे यह भी मालूम था कि जाने किस समय कहाँ के लिये दिल्ली से बुलावा आ जाय; इसलिये उसने पालर के पास अपनी टुकड़ी के ध्वस्त किये जाने पर तुरन्त कोई बड़ी सेना बदला लेने के लिये नहीं भेजी केवल चिट्ठी भेज दी। एक पत्र दिल्ली भी भेजा कि दलीपनगर बागी हो गया है। परन्तु चिट्ठी में पद्मिनी का कोई जिक्र न किया। अपनी उलझनों की मात्रा में एक की और बढ़ती होती देखकर बादशाह ने उसे विशेष अवकाश के अवसर पर विचार करने के लिये रख लिया।

जो चिट्ठी दलीपनगर आई थी, उसमें ये चार माँगें की गई थीं—

(१) पालर की रूपवती दांगी कन्या एक महीने के भीतर दिल्ली के शाहंशाह की सेवा में कालपी द्वारा भेज दी जाय।

(२) लोचनसिंह नामक सरदार को जिन्दा या मरा हुआ भेज दिया जाय।

(३) एक लाख रुपया लड़ाई के नुकसान का हर्जाना पहुंचा दिया जाय।

(४) दलीपनगर का कोई जिम्मेदार कर्मचारी या सरदार राज्य की ओर से कालपी आकर क्षमा-याचना करे।

यदि एक भी माँग पूरी न की गई, तो दलीपनगर की बस्ती और सारे राज्य को शाही सेना द्वारा खाक में मिला देने का प्रस्ताव भी उसी चिट्ठी में किया गया था।

यह चिट्ठी मन्त्री को दी गई। मन्त्री ने जनार्दन के पास भेज दी। चिट्ठी पाकर जनार्दन गूढ़ चिन्ता में पड़ गया। हर्जाना देकर और माफी माँगकर पिंड छुड़ा लेना तो व्यवहारिक जान पड़ता था, परन्तु बाकी शर्तें बहुत टेढ़ी थीं। पद्मिनी बादशाह के लिये नहीं मांगी गई थी, बादशाह की ओट लेकर अलीमर्दान ने उसे अपने लिये चाहा था, यह बात जनार्दन की समझ में सहज ही आ गई। लोचनसिंह को जीवित या मृत किसी भी अवस्था में कालपी भेजना दलीपनगर में किसी के भी बल के बाहर की बात थी। किन्तु सबसे अधिक टेढ़ा प्रश्न उस समय इन बातों को राजा के सम्मुख उपस्थित करने का था।

बिना पेश किये बनता नहीं था और पेश करने की हिम्मत पड़ती न थी। जनार्दन ने आगा हैदर को सब हाल सुनाकर सलाह की। 'हकीम जी, या तो अब राजा को जल्दी स्वस्थ करो, नहीं तो मुझे छुट्टी दो। कहीं गङ्गा किनारे अकेले बैठकर राम-भजन करूँगा।' जनार्दन ने कहा।

हकीम ने कहा—'यदि आपका हौसला पस्त हो गया, तो इस राज्य की पूरी बरबादी ही समझिये।'

जनार्दन जरा मचला। बोला—'नहीं हकीम जी, अब सहा नहीं जाता। रोज-रोज नई-नई मुश्किलें नजर आती है। राजा दिन पर दिन रोग में डूबते चले जाते है और हर घड़ी जो गालियाँ खाने को मिलती हैं उनका कोई हिसाब नहीं। अब आप इस आफत को सम्भालिये, मेरे बूते की नही है।'

'राजा अब चङ्गे नहीं होते।' आगा हैदर ने उसांस लेकर कहा।

'पहले ही कह दिया होता।'

'तो क्या होता? कुहराम मचाने के सिवा और क्या कर लेते?'

'नाहक इतना दम-दिलासा दिलाये रहे। अब क्या करें? कोई राज्य साथ देने को तैयार न होगा। सिवा मराठों का आश्रय लेने के और कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता। सो उसके बदले आधे राज्य से यों ही हाथ धोने पड़ेंगे।'

हकीम के मन में जरा बल पड़ गया। बोला—'जितना करते बना मैंने इलाज किया। मैं कोई फरिश्ता तो हूं नहीं कि रोग को छू-मन्तर कर दूं।'

जनार्दन ने खिसियाकर कहा-'इस कालपी की चिट्ठी को आप ही राजा के सामने पेश करें।'

'मन्त्री होंगे आप, चिट्ठियाँ पढ़कर सुनाऊँ मैं!' हकीम ने त्योरी बदलकर कहा—'मुझे सिवा वैद्यक के कुछ नहीं करना है। जिसे चारों तरफ अपने हाथ फेकने हों, वही यह काम खूबी के साथ कर सकता है। यदि राजा या आप लोग मुकर जायेंगे, तो अपने घर बैठूंगा। खुदा ने रोटी-भाजी के लायक बहुत दिया है।'

'जब दलीपनगर का ही सत्यानाश हो जायगा, तब क्या खाओगे हकीम जी?'

'जो जनार्दन महाराज खायेंगे, वही बन्दा भी खायगा। आप ही ने इतनी सम्पत्ति जोड़ रक्खी है कि सबसे ज्यादा चिन्ता आपको है।'

जनार्दन का क्षोभ कम हो गया। भाव बदककर बोला—'हकीमजी, मैं इतना घबरा गया हूं कि कोई उपाय नहीं सूझता। अपनों से न कहूं, तो किसके सामने दुःख रोऊँ? आप ही कहिये, आप कहते थे कि कालपी के सैयद को तो मैं किसी न किसी तरह मना लूंगा।'

'पण्डितजी।' हकीम ने उत्तर दिया—'वह मेरा रिस्तेदार तो है नहीं अपनी जबान और ईमान का भरोसा था। मैंने स्वप्न में भी न सोचा था कि सैयद होकर ऐसा जालिम निकलेगा।' फिर एक क्षण सोचकर बोला—'सैयद की शिकायत बिलकुल अन्याय-मूलक नहीं है।'

जनार्दन ने सोचकर कहा—'अब इस चिट्ठी को मैं ही पेश करता हूं। परन्तु आप कृपा करके मौजूद रहियेगा।'

आगा हैदर ने स्वीकार किया। एक दूसरे के अलग होने के समय दोनों अशान्त थे। जनार्दन इस कारण कि निश्चय और अभ्यास के विरुद्ध वह अपने भावों की उत्तेजना को संयत न रख सका और वैद्य इस कारण कि जनार्दन सहृदय मित्र भी मुझे अयोग्य वैद्य समझते है।

जनार्दन आगा हैदर की उपस्थिति में राजा के पास पहुंच गया। परन्तु उसने अपने पैमाने के हिसाब से एक बुद्धिमानी का काम किया। दूत के जरिये कालपी जवाब भेज दिया कि हरजे की रकम एक लाख बहुत है, परन्तु दी जायगी और मांफी मांगने के लिये प्रधान राज्य कर्म-चारी जनार्दन शर्मा स्वयं शीघ्र दरबार में उपस्थित होंगे। दांगी-कन्या दलीपनगर राज्य की हद के बाहर कहीं लापता है और लोचनसिंह की चिन्ता न की जाय। जनार्दन राजा के गाली-गलौज के लिये दूत को टिकने नहीं देना चाहता था। इसलिये यह सम्वाद लेकर लौटा दिया। उसने सोचा कुछ समय मिल जावेगा, इस बीच में बाहर की घटनाओं के परखने का अवसर हस्तगत हो जायगा। और अपनी राजनीति को तदनुकूल ढालने और गढ़ने में आसानी रहेगी।

[१०]

जनार्दन का स्वभाव था कि जब तक बला टालते बने टाली जाय। उसका मुकाबिला केवल उस समय किया जाय, जब टालने का अन्य कोई उपाय नजर न आये।

राजा सुनें या न सुनें, समझें या न समझें परन्तु परम्परागत रीति के अनुसार कालपी की चिट्ठी लेकर उनके पास जाना ही पड़ेगा। रह-रहकर धैर्य खिसक रहा था और जी चाहता था कि राज्य छोड़कर कहीं चले जायें, परन्तु बाग-बगीचे थे मकान थे, अनाज और रुपये थे और थी प्रधान मन्त्री के नाम से पुकारे जाने की आशा।

राजा के सामने पहुंचते ही जनार्दन का मन और भी छोटा हो गया। उनकी तबियत आज और भी ज्यादा खराब थी। वह बहुत हँस रहे थे और बिलकुल बेसिर-पैर की बातें कर रहे थे। आगा हैदर मौजूद था।

राजा ने जनार्दन से खूब हँसकर कहा—'कहो बह्मनऊ आजकल किस घात में हो? तुम और कुन्जर मिलकर राज्य करोगे? याद रखना, वह भेड़िया लोचनसिंह तुम सबों को खा जायगा।'

जनार्दन हाथ जोड़े सिर नीचा किये रहा।

'तुम्हारे इस अवनत मस्तक पर अगर दो सेर गोबर लपेट दिया जाय, तो कैसा रहे?' राजा ने अट्टहास करके पूछा।

'महाराज का दिया सिर है, इनकार थोड़े ही है।' जनार्दन ने विनीत भाव से उत्तर दिया।

'हाँ-हाँ।' राजा ने उसी तरह कहना जारी रक्खा—'इसी विनय से तो तुम दुनियाँ को ठगते रहते हो महाराज। कितना धन और अन्न इकट्ठा कर लिया है, उफ! सोचकर डर लगता है। मरने के बाद सब सिर पर धरकर ले जायगा!' फिर यकायक गम्भीर होकर बोले—'हकीमजी बचूंगा या मरूँगा?'

'अभी महाराज बहुत दिन जियेंगे । राज-भक्त हकीम ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया, परन्तु स्वर में विश्वास की खनक न थी । तकिये पर सिर रखकर राजा बोले—'तब कुन्जरसिंह राज्य करेगा । वही करे, कोई करे । जनार्दन तुम राज्य करोगे ?'

'महाराज, ऐसा न कहें ब्राह्मणों का काम राज्य करने का नहीं है ।' जनार्दन ने जरा काँपकर कहा । राजा किसी गुप्त पीड़ा के मारे कराहने लगे ।

इतने में लोचनसिंह वहाँ आया । प्रणाम करके बैठ गया ।

लोचनसिंह ने हकीम से धीरे से पूछा—'आज अवस्था क्या कुछ अधिक भयानक है ।'

'नहीं, ऐसा कुछ अधिक नहीं ।' उत्तर मिला ।

लोचनसिंह बोला—'आप सदा यही कहते रहते हैं, परन्तु महाराज के जी के सम्भलने का रत्ती भर भी लक्षण नहीं दिखलाई देता है । सच्ची बात तो यह है कि राजा को वह बीमारी आप ही ने दी है ।'

'मैंने ।' हकीम ने आश्चर्य पूर्वक कहा ।

'हाँ आपने, निस्सन्देह आपने और किसी ने नहीं दी । बुढ़ापे में जवानी बुला देने का नुस्खा आप ही ने बतलाया । न मालूम किन-किन दवाओं की गरमी से महाराज का दिमाग आप ही ने जलाया ।'

दाँत पीसकर आगा हैदर महल की छत की ओर देखने लगा ।

राजा का ध्यान आकृष्ट हुआ । जनार्दन से पूछा-'क्या गड़बड़ है ? क्या मेरे ही महलों में किसी षड्यन्त्र की रचना कर रहे हो ?' जनार्दन के उत्तर देने के पूर्व ही लोचनसिंह बोला—'षड़यन्त्रों का समय भी महाराज इन लोगों ने मिल-जुलकर बुला लिया है, परन्तु जब तक लोचनसिंह के हाथ में तलवार है, तब तक किसी का कोई भी षड़यन्त्र एक क्षण नहीं चल पावेगा ।'

'क्या बात है ?' राजा ने आँखें फैलाकर पूछा ।

लोचनसिंह ने तुरन्त उत्तर दिया—'महाराज अपने किसी उत्तराधिकारी को नियुक्त कर दें नहीं तो शायद बीमारी के साथ-साथ गोलमाल भी बढ़ा चला जायगा। जगह-जगह लोग चर्चा करते है 'अब कौन राजा होगा?' जगह-जगह लोग सोचते होंगे 'मैं राजा होऊँगा, मैं राजा बन जाऊँगा। तबियत चाहती है, ऐसे सब पाजियों के गले काटकर कुत्तों को खिला दूं महाराज—'

राजा ने कराहते हुये कहा—'मूर्ख, बकवादी, पहले तू अपना ही गला काट।'

लोचनसिंह तुरन्त तलवार निकालकर बोला—'एक बार अन्तिम बार आदेश हो जाय और सब सह लिया जाता है, महाराज की व्यथा नहीं देखी जाती।'

'क्या करता है रे नालायक, डाल म्यान में तलवार को।' राजा ने भयभीत होकर कहा। फिर बहुत क्षीण स्वर में बोले—'हकीम जी, इस भयङ्कर रीछ को मेरे पास मत आने दिया कीजिये। यह न-मालूम इतने दिनों कैसे जीता रहा।'

हकीम सिर नीचा किये बैठा रहा।

लोचनसिंह ने भी कुछ नहीं कहा।

जनार्दन उस दिन ठीक मौका न समझ कर कालपी से आई हुई चिट्ठी के विषय में कोई चर्चा न करके लौट आया। लोचनसिंह भी साथ ही आया।

मार्ग में जनार्दन ने कहा—'आपसे एक विनती है ठाकुर साहब, जो बुरा न मानें, तो निवेदन करूं।'

'करिये।'

'ऐसे समय महाराज से कोई तीखी बात मत कहिये।'

'मैंने कौन-सी बात चिल्लाकर कही? क्या यह झूठ है कि अनेक स्थानों पर 'उत्तराधिकारी कौन होगा' इस बारे में तरह-तरह की न सुनने लायक वार्ता छिड़ती चली जा रही है? क्या आपको मालूम है कि

खास महलों में रानियाँ तक राजा के उत्तराधिकारी के विषय में बिना किसी मोह या दुःख के चर्चा कर रही है ? और कोई कहता तो सिर या जीभ काट लेता, परन्तु रानी को क्या कहूं ? अच्छा किया, जो मैंने अपना विवाह नहीं किया।'

'आपकी बात से राजा को कष्ट होता है।'

'तब आपने राजा को अभी तक नहीं पहचाना। राजा को कष्ट होता है आप सरीखे लोगों की ठकुर-सुहातियों से। ऐसा राजा कभी न हुआ होगा, जो सच्ची बात और सच्चे आदमियों का इतना आदर करे।'

'यह तो आप बिलकुल ठीक कहते हैं।' जनार्दन ने सावधानी के साथ कहा—'हम लोगों को बड़ी चिन्ता है कि ऐसे राजा के बाद कम-से कम ऐसा ही वीर-पोषक राजा हो। इस प्रश्न पर विचार करना आप सरीखे सरदारों का ही काम है। हम तो आप लोगों के किये हुये निर्धार का केवल पालन करने वाले हैं।'

[११]

कुञ्जरसिंह को राजसिंहासन के प्राप्त करने की बहुत आशा न थी। वह यह जानता था कि राजा का अन्तिम समय निकट है और उनके मरते ही सिंहासन के लिये दौड़ो-झपटी की धूम मच जायगी। उसका संसार में कोई न था, केवल राजा का स्नेह था, सो वह पालर से लौटने के बाद कदाचित राजा के पागलपन में ऐसा लीन हो गया कि उसके चिन्ह तक न दिखलाई पड़ते थे।

बड़ी रानी की जरूर कुछ कृपा थी, परन्तु उस कृपा में स्नेह के लिये, व्याकुल हृदय के लिये प्रीति न थी।

पालर में एक आलोक उसने देखा था। वह बिजली की तरह चमका और उसी तरह विलीन हो गया। उसकी दिव्यता का आतंक-मात्र मन पर गढ़ा हुआ था और जैसे प्रातःकाल कोई सुख-स्वप्न देखा हो, किसी

आकाश-कुसुम के दूर से एक क्षण के लिये दर्शन किये हों और वह विस्तृत अनन्त प्रसारमय प्रकाश में ही कहीं छिप गया हो।

एक-आध वार कुञ्जरसिंह ने सोचा, स्त्री थी, मनोहर थी, लज्जावती थी, एक वार स्नेह की दृष्टि से देखा भी था। परन्तु यह भाव वहुत थोड़ी देर मन में टिकता। उसके मानस-पटल पर जो चित्र वना था, वह स्पष्ट दृष्टिवाली, अपरिमित शालीनतामय नेत्रों वाली, कठिनाइयों के सामने अपनी कोमल, गोरी भुजा की एक छोटी-उङ्गली के संकेत से अनन्त लहरावलि की प्रवलताओं को जगाने वाली दुर्गा का था। स्वप्न सच्चा था अनूठा था, और शांतिदायक था। अथवा कदाचित् उत्साह-मात्र दान करने वाला। परन्तु उस समय के चिन्ताजनक और शून्य-से काल मे उस आलोक की दिव्यता-मात्र की स्मृति ही थी।

कुञ्जर को सिंहासन की आशा कम थी, परन्तु उपेक्षा न थी। उसने लोगों से प्रायः सुना था कि संसार मे पांसा पलटते विलंव नही होता।

राजा की वहुत वढ़ती वीमारी में एक दिन वड़ी रानी ने राजा के पास से लौटकर अपने महल में कुञ्जर को वुलाया।

कहा—'राजा का वचना असम्भव जान पड़ता है, मेरे सती हो जाने के वाद किसका राज्य होगा?'

'इस तरह की वातें सुनकर मेरा मन खिन्न हो जाता है और यथासम्भव मैं इस तरह की चर्चा से वचा सकता हूं।'

'परन्तु कुञ्जर!' रानी ने कहा—'जो अवश्यम्भावी है, वह होकर रहेगा।'

कुञ्जरसिंह ने एक क्षण सोचकर उत्तर दिया—'जो आप सती हो गईं और महाराज ने किसी को उत्तराधिकारी नियुक्ति न किया, तो इस राज्य का अनिष्ट ही दिखाई देता है।'

'छोटी रानी राज्य करेंगी।' रानी ने आँखें तानकर कहा—'वह सती न होगी।'

कुञ्जरसिंह बोला—'यह आपको कैसे मालूम ?'

'क्या मैं उनकी प्रकृति को नहीं जानती हूं ? वह राज्य-लिप्सा में चाहे जो कुछ कर सकती है ? वह देखो न, देवीसिंह नाम का एक दीन ठाकुर, जो महाराज ने अपने महल में ठहरा रक्खा है, उनकी आँखों में खटक गया है। कारण केवल इतना ही है कि मैने दो मीठी बातें कह दी थीं।' रानी ने उत्तर दिया।

'परन्तु।' कुञ्जरसिंह बोला—'महाराज उस बेचारे को थोड़े ही राज्य दे रहे है, जो छोटी सरकार को खटके।' और उसने घबराहट की एक सांस को दबाया।

रानी ने कहा—'कुञ्जरसिंह, जब तक मैं राज्य का कोई स्थायी प्रबन्ध न कर दूंगी, सती न होऊँगी। यदि मेरे पीछे रानी ने राज्य करके प्रजा को पीसा, तो मुझे स्वर्ग में भी नरक-यातना सी अनुभव होगी।'

'मेरे लिये जो कुछ आज्ञा हो, सेवा के लिये तैयार हूं। संसार में आपके सिवा और मेरा कोई नहीं।'

'तीन आदमियों के हाथ में इस समय राज्य की सत्ता बँटी हुई है—जनार्दन, लोचनसिंह और हकीमजी। इनमें से किस पर तुम्हारा काबू है ?'

'काबू तो मेरा पूरा किसी पर नहीं है।' कुञ्जरसिंह ने विश्वास परित्याग कर उत्तर दिया—'परन्तु लोचनसिंह थोड़ा-बहुत मेरा कहना मानते हैं।'

'और जनार्दन ?' रानी ने पूछा।

'वह बड़ा काइयाँ है। उसका दाव समझ में नहीं आता।'

'मैं उसे बहुत दिनों से जानती हूं। मैंने उसके साथ बहुत से अहसान भी किये हैं। वह उन्हें भूल नहीं सकता। उसे ठीक करना होगा।'

'कैसे ?' कुञ्जरसिंह ने भोले भाव से प्रश्न किया।

रानी ने अवहेलना की सूक्ष्म दृष्टि से कुञ्जर का अवलोकन किया।

फिर जरा मुस्कराकर बोली—'मैं उसे ठीक करूँगी। जो कुछ कहती जाऊँ करते जाना और यदि महाराज स्वस्थ हो गये और मैं उनके समय उस लोक को चली गई तो सोलह आना बात रह जायेगी।'

कुछ क्षण बाद फिर बोली—'कालपी से एक चिट्ठी आई थी। कल महाराज को जनार्दन ने सुनाई। आपे से बिल्कुल बाहर हो गये। रानी ने चिट्ठी का सविस्तार वृत्तान्त कुञ्जरसिंह को सुनाया।'

कुंजर ने भी उस चिट्ठी का हाल सुना था, परंतु यथावत् उसे मालूम न था। रानी के मुख से संपूर्ण ब्योरा सुनकर उसे आश्चर्य हुआ।

रानी बोली—'मुझे राज्य की खबरों का सब पता रहता है। यह तुमने समझ लिया या नही?'

कुञ्जर ने स्वीकार किया। बोला—'उस लड़की का पता क्या मुसलमानों को लग गया है।'

'नहीं, परन्तु जनार्दन ने पता लगा लिया है। बहुत सुरक्षित स्थान में विराटा के रजवाड़े के दाँगी राजा सबदलसिंह के दुर्ग में वह पहुंच गई है।' फिर कहा—'हकीमजी जनार्दन के कहने में हैं जनार्दन को ठीक कर लेने से वह भी ठीक हो जायेंगे।'

[१२]

राजा न सम्भले—मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की। पागलपन और शरीर की अन्य बीमारियो के बीच मे कभी-कभी कुछ चेत हो आता था। अवस्था इतनी खराब हो गई थी कि शायद आगा हैदर के सिवाय और किसी को उसकी चिन्ता न रह गई थी। सब बेचैन थे, व्यग्र थे उग्र चिन्ता में कि आगे क्या होगा?

जिस समय जनार्दन ने राजा को कालपी की चिट्ठी का सारांश सुनाया, सब उपस्थित लोगो को तरह-तरह की फूहड़ गालियाँ देकर अन्त में आज्ञा दी कि कालपी पर चढ़ाई करने की तैयारी कर दो।

बात-बात पर सिर काटने और कटवाने की योजना वाले लोचनसिंह को भी इस आज्ञा को पालन करने मे कठिनाई अनुभव हुई।

जनार्दन जानता था कि अलीमर्दान शीघ्र चढ़ाई न करेगा। दिल्ली षड़यन्त्रो के भंवर मे पड़ी थी। दिल्ली के प्रत्येक गुट की दृष्टि अपने प्रत्येक सहायक की सत्वर सहायता पर लगी थी। अलीमर्दान अपने भाग्य का अधिकांश भाग्य वहाँ के एक गुट से सम्बद्ध समझता था। दलीपनगर भी उस गुट का शत्रु न था। परन्तु किसी भी गुट का इतना आतङ्क दलीपनगर पर न था कि अलीमर्दान के सामने दांतों-तले तिनका दबाता। इसलिये जनार्दन ने सेना को धीरे-धीरे तैयार कर डालना ठीक समझा। बड़े पैमाने पर सेना रखना उस समय की माँग थी। शायद इस तैयारी से अलीमर्दान सहम जाय और यदि इससे न भी माना तो डट कर लड़ाई लड़ ली जायगी। परन्तु कालपी पर आक्रमण करना जनार्दन का ध्येय न था और न उसकी व्यवहार-मुलक राजनीति में इस प्रकार के विचार के लिये स्थान था। बज्र मुष्टि की नीति में विश्वास रखने वाले लोचनसिंह की सनक राजा की मनोवृत्ति पर निर्भर थी।

वास्तव में इसी का जनार्दन को वहुत खटका था। राजा कालपी पर चढ़ाई करने की आज्ञा दे चुके थे। जनार्दन दलीपनगर को इस तरह की मुठभेड़ से बचाना चाहता था। सेना की धीमी तैयारी से इस मुठभेड़ का कुछ समय तक बरकाव हो सकता था। जनार्दन को एक और बड़ी आशा थी—राजा का शीघ्र मरण। और, जो कुछ उसके मन में रहा हो, उसे कोई नही जानता था।

परन्तु वह इस विचार पर अवश्य पहुंच चुका था कि राजा के मरते ही दलीपनगर पर आने वाले तूफान का सहज ही निवारण कर लिया जा सकेगा।

जनार्दन ने राजा की एक दिन वहुत भयानक अवस्था देखकर और दोनों रानियों के बुलावों को टालने के बाद आगा हैदर के घर जाकर मन्त्रणा की।

कहा—'आज सवेरे राजा को जरा चेत था। स्थिति की भयंकरता देखकर, जी कड़ा करके मैंने राजा से स्पष्ट कहा कि किसी को गोद ले

लिया जाये। आश्चर्य है, वह इस बात पर नाराज नहीं हुये। केवल यह कहा कि अभी मैं नहीं मरूँगा, जिऊँगा। फिर मैं ज्यादा कुछ न कह सका।'

हकीम बोला—'अब उनके जीवन में बहुत थोड़े दिन रह गये हैं। बहुत कोशिश की, मगर यमराज का मुकाबिला नहीं कर सकता। राजा की बद-परहेजी पर मेरा कोई काबू नहीं। यदि कमबख्त रामदयाल मर जाय, तो शायद अब भी राजा बच जायें। उनकी न मुमकिन फरमाइशों को पूरा करने के लिये वह सदा कमर कसे खड़ा रहता है। ऐसा बद-कार है कि कुछ ठिकाना नहीं।'

'यदि मरवा डाला जाये?'

'यह आप जानें। मैं क्या कहूं?'

'हकीम जी बदन में फोड़ा होने पर आप उसे पालेंगे या काटकर साफ़ कर देंगे?'

'मैं यदि जर्राह होऊँगा, तो साफ करके ही चैन लूंगा। मगर मैं हकीम हू, जर्राह नही।

'खैर, जिसका जो काम होता है, वह उसे करता है। न्यायाधीश शूली की आज्ञा देता है, परन्तु शूली पर चढ़ाते है, अपराधी को चांडाल।

'मूजी है और उसने पाप भी बहुत किये हैं। आपके धर्म के अनु-सार उसे जो दण्ड दिया जा सकता हो, दीजिये।'

'परन्तु हकीमजी, यह आपने बड़ी टेढ़ी बात कही। रामदयाल का असल में दोष ही क्या है? मालिक ने जो हुक्म दिया, उसे सेवक ने पूरा कर दिया। धर्म-विधि से तो राजा का ही दोष है।'

'राजा करे सो न्याव, पाँसा पड़े सो दांव।'

'परन्तु अब राजा के अधिक जीवित रहने से न केवल उनका कष्ट बढ़ रहा है, प्रत्युत यह राज्य भी आफत की गहरी खाई की ओर अग्रसर हो रहा है।'

'जो होनी है, उसे कोई नहीं रोक सकता।'

'हकीम जी।' जनार्दन ने साधारण निश्चय के साथ यकायक कहा—'या तो राजा का रोग समाप्त होना चाहिये या उन्हें शीघ्र स्वर्ग मिलना चाहिये।'

'दोनों बातें परमात्मा के हाथ में हैं।' हकीम ने निराशा-पूर्ण स्वर में कहा।

जनार्दन बोला—'नहीं आपके हाथ में है।'

'यानी ?'

'यानी यह कि आप ऐसी दवा दीजिये कि या तो उनका रोग शीघ्र दूर हो जाय या उनका कष्ट-पीड़ित जीवन समाप्त हो जाय।'

आगा हैदर सन्नाटे में आ गया। बोला—'शर्माजी अपने मालिक के साथ यह नमकहरामी मुझसे न होगी चाहे आप उनके साथ मुझे भी मरवा डालिये।' अबकी बार जनार्दन की बारी सन्नाटे में पड़ने की आई।

ज़रा रुखाई के साथ बोला—'अभी-अभी बेचारे रामदयाल के खतम होने का समर्थन तो कर रहे थे, परन्तु जिसके अत्याचारों के कारण बेचारी प्रतिष्ठित प्रजा बिलबिला रही है, जिसकी नादानी की वजह से कालपी का फौजदार इस निस्सहाय जनपद को सर्वनाश के समुद्र में डुबोने के लिये आ रहा है, जिसकी वज्र-कामुकता के मारे असंख्य भोली-भाली, सती स्त्रियाँ मुंह पर कालिख पोतकर संसार में मक्खियाँ उड़ाती फिर रही हैं, जिसका—

'बस-बस माफ कीजिये।' हकीम बोला—'आपको जो करना हो, कीजिये, मैं दखल नहीं देता। चाहे किसी को राजा रानी बनाइये, मुझसे कोई वास्ता नहीं। परन्तु अपने ईमान के खिलाफ मै कुछ न कर सकूंगा।'

बिना किसी व्याकुलता के जनार्दन ने बड़ी अनुनय के साथ प्रस्ताव किया— 'हकीमजी मै हाथ जोड़ता हूं, कुछ तो इस राज्य के लिये करो, जिसके अन्न-जल से हमारे और आपके हाड़-मांस बने हैं।'

'क्या करूँ ?' हकीम ने अन्यमनस्क होकर पूछा ।

जनार्दन ने उत्तर दिया—'सैयद अलीमर्दान को मना लो। दलीप-नगर को बचा लो। सुना है उसकी फ़ौज कालपी से शीघ्र कूच करने वाली है यदि आप उसे बिलकुल न रोक सकें, तो कम-से-कम कुछ दिनों तक अटका लें तब तक मैं राजा द्वारा किसी उत्तराधिकारी को नियुक्त कराके राज्य को सुव्यवस्थित करा लूंगा। यदि राजा बच गये, तो उत्तराधिकारी की देख-रेख में राज-काज ठीक तौर से होता रहेगा, न बचे, तो जो राजा होगा, सम्भाल कर लेगा। इस समय सबके मन किसी अनिश्चित, अंधकारावृत्त, अदृश्य, घोर विपत्ति के आ टूटने की संभावना के डर से थर्रा रहे हैं मानो मनुष्य में कोई शक्ति ही न हो। सामने सहायक देखकर ये ही भय-कातर लोग प्रबल हो उठेंगे और यह राज्य विपत्ति से बच जायगा।'

इस अनुनय की प्रबलता ने हकीम को कुछ सोचने पर विवश किया।

जनार्दन निस्सङ्कोच कहता चला गया—'यदि प्रजा अपने आप कुछ कर सकती होती, तो हमें और आपको इतना ऊँच-नीच न सोचना पड़ता। उसका सशक्त या अशक्त होना अच्छे-बुरे राजा पर निर्भर है। देखिये, छोटे राज्यों के अच्छे नरेशों के आश्रय में प्रजा कैसे-कैसे भयानक आक्रमणकारियों का प्रतिरोध करती है और बड़े राज्यों के बुरे नरपतियों की मौजूदगी कराल विष का काम करती है।'

हकीम सोचकर बोला—'मैं कालपी तुरन्त जाने को तैयार हूं, परन्तु राजा के इलाज का क्या होगा ?'

'किसी अच्छे वैद्य या हकीम को नियुक्त कर जाइये।' उत्तर मिला।

हकीम ने कहा—'मैं अपने लड़के के हाथ मे राजा का इलाज छोड जाऊँगा और किसी हाथ में नही।'

'इसमें कोई खलल न डालेगा।' जनार्दन ने कहा—'और मैंने अत्यन्त विह्वलता के कारण जो दारुण प्रस्ताव आपके सामने उपस्थित

किया था, उसे भूल जाइयेगा। अवस्था इतनी भयानक हो गई है कि मेरा तो दिमाग ही खराब हो गया है।'

'खैर।' हकीम बोला—'इसका आप कोई ख्याल न करें। मैं अलीमर्दान को तो मनाने की कोशिश करूँगा ही, किन्तु दिल्ली के भी किसी गुट्ट को हाथ में लेकर अलीमर्दान को सीधा कर लूंगा। इस समय दिल्ली की सल्तनत में एक और की बहुत चल रही है। शायद उसकी मार्फत अलीमर्दान को काफी समय के लिये दिल्ली बुलवा सकूं।'

[१३]

'लोचनसिंह के हाथ में सारी सेना नहीं है। मैं कभी नहीं मानूंगी कि सब सरदार उसके कहने या तावे में है।' रानी ने उस दिन देर तक कुञ्जरसिंह को तटस्थ की तरह बात करते हुये सुनकर कहा।

अपनी पहले की कही हुई बातों पर डिगने या आशान्वित होने का कोई लक्षण न दिखलाते हुये कुञ्जरसिंह बोला-'राव अपनी ही घात में है और दीवान साहब अपने को महाराज से भी बढ़कर हकदार समझते है लोचनसिंह शूरता में उन सब स्वार्थियों से बढ़कर है और किसी विशेष पक्ष में नहीं समझा जाता है, इसलिये लोग उसकी बात मानने का कम से कम दिखावा अवश्य करते हैं।'

'जो आदमी संसार में यह प्रकट करता है कि मैं हथेली पर जान लिये फिरता हूँ और बात-बात में सिर दे डालने का दंभ करता है, उसे शूर, बोदापन कह सकता है। उस दिन तो तुम कहते थे कि तुम्हारे कहने में आ जायगा।'

'आपने भी तो आज्ञा की थी आप जनार्दन को ठीक कर लेंगी।'

'वह तो होगा ही अन्त मे।' रानी बोली—'परन्तु इसमें तुम्हारे किस प्रयत्न को गौरव और पुरस्कार मिलेगा?'

कुन्जर ने उत्तर दिया–'सम्भव है, काकाजू स्वस्थ हो जायें।'

'असम्भव है।' रानी ने बिना किसी छद्म के कहा—'अब तो उनके कष्ट की घड़ियाँ बढ़–भर रही है।'

इतने में एक दासी ने आकर खबर दी कि रामदयाल आना चाहता है। बुला लिया गया।

एक बार कुन्जर और दूसरी बार रानी की ओर बिजली की तेज़ी के साथ देखकर बोला–'महाराज आज पंचनद की ओर जाने की तैयारी कर रहे हैं। निवेदन कराया है कि आप भी चलें।'

जरा अचम्भे में आकर रानी ने कहा—'जी कैसा है?'

'कुछ अच्छा है—यों ही है।'

'जनार्दन ने भी मान लिया है?'

'उन्होने यह कहकर समर्थन किया है कि स्थान–परिवर्तन से लाभ होगा।'

कुञ्जरसिंह ने पूछा—'कौन-कौन जा रहा है? लोचनसिंह भी जा रहे है?'

'हाँ राजा।' भृत्य ने झुककर उत्तर दिया—'सेना भी उनके साथ आयेगी, जितनी साथ के लिये आवश्यक होगी।'

रानी ने कहा—'छोटी महारानी जायेंगी?'

'हाँ महाराज।' उत्तर मिला।

'अच्छा, जाओ।' रानी बोली—'मैं थोड़ी देर में उत्तर भेजूंगी।'

रामदयाल जाने लगा। रानी ने रोककर कहा—'महाराज की अनुपस्थिति में और यहाँ से अनेक लोगों के चले जाने पर सेना किसके हाथ में छोड़ी गई है?'

उसने जवाब दिया—'शर्माजी, ने प्रबन्ध कर दिया है।'

रामदयाल चला गया।

कुञ्जरसिंह बोला–'जनार्दन ने अलीमर्दान को शांत करने के लिये आगा हैदर को कालपी भेजा है। जान पड़ता है उस दिशा से अब भय

का कारण नहीं है। इसलिये जनार्दन मान गये हैं। मेरी समझ में आपको वहीं चलना चाहिये, जहाँ जनार्दन और लोचनसिंह महाराज के साथ जायें। छोटी रानी साथ न जाती, तब भी आपका जाना आवश्यक होता।'

बड़ी रानी ने भी साथ जाने की सहमति प्रकट की।

[१४]

कालपी से आगा हैदर ने जनार्दन को लिखा था कि अलीमर्दान नाराज तो बहुत था, परन्तु अब शांत हैं और दलीपनगर को मित्र की दृष्टि से देखता है, लड़ाई की कोई सम्भावना नहीं और मुझे कुछ दिनों मेहमान बनाये रखना चाहता है।

असल बात कुछ और थी। निजामुलमुल्क हैदराबाद में करीब-करीब स्वतन्त्र हो गया था। मालवा स्वतन्त्रता के मार्ग पर दूर जा चुका था। परन्तु मराठे अपने सम्पूर्ण अधिकार के लिये वहाँ दौड़-धूप कर रहे थे। दिल्ली मे सैयद भाई अस्त हो चुके थे और वह कठपुतलियों को नचाने वाले ओछे हाथों में थी। बुन्देलखण्ड के पूर्वीय भाग में महाराज छत्रसाल की तलवार झनझना रही थी। मुहम्मदखाँ बंगश उस झनझनाहट का विरोध करता फिर रहा था। अलीमर्दान दिल्ली, मालवा और बंगश के चक्रव्यूह से बचकर अपनी धुन बना ले जाने की चिन्ता में था। दिल्ली का भय उसे न था, परन्तु उसकी ओट की परीक्षा थी। दिल्ली से ससैन्य आने के लिये बुलावा आया था। बिना समझे-बूझे शीघ्र दिल्ली पहुंच जाना उन दिनों दिल्ली का कोई सूबेदार फौजदार या सरदार आफत से खाली नहीं समझता था। मेरे लिये कोई षड़यन्त्र तो तैयार नहीं है ? मुहम्मद खाँ बंगश ने तो कोई शरारत नहीं रची है ?

बंगश उसका मित्र था। परन्तु अलीमर्दान उसकी लड़ाइयों में बहुत कम शामिल होता था होता भी तो उस समय के मित्र के षड़यन्त्र,

विष और खड्ग से कैसे वचता ? इसलिये उसे वंगश पर और वंगश को उस पर सन्देह रहता था। अतएव उसने शांति के साथ कालपी मे कम से कम कुछ दिनों डटे रहना तय किया। दलीपनगर पर आक्रमण करने की वात उसने सदा के लिये स्थगित कर दी हो, सो नही था। मित्र भाव दिखलाकर वह दलीपनगर को सुपुप्त रखना चाहता था। अवसर आने पर चढ़ाई कर देगा, इस निश्चय को उसने सावधानी से गाँठ में वाँध लिया था।

आगा हैदर का जो अतिथि-सत्कार हुआ, उसने अलीमर्दान के मनोगत भाव को और भी न समझने दिया।

ऐसी परिस्थिति में जनार्दन ने राजा के मनोवेग का समर्थन किया। दलीपनगर मे सेना का एक काफी वड़ा भाग अपनी मण्डली के कुछ विश्वस्त लोगों के हाथ छोड़ा और पंचनद की ओर राजा को लेकर कूच कर दिया। खवर लेने के लिये जहाँ-तहाँ जासूस नियुक्त कर दिये। वह राजा का साथ वहुत कम छोड़ता था।

रानियाँ साथ गई। देवीसिंह अव विलकुल चंगा हो गया था। उसे भी राजा ने साथ ले लिया।

कहने के लिये कई वार सोची हुई वात को जनार्दन ने मार्ग में एकांत पाकर देवीसिंह से कहा—'आप वड़े वीर है। उस दिन महाराज की रक्षा आप ही ने की।'

'वुन्देला का कर्तव्य ही और क्या है, शर्मा जी ?' देवीसिंह ने लापरवाही के साथ कहा—'परन्तु अव किस तरह उनके प्राण बचेंगे यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है।'

'दवा-दारू हो रही है। देखिये, आशा तो वहुत कम है।' आह भरकर जनार्दन वोला—'ऐसी दशा में महाराज को इतनी दूर नहीं आने देना चाहिये था।'

'यमुनाजी की रज में वह अपने जन्म की यात्रा समाप्त करना चाहते हैं, इसलिये हम लोगों ने निषेध का उपाय नही किया।

देवीसिंह ने पूछा—'यदि महाराज का स्वर्गवास बीच में ही हो गया, तब क्या कीजियेगा ?'

उत्तर मिला—'यमुनाजी की रज में उनके फूल विश्राम करेंगे। आपके प्रश्न के साथ हम सबकी एक और घोर चिन्ता का भी सम्बन्ध है। वह यह कि उनके पश्चत् इस राज्य का शासन कौन करेगा ?'

'सिवा बुन्देला के और कौन कर सकता है ?' देवीसिंह ने कहा—'कुञ्जरसिंह तो दासी-पुत्र है, गद्दी के हकदार नही हो सकते, इसलिये कोई भाई बन्द ही सिंहासन पर बैठेगा।'

'परन्तु।' जनार्दन ने मुस्कराकर कहा—'भाई-बन्द कोई ऐसा नहीं, जिसका दृढ़ता-पूर्वक अपने चेत में उन्होंने निषेध न किया हो। रानियाँ अवश्य हैं।'

देवीसिंह बोला—यह समय स्त्रियों के राज्य का नहीं।'

'और इधर उधर कोई भी उपयुक्त भाई बन्द नही। बड़ी कठिन समस्या है।'

'सब बुन्देले भाई-बन्द ही हैं।'

'आप भी ?' जनार्दन ने आँख गड़ाकर पूछा।

उसने उत्तर दिया—'हाँ मैं भी। प्रजा होने से क्या भाई-बन्द में अन्तर आ सकता है ?'

हँसते हुये जनार्दन ने पूछा—'आपको राजा नियुक्त कर दें तो ?'

देवीसिंह सन्न रह गया। जरा रीति दृष्टि से जनार्दन की ओर देखने लगा।

जनार्दन बोला—'यदि कर दें, तो गो-ब्राह्मणों की तो रक्षा होगी ?' और हँसा।

[१५]

पालर में और आस-पास भी खबर फैली हुई थी कि घोर लूट-मार और मार-काट होने वाली है। उत्तरी भारतवर्ष के लिये यह समय बड़े

संकट का था। उपद्रवों के मारे नगरों और राजधानियों में खलबली मची रहती थी। दिल्ली डाँवाडोल हो चुकी थी। उसके सहायक और शत्रु अपने-अपने राज्य स्थापित कर चुके थे। परन्तु ईर्ष्या और शत्रुता बढ़ने के भय से अपनी पूर्ण स्वतंत्रता बहुत थोड़े राजा या नवाब घोषित कर रहें थे। बहुत से स्वाधीन हो गये थे, किन्तु नाममात्र के लिये दिल्ली की अधीनता प्रकट करते रहते थे। इनमें जो प्रबल थे वे चौकस थे, निर्भय थे और उनकी प्रजा को बहुत खटका नहीं था, किन्तु ऐसे थोड़े थे जो छोटे या निर्बल थे, वे किसी प्रबल पड़ौसी या दूर के शक्तिशाली, तूफानी जन-नायक की ओर निहारते थे।

एक आग-सी लगी हुई थी। उसकी लौ में बहुत से जल-भुन रहे थे, अनेको झुलस रहे थे और उसकी आँच से तो कोई भी नही बच रहा था।

बड़नगर के राजा के लिये भी कम परेशानियाँ न थीं। पालर के निकट किसी होने वाले तूफान की खबर पाकर कुछ प्रबन्ध करने का संकल्प किया कि दूसरी ओर और बड़े झंझावातों की दुश्चिन्ता में फस जाना पड़ा। पालर के निकटवर्ती ग्रामो की रक्षा का कोई प्रबन्ध न किया जा सका। ऐसी अवस्था में साधारण तौर पर जैसे प्रजा को अपने भाग्य के भरोसे छोड़ दिया जाता था, छोड़ देना पड़ा।

पालर के और पड़ोस के निकटवर्ती ग्रामीणों ने इस बात को समझ लिया। जङ्गलों और पहाड़ो की भयंकर गोद मे छिपे हुये छोटे-छोटे गढ़पतियों की शरण के सिवा और कोई आसरा न था कोई कही और कोई कही चला गया। रह गये अपने घरों मे केवल दीन–हीन किसान जो हल खेती छोड़ कर कही न जा सकते थे। उन्हे पेट के लिये, राजा के लगान के लिये लुटेरों की पिपास के लिये खेतो की रखवाली करनी थी। आशा तो न थी कि चैत—बैसाख तक खेती बची रहेगी। यदि कही से घुड़सवार सेना आ गई तो खेतों मे अन्न का एक दाना और भूसे का एक तिनका भी न बचेगा। परन्तु जहाँ आशा नहीं होती, वहाँ निराशा

ईश्वर के पैर पकड़वाती है। यदि बच गये, तो कृतज्ञ हृदय ने एक आँसू डाल दिया और वह गये, तो भाग्य तो कोसने के लिये कहीं गया ही नहीं।

जिस समय बड़े-बड़े राजा और नवाब अपनी विस्तृत भूमि और दीर्घ-संपत्ति के लिये रोज-रोज खैर मनाते थे, अपने अथवा पराये हाथों अपने मुकुट की रक्षा में व्यस्त रहते थे और उसी व्यस्त अवस्था में बहुधा दिन में दो-चार घन्टे नाच-रङ्ग, दुराचार और सदाचार के लिये भी निकाल लेते थे, उस समय प्रजा अपनी थोड़ी-सी भूमि और छोटी-सी सम्पत्ति के बचाव की फिक्र करते हुये भी देवालयों में जाती, कथा-वार्ता सुनती और दान-पुण्य करती थी। सन्ध्या समय लोग भजन गाते थे। एक दूसरे की सहायता के लिये यथावकाश प्रस्तुत हो जाते थे। यद्यपि बड़ों के सार्वजनिक पतन की विषाक्त छाया में साधारण समाज को खोखला करने वाले अधर्ममूलक स्वार्थ का पूरा घुन लग चुका था, और कायरता तथा नीचता डेरा डाल चुकी थी, परन्तु बड़ों को छोड़कर छोटों में छल-कपट और बेईमानी का आम तौर पर दौरा-दौरा न हुआ था।

झाँझ बजाकर रामायण गाते थे। लुटेरों के आने की खबर पाकर इकट्ठे हो जाते थे। मुकाबले के लायक अपने को समझा, तो पिल पड़े न समझा, तो दे-लेकर समझौता कर लिया या समय टालकर किसी गढ़पति के यहाँ वन-पर्वत में जा छिपे।

पालर के सीधे-साधे जीवन में जहाँ विशाल झील में नहा-धोकर काम करना और पेट भर खा लेने के बाद शाम को झाँझ बजाकर ढोलक पर भजन गाना ही प्रायः, नित्य का सरल कार्य-क्रम था, वहाँ देवी के अवतार का चमत्कार ही एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। इसके रङ्ग को बाहर वालों ने अधिक गहरा कर दिया था, क्योंकि पालर वालों ने इसकी विज्ञप्ति के लिये स्वयं कोई कष्ट नहीं उठाया था।

वही चमत्कार उन दिनों उनकी विपत्ति का कारण हुआ। असंख्य

घुड़सवारों की टापों से टूटे हुये हरे-हरे पौधों की टहनियों को धूल के साथ गगन मे उड़ते देखना वहाँ के बचे-खुचे लोगों का जागते-सोते का स्वप्न हो गया था।

जिस दिन दलीपनगर के राजा की मुठभेड कालपी के दस्ते के साथ हुई, उस दिन कुमुद का पिता उसे लेकर कहीं चल दिया था। सब धन-सम्पत्ति नहीं ले जा पाया था। उसका ख्याल था कि शायद शान्ति हो जाये। थोड़े ही दिन बाद लौटकर आया।

उसके पडोस में केवल ठाकुर की एक लड़की, जिसका नाम गोमती था, रह गई थी। वह घर में अकेली थी। देवीसिंह के साथ इसी का विवाह होने वाला था। परन्तु दूल्हा को राजा की पालकी थामे हुये गिरते लोगों ने और गोमती ने देख लिया था। लोचनसिह की सहानु-भूतिमयी वार्ता गोमती नही भूली थी। दूसरे दिन जब राजा नायकसिह दलीपनगर की ओर चलने लगे, तब डर के मारे किसी पालर निवासी ने देवीसिंह की कुशल-वार्ता का समाचार भी न पूछ पाया था। गोमती स्वयं जा नहीं सकती थी। उड़ती खबर सुन ली थी कि हाल अच्छा नही है लोचनसिंह सरीखे मनुष्य जिस बेड़े मे हों, उसमें वह दीन घायल युवक कैसे वचेगा? परन्तु एक टूटती-जुड़ती आशा थी-शायद भगवान वचा लें, कदाचित दुर्गा रक्षा कर दे।

नरपतिसिंह को गाँव मे फिर देखकर गोमती को वड़ा ढाढ़स हुआ। जाकर पूछा—'काकाजू, कहाँ चले गये थे? दुर्गा कहाँ है?'

'मन्दिर में हैं।' नरपतिसिंह ने अपना सामान जल्दी-जल्दी बाँधते हुये उत्तर दिया।

'मैं अपनी दुर्गा की बात पूछती हूं।' गोमती बोली।

'मन्दिर मे है।' वही उत्तर मिला।

वड़ी विनय के साथ गोमती ने कहा-'काकाजू, मैं भी उसी मन्दिर में तुम्हारे साथ चलूँगी। जहाँ कुमुद होगी, वही मेरी रक्षा होगी। इस विशाल झील के सिवा और कोई मेरा यहाँ रक्षक नहीं।'

सामान का बाँधना छोड़कर नरपतिसिंह बोला—'क्या दुर्गा रक्षा नहीं करती हैं ? ऐसा कहने से बड़ा पाप लगता है।'

गोमती ने दृढ़ अनुनय के साथ कहा—इसीलिये तो आपके साथ चलूंगी। मेरे पास कोई सामान नहीं है। एक धोती और ओढने-बिछाने का छोटा-सा बिस्तर हैं, कन्धे पर लुटिया-डोर डाल लूंगी। यहाँ नहीं रहूंगी। साथ चलूंगी। जहाँ कुमुद होगी, वही चलूंगी।'

'चल सकोगी ?' करारे स्वर में नरपतिसिंह ने गोमती को विचलित करने के लिये कहा।

अचल कण्ठ से गोमती ने उत्तर दिया—'चलूंगी, चाहे जितनी दूर और चाहे जैसे स्थान पर हों।'

'विराटा भयानक बेतवा के बीच में यहाँ से दस कोस।'

'चलूंगी।'

थोड़ी देर बाद दोनों पोटली बाँधकर पालर से चल दिये।

[१६ [

टेढ़े-मेड़े, पथरीले-नुकीले और वन्य, पहाड़ों ओछे-सकरे मार्गों में होकर नरपतिसिंह विराटा पहुंच गया।

विराटा पालर से उत्तर-पूर्व के कोने में है। बेतवा के तट और टापू पर, घोर वन के आँगन में छोटीं, सम्पन्न बस्ती थी। राजा दाँगी था। नाम सबदलसिंह। नदी की कगार पर उसका गढ़ था, जो दूर से वन के सघन और दीर्घ-काय वृक्षों के कारण कई ओर से दिखलाई भी न पड़ता था।

गढ़ के ठीक सामने पूर्व की ओर नदी के बीचों बीच एक टापू पर एक छोटा मन्दिर छोटी-सी दृढ़ गढ़ी के भीतर था। इस मन्दिर में उस समय दुर्गा की मूर्ति थी जीर्णोद्धार होने के बाद अब उसमें शङ्कर की मूर्ति स्थापित है। दक्षिण की ओर यह टापू एक ऊँची पहाड़ी में समाप्त हो गया है। कहीं-कहीं पहाड़ी दुर्गम है। जिस ओर यह लम्बी-

चौड़ी चट्टानों में ढल गई है, उस ओर विस्तृत नीलिमामय जल-राशि है। नदी की धार टापू के दोनों ओर बहती है, परन्तु टापू से पूर्व की ओर धार बड़ी और चौड़ी है। इस पहाड़ी के नीचे एक बड़ा भारी दह है।

उत्तर की ओर टापू करीब पाँच मील लम्बी समथर, उपजाऊ भूमि में समाप्त हुआ है। सबदलसिंह की छोटी-सी बैठक उस मैदान में थी। और बैठक के चारों ओर एक छोटा-सा उद्यान।

मन्दिरों में कभी कोई साधू-बैरागी आकर कुछ दिनों के लिये ठहर जाता था; वैसे खाली पड़ा रहता था। पूजा का अवश्य प्रबन्ध था, जैसा पुराने विराटा के बिलकुल उजड़ जाने पर भी इस एकान्त मन्दिर की पूजार्चा का आज भी कुछ-न-कुछ प्रबन्ध है।

विराटा में भी कुमुद के दुर्गा होने की बात विख्यात थी। राजा दाँगी था, इसलिये कुमुद के देवत्व को यहाँ और भी अधिक बड़प्पन मिला। नरपतिसिंह थोड़े ही दिनों गाँव की बस्ती में रहा। नदी के बीच में टापू की पहाड़ी पर स्थित मन्दिर उसे अपनी रक्षा और निधि के बचाव के लिए बहुत उपयुक्त जान पड़ा। कुमुद भी आवभगत और पूजा की बहुलता मारे इतनी थक गई थी कि टौरिया के मन्दिर के एकान्त को उसने कम-से-कम कुछ दिनों के लिये बहुत हितकर समझा। नरपति के जाने के पहले ही कुमुद इस मन्दिर में चली आई थी।

पालर से लौटकर गाँव में पहुंचने पर नरपतिसिंह ने गोमती से कहा—'तुम अब यही कही अपने रहने का बन्दोबस्त करो। मैं देवी के पास मन्दिर में जाऊँगा।'

'मै भी वहीं चलूँगी।'

'बड़ा भयानक स्थान है।'

'भयानक स्थानो से नही डरती। देवी की सेवा में मेरा सम्पूर्ण जीवन सुभीते के साथ बीत जायगा।

'परन्तु यदि देवी ने पसन्द न किया तो ?'

गोमती ने विश्वास के साथ उत्तर दिया—'अवश्य करेंगी। देवता के पास एक पुजारिन सदा रहेगी। आप जब कभी टापू छोड़कर बस्ती में राजा के पास आवेंगे, देवी जी को अकेला न रहना पड़ेगा। आजकल किसी को अकेला न रहना चाहिये।'

नरपतिसिंह ने जिद न की।

जिस समय गोमती मन्दिर में पहुंची, कुमुद बेतवा के पूर्व तट के उस ओर वन के जङ्गली पशुओं की आवाजें सुन रही थी। संध्या हो चुकी थी। पश्चिम दिशा का क्षितिज सुनहले रङ्ग से भर चुका था और पूर्व की ओर से अन्धकार के पल्लड़ के पल्लड़ नदी की स्वर्ण-रेखा पर मानो आवरण डालने वाले थे। मन्दिर के चारों ओर नदी की प्रशस्त धारायें अन्धकार और वन्य पशुओं के चीत्कारों से कुमुद की एकांतता को अलग सा कर रही थी। पिता को देखते ही एकांतता का गांभीर्य चला गया। हर्ष की एक सुनहली रेखा से आँखें जग गईं और गोमती को देखते ही आनन्द की पुलकावली का रेखा जाल विकसित मुख पर नाचने सा लगा।

बिना किसी प्रतिबन्ध के गोमती को गले लगाकर बोली—गोमती तुम भी आ गई! अच्छा किया। भूली नहीं। एक से दो हुये। अच्छी तरह हो! अब पालर चलेंगे, साथ ही चलेंगे।'

यह मिलाप नरपतिसिंह को भी बुरा नहीं लगा। देवी को—अपनी कन्या को—एक घड़ी के लिये स्वाभाविक आनन्द में लहराते देखकर वह बूढ़ा भी प्रसन्न हो गया। उसने सोचा—ऐसा मिलाप बहुधा और सबके सामने न होना चाहिये।

गोमती भी उमड़े सौन्दर्य की युवती थी। परन्तु किसी गुप्त चिन्ता और प्रकट थकावट ने उसे मेघाच्छन्न चाँदनी की तरह बना रक्खा था।

आलिंगन से छूटकर गोमती ने सजल, कृतज्ञ नेत्रों से एक क्षण उन महिमावान् स्थिर नेत्रों की ओर देखा। बोली'—आपकी शरण में आ गई हूं, अब कोई कष्ट न रहेगा।' और रोने लगी।

नरपतिसिंह अपना सामान यथास्थान रखने में जुट गया।

कुमुद ने गोमती का हाथ पकड़कर कहा—'आप-आप मत कहो, तुम कहो।'

'देवी से ?'

'देवी मन्दिर में है। मैं तो पुजारिन-मात्र हूं।'

'नही, आप ही कहूंगी। सब लोग आप कहते है।'

'नहीं मुझे वही बहुत प्यारा है। आप-आप सुनते-सुनते थक गई हूं। दूसरे शब्द में शांति और सुख है।'

'जैसा आदेश हो ।'

'फिर वही ! अच्छा देखा जायगा। परन्तु मैं तुम्हारी बहिन हूं, यह सम्बन्ध मानने का वचन दो।'

'बड़ी बहिन ?'

'यही सही।'

'सो तो है ही।'

कुमुद ने कहा—'तुम बहुत थक गई हो। सारी देह धूल और धूप में धूमरी पड़ गई है। नहा-धोकर भोजन करो।'

इतने में नरपतिसिंह का ध्यान आकृष्ट हुआ। उसे सिर के बाल बिखेरे पास आता देखकर कुमुद की मुद्रा धीर हो गई।

नरपतिसिंह बोला—'गोमती, तुम इस कोठरी में अपना डेरा डाल लो। तुम्हें मै कुछ वस्त्र और दूंगा। भोजन करके आराम से सो जाओ।'

कुमुद ने अपने सहज मीठे स्वर में कहा—'हम और वह एक ही स्थान पर अर्थात एक ही कोठरी में सोवेंगी। मैने उसे अपनी छोटी वहिन बना लिया है ?'

'देवी और गोमती ब्हिन नही हो सकती। नरपतिसिंह ने जरा अधिकार के स्वर में कहा। फिर नरम होकर बोला—'अच्छा, देवी के मन में जैसा आवे, करें। देवी जिस पर कृपा करें, कर सकती हैं।'

गोमती को सम्बोधन करते हुये उसने कहा-'गोमती बेटी, यह स्मरण रखना कि हमारी तुम्हारी देह मानवों की है और कुमुद कुमारी दुर्गा का अवतार है।'

'अवश्य।' गोमती ने उत्तर दिया।

भोजन के उपरांत नरपतिसिंह मन्दिर के एक बड़े कोठे में जा लेटा और तुरन्त सो गया। दूसरी ओर की एक कोठरी में कुमुद और गोमती जा लेटीं।

न मालूम आज कुमुद गोमती को क्यों गले लगा लेने की बार-बार अभिलाषा कर रही थी। आज की सन्ध्या के पहले उसने कभी किसी को गले नही लगाया था। पीठ पर हाथ फेरा था, सिर पर स्थापन किया था, वरदान और आशीर्वाद दिये थे। परन्तु दो स्त्रियाँ घण्टों तक जो वे-सिर-पैर की निरर्थक बातें करती हैं और फिर भी नहीं अघातीं, इसका उसके जीवन में कभी अवसर न आया था।

गोमती थकी हुई थी, अङ्ग-अङ्ग चूर हो रहे थे, परन्तु मन बहुत हल्का था और आँखों में नींद न थी। जीभ वार्तालाप के लिये लौंक-सी रही थी। परस्पर की दूरी ने मुहर सी लगा रक्खी थी। कुमुद इस अवस्था को अवगत कर रही थी। एक स्त्री-हृदय को दूसरे स्त्री-हृदय की मूक भाषा समझने में देर न लगी।

जब दोनों को चुपचाप लेटे–लेटे आधी घड़ी बीत गई, कुमुद ने कहा—'गोमती!'

उसने उत्तर दिया-'मैं अभी सोई नही हूं। आप भी जाग रही है?'

'फिर वही आप!' जी के उमड़े हुये किसी अज्ञात, अगम्य, वेग को रोकते हुये हँसकर कुमुद बोली–'भाई, ऐसे काम नहीं चलेगा। इन दूर की बातों से अन्तर न बढ़ाओ। क्या बहिन कहने से तुम्हारे सिर कोई विपद् आती है?'

कुमुद की हँसी में हलकी पैंजनी की क्षीण खनक थी, परन्तु गोमती जरा विचलित-कम्पित स्वर मे बोली–'मैं ठाकुर की बेटी हूं, इसलिये

नहीं डरती, वैसे देवी के मन्दिर में और देवी के इतने निकट रहने पर किसी मनुष्य देह धारी में साहस नहीं हो सकता !'

'तुम्हारी जैसी तो मेरी भी देह है, गोमती ! क्या तुम मुझसे डरती हो ?'

'देवी, मैं किसी से नहीं डरती। परन्तु सिंहवाहनी दुर्गा का आदर किस तरह हृदय से दूर किया जा सकता है। लोग कहते हैं, आप रात को सिंह पर सवार होकर संसार भर का भ्रमण और दीन-दुखियों का कष्ट निवारण करती हैं।'

'गोमती, लोग क्या-क्या कहते है ?' अलसाये हुये कण्ठ से कुमुद ने प्रश्न किया। --

गोमती ने उत्तर दिया-'लोग कहते और विश्वास करते है। और यह बात सच भी है कि दुर्गा रानी किसी प्राणी के कष्ट को रात्रि के अवसान पर उतनी ही मात्रा में नही रहने देती। प्रात.काल होते-होते कलियों को चिटक, फूलों को महक, हरियाली दमक, अनाथों को सनाथता, पीड़ितों को स्वास्थ्य और दलितों को आश्रय देती हैं-जैसा आज मुझे मिला।'

'गोमती, तुम पढ़ी-लिखी हो।' कुमुद ने जरा हँसकर कहा-'इसलिये कविता-सी कह गई, परन्तु क्या यह नहीं जानती कि देवता का वास मूर्ति में है, मैं तो दुर्गा की केवल पुजारिन हूं ?'

वह बोली-'मेरा भाग उदय होना चाहता है, इसलिये आप इतनी दयालु होकर इस तरह मुझसे बाते कर रही है। विनती यह है कि यह कृपा कभी कम न हो।'

एक क्षण सोचकर कुमुद ने कहा-'पालर में उस दिन की लड़ाई मैं रोकना चाहती थी, परन्तु न रोक सकी। दुर्गाजी की यही इच्छा रही होगी। चाहते हुये भी मैं उस रक्त-पात को न रोक सकी और यहाँ आना पड़ा। इस पर भी गोमती तुम वास्तविक दुर्गा को भुलाकर मुझे दुर्गा

कहती हो ? मैं तो केवल होम आदि करने वाली हूं और यदि तुम मुझे ऐसा ही मानती हो, तो मुझे वहिन कहलवाने में ही आनन्द है।'

गोमती ने कहा—'यदि ऐसा है, तो केवल अकेले में वहिन कह सकूंगी। सवके सामने कहने में मुझे भय लगेगा।'

'उस दिन युद्ध में क्या हुआ था।'

'दुर्गा ने जो चाहा, सो हुआ।' अन्तर्यामिनी होकर भी आप यह प्रश्न करती हैं, यह केवल आपकी महत्ता है।

'फिर भी तुम्हारे मुंह से सुनना चाहती हूं।'

गोमती ने जितना वृत्तान्त सुन रक्खा था, सुनाया। अपने विवाह से सम्वन्ध रखने वाली घटना नहीं कही।

कुमुद ने पूछा—'उस दिन तुम्हारी वारात आ रही थी, टीका कुशल-पूर्वक हो गया था या नही ?'

गोमती ने कोई उत्तर नहीं दिया। एक आह भर ली।

कुमुद ने कहा—'उधर के समाचार मुझे नही मिले। पूजा अर्चा में इतनी संलग्न रही कि पूछ नहीं पाया।'

रुद्ध स्वर में गोमती ने कहा—'आपसे कोई बात छिपी थोड़े ही रह सकती मैं क्या वतलाऊँ।'

कुमुद ने सहानुभूति के साथ कहा—'तुम्हारे ही मुंह से सुनूंगी। सच मानो मुझे नहीं मालूम।'

कुमुद् ने उस अन्धेरी कोठरी में यह नहीं देखा कि गोमती के कानों तक आँसू बह आये थे। प्रयत्न करके अपने को सम्भालकर गोमती ने उत्तर दिया—'मेरा भाग्य खोटा है, इसमें दुर्गा के आशीर्वाद को क्यों दोष दूं ?' अपनी वरात के दूल्हा से सम्वन्ध रखने वाली शेष रण-कथा भी सुना दी। अन्त में वोली—'घायल राजा पालकी में पड़े हुये थे। वह चन्दनवारों के सामने ही रुक गये। मेरी ओर देखते ही उनके घाव पुलकित हो उठे। सह न सके। थम न सके, जैसे तलवार टूटकर दो टूक हो जाती है, उसी समय धराशायी हो गये ! मैं पास भी न जा सकी।'

'फिर क्या हुआ ?' कुमुद ने सहानुभूतिमयी आतुरता के साथ पूछा—'फिर क्या हुआ गोमती ?'

'एक निठुर, ठाकुर के पास आकर बुरी-भली बातें कहने लगा। किसी ने उसे लोचनसिंह के नाम से सम्बोधन किया था।' गोमती ने कहा।

'लोचनसिंह।' कुमुद ने कुछ सोचकर कहा—'यह नाम मुझे भी मालूम है। उस दिन की लड़ाई से इस नाम का कुछ सम्बन्ध है। कहे जाओ बहिन, आगे क्या हुआ ?'

गोमती कहने लगी—'वह पत्थर का मनुष्य लोचनसिंह उन्हें ठुकरा देना चाहता था। मेरे मन में आया कि खड्ग लेकर उसे ललकारूँ और सिर काटकर फेक दूँ। इतने में घोड़े पर बैठे राजकुमार वहाँ आ गये।'

'राजकुमार !' जरा चकित होकर कुमुद बोली—'अच्छा फिर ?'

गोमती ने उत्तर दिया—'राजकुमार आ गये। उन्होंने धीरे से उनके घायल शरीर को अपने घोड़े पर कस लिया और अपने डेरे पर ले गये। उनका नाम भूल गई हूं।'

'नाम कुञ्जरसिंह है।' कुमुद ने कहा, फिर तुरन्त जरा उपेक्षा के साथ बोली—'कुछ भी नाम सही, फिर वे सब कहाँ गये ?'

'लोचनसिंह ने अपना घोड़ा आपके मकान के सामने रोक लिया।'

'मेरे घर के सामने ?'

'हाँ, और काकाजू को पुकारा।'

'क्यों ? अच्छा फिर ?'

'वह पूजा करना चाहता था, परन्तु राजकुमार ने कहा—'आओ मैं नहीं ठहरूँगा।' वह दुष्ट उन्हें अटकाये रखना चाहता था। फिर काकाजू के नाम से पुकार लगाई, कोई नही बोला। पड़ोस के पंडितजी ने कहा—'सब लोग दोपहर को ही कहीं चले गये। उसी समय मुझे भी मालूम हुआ कि काकाजू ने घर छोड़ दिया है।'

कुमुद ने जरा-सा खाँसा, एक क्षण बाद पूछा—'फिर वे सब लोग पालर में ही बने रहे या उसी रात चले गये ?'

गोमती ने उत्तर दिया—'पण्डितजी के जवाब देने पर राजकुमार घोड़े की लगाम हाथ में थामें वहीं थोड़ी देर खड़े रहे, परन्तु पण्डितजी घर से बाहर न निकले। डर गये थे। वह पाषाण-हृदय लोचनसिंह तब राजकुमार को वहाँ से जल्दी-जल्दी लिवा ले गया। सबेरे सुना, राजा अपने दल के साथ दलीपनगर चले गये।'

कई क्षण बाद कुमुद ने पूछा—'दूल्हा का कुशल समाचार मिल गया था ?'

जरा संकोच के साथ गोमती ने कहा—'दूसरे दिन खबर लगी थी कि राजकुमार, जिसका नाम आपने कुञ्जरसिंह बतलाया है, रात भर मरहमपट्टी करते और दवा देते रहे। इससे आगे और कुछ नहीं सुना। आप तो राजकुमार को जानती होंगी।'

'मैंने उसका वह नाम यों ही सुन लिया था।' कुमुद बोली—'अब सो जाओ बहुत थकी हुई हो।'

'अभी तो नींद नहीं आ रही है, सो जाऊँगी। आप सोयें'

'मैं भी अभी उनींदी हुई हूं। पालर का और क्या समाचार है ?'

'गाँव सुनसान हो गया है। केवल चलने-फिरने से अशक्त लोग और थोड़े से किसान वहाँ रह गये हैं। मुसलमानों की चढ़ाई होने वाली है। सुनते हैं, वे लोग देश को उजाड़ देंगे। कुछ लोग कहते हैं, वे मन्दिर का अपमान करने की भी चेष्टा करेंगे।'

क्षुब्ध स्वर में कुमुद ने कहा, मानों कई तार एक साथ झंकार मार गये हों—'क्या सब क्षत्रिय उस समय पालर की झील या बेतवा की धार में डूबकर प्राण बचा ले जायेंगे ? क्या बड़नगर और दलीपनगर के हिन्दू उस समय सोते ही रहेंगे ?'

गोमती जरा भयभीत हो गई, पर एक क्षण बाद दृढ़ता के साथ बोली—'कुछ लोगों ने वहाँ जाकर फरियाद भी की थी और सुनते हैं, दलीपनगर के राजा राजधानी छोडकर पंचनद की ओर चले गये है।'

[१८]

राजा नायकसिंह अपने दल के साथ एक दिन पंचनद पहुंच गये।

पंचनद, जिसे पचनदा भी कहते है, बुन्देलखण्ड का एक विशेष स्थान है। यमुना, चम्बल, सिन्धु, पहूज और कुमारी, ये पाँच नदियाँ उस जगह आकर मिली है। स्थान की विस्तृत भयानकता उसकी विशाल सुन्दरता से होड़ लगाती है। बालू, पानी और हरियाली का यह सङ्गम वैभव, भय और सौंदर्य के विचित्र मिश्रण की रचना करता है।

इस सङ्गम के करीब एक गढ़ी थी। राजा उसी में जाकर ठहरे। सन्ध्या के पहले ही डेरे पड़ गये।

आज तबियत कुछ ज्यादा खराब थी, परन्तु बातचीत करने का चाव अधिक था। कुञ्जरसिंह को बुलाकर पूछा-'लोचनसिंह कहाँ है?' और लोचनसिह के उपस्थित होने पर प्रश्न किया-'कुन्जरसिंह कहाँ है?'

जितने प्रमुख लोग गढ़ी में राजा के साथ आये थे, सब जानते थे कि राजा ने यहाँ आने में गलती की है। मार्ग से भटकी हुई इस दूर की गढ़ी में पहुंचकर किसी को भी हर्ष नहीं हुआ। केवल लोचनसिंह ने ठण्डा पानी पीकर, घोड़े की पीठ ठोकते-ठोकते सोचा कि आज रात-भर अच्छी तरह सोऊँगा। कालपी पंचनद से दूर नहीं थी। कालपी के फौजदार से किसी तत्काल सङ्कट की आशङ्का न थी। उन दिनों मिलाप करते-करते छुरी चल पड़ती थी और छुरी चलते-चलते मिलाप हो जाता था। पंचनद दलीपनगर की सीमा के भीतर था। हकीम द्वारा फौजदार की शांति-वृत्ति का पता लग चुका था और दलीपनगर की सेना भी

निर्बल न थी। जनार्दन मेल और लड़ाई दोनों के लिये तैयार था। कुछ लोग सोचते थे कि दलीपनगर छोड़ आने में राज्य की हत्या का-सा काम किया, परन्तु उस परिस्थिति में राजा की आज्ञा का उल्लंघन करना असम्भव था। इसलिये ऐसे लोग पछतावा तो प्रकट न करते थे, परन्तु राजा के लिये चिन्तित दिखाई पड़ते थे। ऐसे लोगों में केवल जनार्दन कम से कम ऊपर से चिन्तित नहीं दिखाई पड़ता था।

सभी अगुओं के मन में एक बात ही थी—राजा की समाप्ति कब शीघ्रतापूर्वक हो और कब राजसत्ता किसी अच्छे आदमी के हाथ में सुव्यवस्था का संग्रह कर दे। केवल देवीसिंह राजा के निकटवर्तियों में ऐसा था, जो भगवान से राजा के स्वास्थय-लाभ के लिये दिन में एकाध बार प्रार्थना कर लेता था।

षड़यन्त्र खूब सरगर्मी पर थे। बिना किसी लाज-संकोच के राजा के पलङ्ग से चार हाथ के ही फासले पर रचित षड़यन्त्रों की काना-फूसी और षड़यन्त्र-रचना की बहस होने लगी।

लोगों को यह दिखलाई पड़ रहा था कि सैनिकों का विश्वास लोचनसिंह के बल-बिक्रम पर और जनार्दन की दक्षता तथा कुशलता पर है। जनार्दन अपनी आर्थिक समर्थता और व्यवहार पटुता के कारण पंचनद पर सेना के विश्वास का स्तम्भ-हो गया। खुल्लम-खुल्ला कोई रानी उसके खिलाफ कुछ नहीं कह रही थी। लोचनसिंह के पास न कोई षड़यन्त्र था और न कोई षड़यन्त्रकारी दल। षड़यन्त्र की सृष्टि के लायक कुन्जरसिंह में न तो यथेष्ट मानसिक चपलता थी और न किसी षड़यन्त्र के प्रबल नायकत्व के लिए पूरी नैतिकहीनता। भीतर महलों में षड़यन्त्र बनते और बिगड़ते थे। सुलझाई हुई उलझनें और उलझती जाती थी। अच्छी-योजनायें भी तैयार हो जाती थी, परन्तु उनके लिए योग्य संचालक की अटक थी।

दो दिन ठहरने के बाद बड़ी रानी ने कुञ्जरसिंह को बुलाकर प्रस्ताव किया दिलीपनगर तुरन्त लौट चलो। यह प्रस्ताव कथन में जितना सहज था, व्यवहार में उतना नही।

कुञ्जरसिंह ने कहा—'यह असम्भव है। क़ाकाजू की मर्जी नहीं है। यदि हमने सैनिकों से कहा और उन्होंने न माना, तो तिल धरने को भी स्थान न रहेगा।'

'लोचनसिंह से कहो कि मेरी आज्ञा है। राजा को इस समय भले-बुरे का चेत ही नहीं।'

'मैंने लोचनसिंह का रुख भी परख लिया है। उनके जी में किसी ने यह वात विठला दी है कि महाराज इस स्थान को कदापि न छोड़ेंगे वही स्वस्थ हो जायेंगे।'

'किसने ?'

'हकीम जी ने।'

'आगा हैदर के लड़के ने ?'

'हाँ, महाराज।'

'लोचनसिंह को बुला लो।' एक क्षण सोचकर फिर रानी वोलीं—'मत बुलाओ उस लट्ठ को। वह गँवार रक्त, तलवार और सिर के सिवा हमारी सहायता की कोई और वात न कर सकेगा। कुञ्जरसिंह।'

'आज्ञा।'

'समय आ गया है।'

'यह तो मैं भी देख रहा हूं।'

'तुम अन्धे हो और अपाहिज भी।'

कुञ्जरसिंह कान तक लाल हो गया, परन्तु चुप रहा। रानी वोलीं—'तुम्हारे साथ कोई नही दिखलाई देता और मेरे पक्ष का भी इस जङ्गल में कोई नही। मुझे इसी समय दलीपनगर पहुंचा सकते हो?'

'प्रयत्न करता हूं।' उत्तर मिला।

कुन्जरसिंह वहाँ से जाने को ही हुआ था कि रामदयाल रोती सूरत बनाये आया, बोला—'कक्कोजू—'

'हाँ, बोल, कह, क्यों रुक गया ?' रानी ने कुछ कठोरता के साथ पूछा ।

'कक्कोजू ।' रामदयाल ने कहा—'जमनाजी से रज और गङ्गाजल मंगाने का हुकुम हुआ है । चलना होवे ।'

'क्या दशा बहुत विगड़ गई है ?' रानी ने कम्पित स्वर में पूछा ।

'हाँ महाराज ।' कहकर रामदयाल छोटी रानी के पास चला गया ।

उसी समय जनार्दन वहाँ आया । रानी आड़ में हो गई । उत्तर देने वाली दासी, जिसे जवाब कहते है, रानी के कहलवाने से बोली—'कहिये, महाराज का हाल अब कैसा है ?'

'पहले से बहुत अच्छा है ।' जनार्दन ने उत्तर दिया—'उन्हें खूब चेत है । परन्तु अन्त समय दूर नहीं मालूम होता । दीप-शिखा की अन्तिम लौ की तरह वह जगमगाहट है । वार-वार देवीसिंह का नाम ले रहे है । वह महाराज के पास ही वैठे हैं । दवात-कलम मँगाई थी ।'

कुन्जरसिंह ऐसे हिला, जैसे किसी ने यकायक झकझोर डाला हो । बोला—'दवात-कलम किस लिये मँगाई थी ?'

स्पष्टता के साथ जनार्दन ने जवाव दिया—'कदाचित् अपना अंतिम आदेश अङ्कित करना चाहते हैं । दवात-कलम पहुंच गई है, कागज पर कुछ लिख भी चुके हों ।'

'छोटी महारानी कहाँ हैं ?' रानी ने तुरन्त पुछवाया ।

उत्तर दिया- 'उन्हें भी बुलवाया गया है । आप भी यथासम्भव शीघ्र चलें ।'

कुन्जरसिंह सन्न होकर बैठ गगा । जनार्दन चला गया ।

(१६)

उसी समय पंचनद की छावनी में हकीम आगा हैदर आ गया। आते ही उसने जनार्दन से कहा—'यहाँ आकर बहुत बुरा किया। क्या राजा को मारने के लिये लाये थे ?'

'नही, उनकी इच्छा यहाँ ले आई। अब वह जा रहे है।'

'फिर दलीपनगर ?'

'नही गोलोक।'

'ऐसी जल्दी ! उफ !'

'यह सब पीछे सोचियेगा। राजा के पास तुरन्त चलिये।'

दोनों जा पहुचे। लोचनसिंह दवा दारू में व्यस्त था उसने पंचनद पर आने के पश्चात् हर्षपूर्वक इस कर्त्तव्य को स्वीकार कर लिया, और वह इस कार्य में इतना संलग्न था कि उसे इधर-उधर क्या हो रहा है, इसका कुछ भी चेत न था। इतना विश्वास उसे अवश्य था कि राजा का औषधोपचार सावधानी के साथ हो रहा है। देवीसिंह राजा के पास बैठा उनकी देख-भाल कर रहा था। छोटी रानी एक ओर परदे में बैठी हुई थीं।

संकेत मे आगा हैदर ने अपने लड़के से राजा की दशा पूछी। उसने सिर हिलाकर निराशा-सूचक संकेत किया। आगा हैदर ने पास जाकर देखा।

राजा क्षीण स्वर में बोले—'हकीम जी, कहाँ थे ?'

काँपते हुये गले से आगा हैदर ने कहा—'कदमो में।'

'आज सब पीड़ा ख़त्म होती है हकीम जी।' राजा सिसकते हुये बोले।

रोते हुये आगा हैदर ने कहा—'हजूर की ऐसी अच्छी तबियत बहुत दिनों से देखी गई थी। आशा होती है—'

राजा ने हाथ हिलाकर सिर पर रख लिया।

'हकीमजी कालपी गये थे, महाराज। वह अलीमर्दान को किसी गड्ढे में खपाने की चिन्ता में है।' लोचनसिंह ने राजा को शायद प्रसन्न करने के लिये कहा।

आगा हैदर ने हाथ जोड़कर लोचनसिंह को वर्जित किया।

'हकीमजी,' लोचनसिंह ने धीरे से कहा—'क्षत्रिय न तो रण की मृत्यु से डरता है और न घर की मृत्यु से।'

इतने में एक ओर पर्दे में बड़ी रानी भी आ बैठी।

रामदयाल ने छोटी रानी के पास से आकर जनार्दन से जरा जोर से कहा—'आप सब लोग बाहर हो जायें कक्कोजू दर्शन करना चाहती हैं।'

राजा ने यह सब वार्ता कुछ सुन ली कुछ समझ ली। टूटे हुये स्वर में बोले—'तब सब लोग यही समझ रहे कि मैं मरने को हूं। कुन्जरसिंह कहाँ है?'

कुन्जरसिंह तुरन्त हाथ जोड़कर सामने खड़ा हो गया। राजा की आँखों में आँसू आ गये और गला रुँध गया। कुछ कहने को हुये, न कह पाये। कुन्जरसिंह की आँखें भी डबडबा आईं।

जनार्दन इस समय बहुत सतर्क था, दृष्टि तुली हुई और सारी देह कुछ करने के लिये सधी हुई। वह ऐसा जान पड़ता था, जैसे किसी महत्वपूर्ण नाटक का सूत्रधार हो। उसने लोचनसिंह की ओर देखते हुये कहा—'इस समय महाराज को बात करने में जितना कम कष्ट हो, हम अपना उतना ही बड़ा सौभाग्य समझें।'

लोचनसिंह ने कुन्जरसिंह के पास जाकर कहा—'राजकुमार जरा इधर आइये।' इच्छा विरुद्ध कुन्जरसिंह दूसरी ओर दो-तीन कदम के फासले पर हट गया।

जनार्दन दावात-कलम और कागज लेकर राजा के पास जाकर झुक गया। राजा असाधारण चीत्कार के साथ बोले—'मुझे क्या तुम सबने

पागल समझ लिया है ?' और तुरन्त अचेत हो गये। रामदयाल झपट-कर राजा के पास आना चाहता था, लोचनसिंह ने रोक लिया।

कुञ्जरसिंह ने हकीम से कहा—'आप देख रहे है कि आपकी आँखों के सामने यह क्या हो रहा ?'

'मेरी समझ में कुछ नहीं आता।' हकीमजी ने आँखें मलते हुये कहा।

'यह दुधारा खांड़ा भी आज किसी लोभ में आ गया है।' लोचन-सिंह की ओर इङ्गित करके कुन्जरसिंह ने दवे गले से कहा और दृढ़ता-पूर्वक अपने पिता के पैताने जाकर खड़ा हो गया।

लोचनसिंह धीरे से वोला—'महाराज जिसे चाहेंगे, उसे लिख देंगे। किसी को उनसे अपनी माँग—चूंग नहीं करनी चाहिये।'

एक क्षण वाद राजा को होश आता देखकर जनार्दन ने जोर से कहा—'कलम-दवात मँगवाई थी, सो आ गई। देवीसिंह के लिये आदेश हुआ, वह यहाँ उपस्थित है।'

'मुझे किस लिये ?' एक कोने से देवीसिंह ने पूछा।

जनार्दन ने आग्रह के ऊँचे स्वर में कहा—'अव आज्ञा हो जावे।'

राजा ने कुछ मुँह ही मुँह में कहा, परन्तु सुनाई नहीं पड़ा।

जनार्दन ने मानो कुछ सुना हो। बोला—'वहुत अच्छा महाराज, यमुनाजी की रज और गङ्गाजल ये है।' वह सामग्री पास ही रक्खी थी।

रामदयाल ने छोटी रानी के पर्दे के पास से चिल्लाकर कहा—'हकीमजी, यहाँ जल्दी आइये।'

हकीम राजा को छोड़कर नही गया। तव रामदयाल चिल्लाया—'कुन्जरसिंह राजा आप ही इधर तक चले आओ।'

जैसे किसी ने ढकेल दिया हो, उसी तरह कुन्जरसिंह छोटी रानी के पर्दे के पास पहुंचा। छोटी रानी ने सवके सुनने लायक स्वर में कहा—'भकुये वने खड़े क्या कर रहे हो ? तुम राजा के कुँवर हो, क्यों अपना हक मिटने देते हो ? जाओ, राजा के पास अपना हक लिखवा लो।'

लोचनसिंह बोला—'राजा जिसे देंगे वही पावेगा। हक जबरदस्ती नहीं लिखवाया जा सकता।'

कुञ्जरसिंह राजा के पलङ्ग की ओर बढ़ा। इतने में जनार्दन ने कहा—'महाराज देवीसिंह का नाम ले रहे है। सुन लो चामुण्डराय लोचनसिंह, सुन लो हकीम जी, सुन लो कुञ्जरसिंह राजा, सुन लो कक्कोजू!' और सब चुप रहे।

लोचनसिंह बोला—'आप झूठ थोड़े ही कह रहे है।'

राजा ने वास्तव में देवीसिंह का नाम दो-तीन बार उच्चारण किया था। परन्तु क्यों किया था, इस बात को सिवा जनार्दन के और कोई नही बतला सकता था।

जनार्दन ने और किसी ओर ध्यान दिये बिना ही खूब चिल्लाकर राजा से कहा—'तो महाराज देवीसिंह को राज्य देते है?'

राजा ने केवल 'देवीसिंह' का नाम लेकर उत्तर दिया और राजा देर तक सिर कपाते रहे। होठों पर कुछ स्पष्ट शब्द हिले, परन्तु सुनाई कुछ भी नहीं पड़ा। और लोगों के मन में सन्देह जाग्रत हुआ हो या न हुआ हो, परन्तु लोचनसिंह के मन में कोई संशय न रहा।

जनार्दन ने राजा के हाथ में कलम पकड़कर कहा—'तो लिख दीजिये इस कागज पर कि देवीसिंह राजा हुये।' राजा का हाथ अशक्त था। किन्तु किसी क्रिया के लिये जरा हिल उठा। सबने देखा। जनार्दन ने तुरन्त उस हिलते हुये हाथ को अपने हाथ में पकड़कर कागज पर लिखवा लिया—देवीसिंह राजा हुये। उसके नीचे राजा की सहीं भी करा ली।

जनार्दन ने देवीसिंह को तुरन्त इशारे से पास बुला लिया। बोला—'महाराज अपने हाथ से तिलक भी कर दें।' और गङ्गाजल से राजा के अंगूठे को भिगोकर अपने हाथ थामे हुये जनार्दन ने देवीसिंह का मस्तक अभिषिक्त करा दिया।

लोचनसिंह से कहा—'तोपें दगवा दो।'

हकीम बोला—'कालपी खबर पहुंचने में देर न लगेगी। इसी जगह चढ़ाई हो जायगी।'

'होवे।' जनार्दन वेग के साथ बोला—'थोड़ी देर में संसार भर जान जायगा, अभिषेक गुपचुप नहीं होगा, खुल्लमखुल्ला होगा।'

लोचनसिंह बाहर चला गया।

रामदयाल चिल्लाया—'कक्काजू की मर्जी है कि यह सब जाल है। महाराज कुछ सुन या समझ नहीं सकते। राजा कुन्जरसिंह महाराज हो सकते है और किसी का हक नही।

बड़ी रानी ने कहलवाया— पहले भली-भांति जाँच कर ली जाय कि महाराज ने अपने चेत मे यह आदेश लिखा है या नहीं। व्यर्थ का बखेड़ा नही करना चाहिये।

बड़ी रानी की ओर हाथ बाँधकर जनार्दन बोला—'बड़ी कक्कोजू के जानने में आवे कि राज्य कुंवर देवीसिंह को ही दिया गया है।'

इतने मे राजा कुछ अधिक कम्पित हुये। जरा जोर से बोले—कुन्जर—सिंह।

'मुझे राज्य दे रहे है।'

जनार्दन ने कहा—'कभी नही, राजा अब अचेत है।'

राजा ने फिर अस्थिर कण्ठ से कहा—'देवीसिंह।'

'राज्य मुझे दिया है।' देवीसिंह कठोर स्वर में बोला।

कुञ्जरसिंह राजा के पास आ गया। बड़ी रानी ने निवारण करवाया। छोटी रानी ने बढ़ावा दिलवाया। रामदयाल कुञ्जरसिंह के पास खड़ा हो गया।

'धायँ, धायँ, धायँ।' उधर तोपों का शब्द हुआ।

'महाराज देवीसिंह की जय!' तुमुल स्वर में कोठी के बाहर सिपाही चिल्लाये।

इतने में राजा ने क्षीण स्वर में 'कुञ्जरसिंह !' फिर कहा, कुञ्जरसिंह और रामदयाल ने सुना शायद जनार्दन ने भी।

कुञ्जरसिंह बोला—'अब भी छल और धूर्तता करते ही चले जाओगे? मेरा नाम ले रहे हैं।'

'नहीं' देवीसिंह ने कहा।

'नहीं।' जनार्दन बोला।

आगा हैदर चुपचाप एक कोने में खड़ा था।

छोटी रानी पर्दे से चिल्ला उठीं—'कायर, डरपोक, क्या राज्य ऐसे लिया जाता है?' पर्दा जोर से हिला, मानो रानी सबके सामने किसी भयानक वेश में आने वाली हैं। रामदयाल लपककर दरवाजे पर जा डटा

कुञ्जरसिंह ने तलवार खींच ली। इतने में लोचनसिंह आ गया। बोला—'यह क्या है कुञ्जरसिंह राजा ?'

'ये लोग मुझे अब अपने राज्य से वंचित करना चाहते हैं, दाऊजू काकाजू ने अभी अभी नाम लेकर मुझे राज्य दिया है।'

'तलवार म्यान में राजा।' लोचनसिंह ने कुञ्जरसिंह के पास जाकर डटपकर कहा—'जो कुछ महाराज ने किया है, वह सब मेरे देखते सुनते हुआ है।'

'धोखा है।' रामदयाल चिल्लाकर छोटी रानी के दरवाजे पर डटे हुये बोला।

राजा ऊर्ध्व-श्वास लेने लगे।

हकीम गरजकर बोला—'महाराज को शांति के साथ परमधाम जाने दीजिये। अब एक-दो क्षण के और है, पीछे जिसे जो दिखाई दे कर लेना।'

राजा की अवस्था ने उपस्थित लोगों के बढ़ते हुये क्रोध पर छाप-सी लगा दी।

राजा को भूमि पर शय्या दे दी गई। मुँह में गङ्गाजल डाल दिया गया। तोपों और जय-जयकार के नाद में राजा नायकसिंह की संसार यात्रा समाप्त हो गई।

वहुत सपाटे के साथ पंचनद से दलीपनगर लौट आये, केवल कुन्जरसिंह पीछे रह गया। राज्य-भर ने पुरानी रीति के अनुसार सूतक मनाया, वाल मुडवाये, परन्तु वास्तव मे कोई दुःख था कि नही, यह वतलाना कठिन है।

असफल प्रयत्न के पीछे पड़ना वड़ी रानी की प्रकृति में न था। एक वार मनोरथ विफल होते ही पुनः प्रयत्न करना उनके मानसिक संगठन के वाहर की वात थी। छोटी रानी को देवीसिंह का राजतिलक वहुत बुरा लगा। वह सती नही हुई। यह देखकर और शायद देवीसिंह के मनाने पर वड़ी रानी भी सती नहीं हुई।

जनार्दन प्रधान मन्त्री घोषित कर दिया गया और लोचनसिंह प्रधान सेनापति। इसी बीच में दिल्ली से जो समाचार अलीमर्दान को मिला, उससे उसकी वहुत-सी चिन्तायें दूर हो गईं। उसने दलीपनगर पर आक्रमण करना निश्चित कर लिया। यदि अलीमर्दान को वह समाचार कुछ दिन पहले मिल गया होता तो शायद वह पचनद पर ही युद्ध ठानने की चेष्टा करता। परन्तु इसकी सम्भावना थी वहुत कम, क्योंकि बहुत दूर न होते हुये कालपी से पचनद पर तोपो का घसीट ले जाना काफी समय ले लेता।

अव कालपी में दलीपनगर के ऊपर चड़ाई करने के लिये तैयारी होने लगी-दलीपनगर में इनकी खवरें आने लगी।

थोड़े दिनों वाद यह सेना कालपी से चल पड़ी।

उधर दलीपनगर मे भी खूव तत्परता के साथ जनार्दन और लोचन सिंह द्वारा सैन्य-संगठन होने लगा। प्रजा में विश्वास का संचार हुआ। देवीसिंह इस तरह राजसिंहासन पर वैठने लगा, जैसे दरिद्रता या सामाजिक स्थिति की लघुता ने कभी उसका सम्पर्क ही न किया हो।

उसी समय समाचार मिला कि कुन्जरसिंह ने कुछ सरदारों को साथ लेकर सिंध तटस्थ सिंहगढ़ पर कब्जा करके विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया है। जनार्दन ने यह भी सुना कि छोटी रानी कुन्जरसिंह को उभाड़ने और द्रव्य आदि से सहायता करने में कोई संकोच नहीं कर रही है। इस पर भी नये राजा ने उनके साथ कोई बुरा वर्ताव करने का लक्षण नहीं दिखलाया।

परन्तु जनार्दन से सहन नहीं हुआ। बुलाकर रामदयाल से कहा—'तुम्हारी सब चालें हमे विदित है। कुन्जरसिंह राजा अपने किये का फल पायेंगे। परन्तु तुम उनसे अपना कोई सम्बन्ध मत रखो नहीं तो किसी दिन सिर से हाथ धो बैठोगे।'

'मैंने क्या किया है पण्डित जी ?' रामदयाल ने पूछा।

'तुमने कुन्जरसिंह के पास रुपया-पैसा भेजा है। तुम यहाँ के भेद कुन्जरसिंह के पास भेजते रहते हो।'

'मैंने यह कुछ भी नही किया।'

'छोटी रानी और तुम यह सब नहीं कर रहे हो ?'

'वह करती होंगी महारानी हैं। मैं तो नौकर-चाकर हूं।'

'खाल खिचवाकर भुस भरवा दिया जायगा, जो किसी शेखी में भूले हो।'

'किसकी खाल ? रानी की ?'

'मैंने यह तो नही कहा, परन्तु यदि रानी पृथ्वी को सिर पर उठायेंगी, तो क्या वह न्याय से बच जायेंगी ! धैर्य की सीमा समाप्त हो चुकी है।'

'मेरा कोई अपराध नही।' कहकर रामदयाल चला गया।

जनार्दन दूसरे कामों में लग गया और इस वार्तालाप को भूल गया। खबर लगी कि अलीमर्दान सेना लेकर राज्य की सीमा के पास से होता हुआ बढ़ता आ रहा है परन्तु सीमा के भीतर प्रवेश नहीं किया, और

न राज्य की किसी प्रजा को सताया ही है। शायद कहीं और जा रहा हो। कम से कम अपनी तरफ से कारण न उपस्थित किया जाय। ऐसी दशा में उससे लड़ने के लिये सेना भेजना राजा देवीसिंह ने उचित नहीं समझा, परन्तु अपने यहाँ चौकसी रक्खी। कुञ्जरसिंह को सिंहगढ़ से निकाल भगाने के लिये कुछ सेना उस ओर रवाना कर दी। कुञ्जरसिंह अपनी छोटी-सी सेना के साथ सिंहगढ़ में घेर लिया गया। सिन्धु नदी साँप की तरह कतराती हुई इस किले के नीचे से बहती चली गई है। नदी के उस ओर भयानक जङ्गल था। किले में खाद्य-सामग्री थोड़े दिनों के लिये थी। घेरा प्रचण्डता और निष्ठुरता के साथ पड़ा। किले से बाहर निकलकर लड़ना आत्मघात से भी अधिक बुरा था। किले की दीवारों पर तोपें निरन्तर गोले फेंकने लगीं। बचने का कोई उपाय न देखकर जो कुछ उसे अनिवार्य दिखाई पड़ा, वही निश्चय किया, अर्थात् लड़ते-लड़ते मर जाना।

[२०]

मौका मिलते ही रामदयाल ने छोटी रानी को जनार्दन द्वारा अपमानित होने की बात सुना दी। रानी के क्रोध का पार न रहा। बोली-'मैं तब अन्न जल ग्रहण करूँगी, जब जनार्दन का सिर काटकर मेरे पास ले आवेगा।'

रामदयाल को विस्मय हुआ, वह रानी के हठी स्वभाव को जानता था। उसकी यह कल्पना न थी कि बात इतनी बढ़ जायगी। बोला—'अभी काकाजू की तेरही नही हुई है, जब हो जायगी, तब इस काम के होने में देर नही लगेगी।'

'तेरही होने के दो तीन दिन रह गये है। मैं तब तक बिना अन्न जल के रहूंगी।'

'ऐसा न करे महाराज, यदि शरीर को कुछ क्षति पहुंची, तो जो कुछ थोड़ी-सी आशा है, वह भी नष्ट हो जायगी।'

'यदि जनार्दन मार डाला गया, तो मानो राज्य प्राप्त हो गया। उसी के प्रपन्च से आज मैं इस दशा को पहुंची हूं। उसी के षड़यन्त्रों से राज्याधिकार से वंचित रही, उसी की धूर्तता के कारण सती न हो पाई। बोल, तू उसका सिर काट सकेगा?'

'मै आज्ञा-पालन स कभी न हिचकूँगा।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'फिर चाहे चरणों की सेवा में मुझे अपने प्राण भले ही उत्सर्ग करने पड़ें।'

'तब ठीक है।' रानी ने जरा सन्तोष के साथ कहा—'परन्तु अन्न-जल तभी ग्रहण करूँगी।'

रामदयाल ने विषयान्तर के प्रयोजन से कहा—'कालपी से अली-मर्दान की सेना आ रही है।'

'आती होगी, मुझे उसकी कोई चिन्ता नही।'

'इधर से सिंहगढ़ की ओर सेना भेजी गई है। बहुत-सी तोपें भी गई है। जनार्दन को इस समय अलीमर्दान इतना शत्रु नही जान पड़ रहा है जितना कुन्जरसिंह राजा।'

रानी ने चकित होकर पूछा—'कुन्जरसिंह को समाचार भेज दिया या नही?'

उत्तर दिया—'कड़ा पहरा बिठलाया गया है। गुप्तचर वेश बदल कर घूम रहे है। वहाँ जाने के लिये मेरे सिवा और कोई नहीं है।'

रानी बोली—'तुम्हारे चले जाने से यहां मेरे निकट कोई विश्वस्त आदमी नही रहेगा। तुम किसी तरह उनके पास यह समाचार पहुंचा दो कि सिंहगढ़ की रक्षा के लिये अधिक मनुष्य एकत्र कर लो, तब तक मैं अन्य सरदारों को ठीक करती हूं।'

'परन्तु दूसरा काम भी मेरे सुपुर्द किया गया है।' रामदयाल ने बनावटी सङ्कोच के साथ कहा।

छोटी रानी गये—गुजरे पक्ष के लिये हार्दिक अभिलाषा तक का बलिदान कर डालने वालों के स्वभाव की थीं। बोलीं—'अच्छा जनार्दन

का शीश काटने के लिये एक सप्ताह का समय देती हूं। एक सप्ताह के पश्चात् मेरा व्रत आरम्भ हो जायगा। अभी स्थगित किये देती हूं। जल्दी कर।'

सिर खुजलाते हुये अत्यन्त दीनता-पूर्वक रामदयाल ने कहा—'सेना को सिहगढ़ की ओर गये हुये देर हो गई है। बहुत तेज घोड़े की सवारी से ही इस सेना से पहले सिहगढ़ पहुंचा जा सकता है। इधर जनार्दन की हम लोगों पर बड़ी पैनी आंख है। कोई अन्य विश्वसनीय आदमी हाथ में है नही।'

'अच्छा, मै पुरुष वेश मे सिहगढ़ जाती हूं।' रानी ने तमक कर कठिनाइयों का निराकरण किया—'देखें मेरा कोई क्या करता है?'

परन्तु धीरे से रामदयाल ने कहा—'महाराज, इस तरह अपने महल को छोड़कर स्वयं देश-निष्कासित होने से कुन्जरसिह राजा को कोई सहायता आपके द्वारा न मिलेगी और निश्चित स्थान से अनिश्चित स्थान में भटकने की नई कठिनाई का भी सामना करना पड़ेगा।'

रानी की आंख से चिनगारी छूट पड़ी। 'मैं दलीपनगर के इस बिल मे चूहे की मौत नही मरूंगी।' रानी ने कहा—'बड़ी की तरह नहीं हूं कि ऐरों-गैरों का उस पवित्र सिहासन पर बैठना सह लूं। घोड़ा तैयार करवा। हथियार और कवच ला।

रामदयाल आज्ञा-पालन के लिये चला, फिर लौटकर हाथ बांधकर खड़ा हो गया।

रानी डपटकर बोलीं—'क्या मैं ही तेरी खाल खीचूं? जानता है क्षत्रिय-कन्या हूं, अपने हाथ से भी घोड़े पर जीन कस सकती हूं।'

'महाराज। रामदयाल बड़बड़ाया।'

रानी ने अपने कोषागार से तलवार ढाल और दो पिस्तौलें निकाल लीं। मुस्कराकर कहा— 'जैसे सावन की अंधेरी रात में बादलों के भीतर बिजली की एक रेखा थिरक गइ हो—'तुझे हथियार उठा लाने का प्रयत्न न करना पड़ेगा। घोड़ा कस सकेगा?'

'महाराज।' रामदयाल ने कम्पित स्वर में कहा—'मैं भी साथ चलूंगा। यदि सर्वनाश ही होना है, तो हो। नहीं तो पीछे मेरी लाश को किसी घूरे पर गीध और गीदड़ नोचेंगे।'

रानी थककर चौकी की तकिया के सहारे बैठ गई।

एक क्षण बाद पूछा—'बोल, क्या कहता है?'

'एक उपाय है। आज्ञा हो, तो निवेदन करूँ?'

'कहता क्यों नहीं मूर्ख। क्या ताम्र पत्र पर खुदाकर आज्ञा दूं?'

रामदयाल ने स्थिरता के साथ उत्तर दिया—'अलीमर्दान की सेना दलीपनगर पर आक्रमण करने आ रही है। अभी दूर है, परन्तु थोड़े दिन में अवश्य ही निकट आ जायगी। ज़नार्दन उस सेना से युद्ध करने की तैयारी कर चुका है। लड़ाई अवश्य होगी। सन्धि के लिये कोइ गुंजायश नहीं रही। हो भी, तो कोई चिन्ता नही।'

'यह सब क्या पहेली है रामदयाल?' रानी ने झुंझलाकर पूछा—'सीधी तरह कह डाल, जो कुछ कहना हो।'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'अन्नदाता, अलीमर्दान ने अपने राज्य का कुछ नहीं बिगाड़ा था। लोचनसिंह दाऊजी ने नाहक उसकी फौज के एक सरदार को मार डाला। यदि वह बदला लेने के लिये आ रहा है, तो कोई अश्चर्य की बात नहीं। मन्दिर और दुर्गाजी के अपमान की बात बिलकुल बनावटी है। अलीमर्दान को केवल रुपये से गरज है।'

रानी उठ खड़ी हुईं। आँखें जल रहीं थीं परन्तु धीमे स्वर में बोलीं—'देख रामदयाल, यदि तूं पागल हो गया है, तो तेरी कोई दवा-दारू न होगी। मै एक ही बार में तेरा सब रोग बहा दूंगी। जनार्दन का मद दूसरे बार में शान्त हो जायगा, फिर यदि यह राज्य अलीमर्दान को मर्द डाले, तो चिन्ता नहीं और यदि वह इसे, तो भी चिन्ता नहीं। यदि तेरी बात समाप्त हो गई हो और तू अचेत न हो, तो तुरन्त घोड़ा कस ले।'

रामदयाल वहाँ से नहीं टला। शीघ्रता-पूर्वक बोला—'कई बार दिल्ली के बादशाहों का साथ इस राज्य ने दिया है। अबकी बार दिल्ली के सरदार से यदि सहायता ली जाय, तो क्या बुराई है ?'

रानी बैठ गई, सोचने लगीं। सोचती रही।

रामदयाल बीच में बोला 'अलीमर्दान से बड़नगर वाले नहीं लड़ रहे हैं, विराटा का दांगी राजा नहीं लड़ रहा है, दलीपनगर को ही क्या पड़ी है, जो व्यर्थ का वैर बिसावे ? उसकी सहायता से यदि आप या कुञ्जरसिंह राजा सिंहासन पा सकें तो कोई अनुचित बात नही।'

रानी ने थोड़ी देर में बहुत थके हुये स्वर में कहा—'तब कुञ्जरसिंह के पास न जाकर अलीमर्दान के पास जा। मेरी राखी लेता जा। यदि वह मन्दिर तोड़ने के लिये आया हो, तो बिना कोई बातचीत किये तुरन्त लौट आना। फिर मुझे सिवा जनार्दन के सिर के और कुछ न चाहिये। उस सिर को घूरे पर फेंककर सती हो जाऊँगी।'

[२२]

कुछ दिन पीछे विराटा में भी खबर पहुंची कि कालपी के सूबेदार अलीमर्दान की सेना पालर में पहुंच गई है। मन्दिर तोड़कर नष्ट कर दिया है और कुमुद को लक्ष्य करके दलीपनगर पर आक्रमण करने वाली है। यह समाचार वहाँ पहले ही पहुंच गया था कि दलीपनगर का राज्य किसी एक अप्रसिद्ध, दरिद्र ठाकुर देवीसिंह को मिल गया है। किस तरह मिला, यह बात भी नाना रूप धारण करके वहाँ पहुंची थी।

विराटा छोटा-सा राज्य था, परन्तु वहाँ का राजा सबदलसिंह सावधान और दिलेर आदमी था ? मालूम था कि इस लड़ाई का कारण मन्दिर की मूर्ति और कदाचित कुमुद है। उसे वह सुरक्षित रक्खे हुए था। जब उसके पड़ोस में होकर अलीमर्दान की सेना निकली, तब उसने कोई रोकटोक नही की, बल्कि ख़ातिर से पेश आया, जिससे अलीमर्दान को कोई सन्देह न हो।

कुमुद की पूजा बाहर से बिलकुल रुक गई। यदि कभी-कभी लुके-छिपे हो भी जाती थी तो बड़ी सावधानी के साथ। परन्तु विराटा वालों की पूजा बढ़ गई। विराटा-निवासी किसी आने वाली विपद के निवारण के लिये भक्ति के साथ उस पूजा में रत रहने लगे।

इधर-उधर के समाचार कुमुद को दिन में बहुत कम मिलते थे। रात को नरपतिसिंह से जो कुछ मालूम होता था, उसमें सांसारिक समाचारों का समावेश बहुत कम रहता था। आध्यात्मिक—अर्थात् पूजा-सम्बन्धी-विषय उनके भोजन और निद्रा के बीच का स्वल्प समय ले लेते थे।

उस दिन जो कुछ गोमती ने सुना, उससे उसकी विचित्र दशा हो गई। वह कभी आकाश की ओर देखती, कभी गजगामिनी गूढ़ धार की ओर और कभी दूसरे किनारे के निर्जन, सघन वन की ओर देख-देखकर कुमुद से कुछ कहना चाहती थी। पूजा और पुजारियों की भीड़ के मारे दिन में अवसर न मिला। दोनों रात गये अपनी कोठरी में चली गईं। कुमुद को विश्राम की ओर प्रवृत्त होते देखकर गोमती ने कहा—'क्या नींद आ रही है?'

'बड़ी क्लांत हूं गोमती। आजकल काम के मारे जी बेचैन हो जाता है। मूर्ति से वरदान न माँगकर लोग मेरे सामने हाथ फैलाते है।'

'क्योंकि लोग उसे पा जाते है।' प्रफुल्ल गोमती बोली।

उदास स्वर में कुमुद ने कहा—'यह मेरी शक्ति के बाहर है। मैं तो दुर्गा से केवल प्रार्थना करती हूं स्वयं किसी को कुछ नही दे सकती। जो इससे प्रतिकूल विश्वास करते हैं, वे अपने साथ अन्याय और मेरे साथ क्रूरता करते है।'

इस पर गोमती जरा सहम गई। कुछ क्षण बाद उसांस लेकर बोली—'उधर के समाचार सुने है? युग-परिवर्तन-सा हुआ है।'

'क्या हुआ है गोमती?' कुमुद ने जरा रुचि दिखलाते हुये पूछा।

'दलीपनगर के राजा नायकसिंह का देहान्त हो गया है।' उत्तर मिला।'

'अब राजा कौन हुआ है? युवराज को गद्दी मिली होगी।' उठती हुई उत्सुकता को स्वयं शान्त करके कुमुद ने पूछा।

'सो नही हुआ।' संयत आवेश के साथ गोमती बोली–'राजकुमार को नहीं, दूसरों को राजा राज्य देकर मरे है।'

बड़े कुतूहल के साथ कुमुद ने प्रश्न किया—'किसको गोमती? किसको?'

गोमती कुछ कहना चाहती थी, न कह सकी।

कुमुद ने उत्तर की प्रतीक्षा किये विना 'कहा—राजकुमार ने ऐसा क्या किया होगा? उन्हें राजा ने क्यों राज्य नही दिया? वह तो राज्य के उपयुक्त मालूम होते थे और दूसरे को किसको राज्य दे दिया होगा। समाचार भ्रम-मूलक जान पड़ता है गोमती।'

'देवी का वरदान खाली नही जाता।' गोमती ने कहा—'देवी की पूजा रीती नही पडती।'

'तुमने जो कुछ सुना हो, मुझे सविस्तार बतलाओ।' कुमुद ने मुक्त उत्सुकता के साथ कहा।

गोमती चुप रही, जैसे किसी ने उसका गला पकड़ लिया हो। थोड़ी देर बाद बोली—'राजकुमार को मैने भी देखा है। ऐसी महत्ता, इतनी दया दूसरों में कम देखी जाती है। राजा उन्हें चाहते भी थे। वह चाहने योग्य है भी।'

कुमुद ने आग्रह-पूर्वक पूछा–'तब बतलाती क्यों नहीं गोमती, राजा कौन हुआ?'

उसने उत्तर दिया–'जिसने उस दिन पालर की लड़ाई में राजा के प्राण बचाने के लिये अपने शरीर को लगभग कटवा दिया था।'

कुमुद ने अनसुनी-सी करके कहा–'राजकुमार का क्या दोष समझा गया? इस कृति का मूल कारण राजा का पागलपन न समझा जाय; तो क्या समझा जाय?'

'पागलपन नहीं था जीजो ?' गोमती ने दृढ़ता के साथ कहा।

इस नये सम्बोधन से कुमुद बहुत सन्तुष्ट नहीं हुई। परन्तु उसी सहज मृदुल स्वर में बोली—'तो क्या था गोमती ?'

'राजकुमार दासी से उत्पन्न है इसलिये उन्हें राज्य नहीं मिला।' गोमती ने स्वाभाविक गति से उत्तर दिया।

'झूठ, झूठ है गोमती।' क्षुब्ध स्वर मे कुमुद ने कहा—'लोचनसिंह सदृश पुरुष झूठ नही बोल सकते।'

'वह निष्ठुर क्रूर ठाकुर।' गोमती के मुंह से निकल पड़ा—'उसने क्या कहा था ?'

कुमुद कुछ देर तक चुप रही। उसके स्वर ने कुछ क्षण बाद फिर वही कोमलता धारण कर ली। बोली—'तुम्हें कैसे मालूम गोमती ?'

गोमती ने इसके उत्तर में कुंजरसिंह की उत्पत्ति की कथा सुनादी।

लम्बी उसाँस लेकर कुमुद ने पूछा—'कौन राजा हुआ गोमती ?'

गोमती ने उत्साह के साथ उत्तर दिया—'मैने बतलाया था जिन्होंने उस दिन राजा के प्राणों की रक्षा की थी।

कुमुद ने बिस्तर से उठकर विस्मय-पूर्वक कहा—'तुम्हारे दूल्हा ?' गोमती ने कुछ नही कहा।

[२३]

गाँव के जो स्त्री-पुरुष विराटा की टौरिया (अब उस स्थान को इसी नाम से पुकारना चाहिये) पर आते थे, उनके साथ कुमुद की बातचीत वरदानों और तत्सम्बन्धी विषयों के अन्तर्गत अधिक होती थी। अन्य विषयों की बातचीत सुनने के लिये वह कभी-कभी उत्कंठित हो जाती थी। परन्तु पूजक और भक्त लोग ऐसे विषयों की चर्चा उसके सामने नही करते थे। पूजक और पूज्य के बीच में श्रद्धा ने जो अन्तर उपस्थित कर रक्खा था, वह कुमुद को असह्य हो उठा, किन्तु वह ऐसी अधीर न थी कि उसका आतुरता के साथ उल्लंघन कर सकती।

कुञ्जरसिंह के विद्रोह और अलीमर्दान की अवश्यंभावी चढ़ाई का समाचार यथासमय टौरिया पर पहुंचा। गोमती ऐसे सब समाचारों को जासूसों की तरह खोद निकालने में निमग्न थी।

दो-एक दिन से गोमती कुमुद को किसी उदासी में, किसी असमंजस में उलझी हुई सी देख रही थी। रात को उन दिनों कोई वात नहीं हुई। गोमती को सन्देह हुआ कि कही कुञ्जरसिंह के उत्तराधिकारी को दलित समझकर देवी ने दूसरों पर स्वत्व-भन्जन और अनुचित अपहरण के आरोप की कल्पना न की हो। कुञ्जरसिंह के विद्रोह और अली-मर्दान के आक्रमण मे अपनी वात कहने के लायक सामग्री पाकर रात्रि के आगमन के लिये व्यग्र हो उठी।

गोमती को उस दिन जान पड़ा कि सूर्य देव वहुत मचल-मचलकर अस्ताचल गये, अन्धकार ने प्रकाश को घोर लड़ाइयों के वाद दवा पाया और उसके अभाग्य से कुमुद, लेटने की कोठरी मे वड़ा विलम्व करके आई।

गोमती ने तुरन्त वार्तालाप आरम्भ किया।

कुमुद ने पूछा—'आज का कुछ समाचार आपने सुना है?'

उसने कहा—'मुझे पूजन से अवकाश ही नही मिलता।'

स्वर मे कोई क्षोभ न था, परन्तु कोमल होने पर भी उसमें संगीत की मंजुलता न थी—जैसे कोयल ने दूर किसी सघन वन में वायु के झोकों की गति के प्रतिकूल कूक लगाई हो।

'उस दिन मैंने कुमार कुञ्जरसिह के विषय में जैसा सुना था, वतलाया था। राज्य न मिलने के कारण असंतुष्ट होकर उन्होंने एक वड़ा भारी उपद्रव खड़ा कर दिया है।'

एक क्षण के लिये कुमुद की देह थर्रा गई। परंतु उसने अपने सहज स्वर में उत्सुकता-ज्ञापन न करते हुये पूछा-'क्या सुना है गोमती आज?'

'मैंने यह सुना है।' गोमती ने उत्तर दिया—'कि दासी पुत्र कुञ्जरसिंह ने राज्य-विद्रोह किया है। सिंहगढ़ पर अनधिकार चेष्टा से

दखल कर लिया है और इस अनुचित, अधर्मपूर्ण युद्ध में मनुष्यों के सिर काट और कटवा रहे हैं। छोटी रानी, जो मृत राजा को विष देकर मार डालना चाहती थीं, उनका साथ दे रही हैं। गृह-कलह की ऐसी आग दोनों ने मिलकर सुलगा दी कि दलीपनगर का राज्य राख में मिल जाने को ही है।'

कुमुद के हृदय से एक उष्ण उसांस निकली।

गोमती कहती गई—'इधर कालपी के मुसलमान सूबेदार ने चढ़ाई कर दी है। वह अपने विराटा के पास से होकर आजकल में ही निकलने वाला है। उसका प्रयोजन पालर के मन्दिर को विध्वंस करने का है। उसने आपके विषय में जो वासना प्रकट की है उसे कहने से मेरी जीभ के खण्ड-खण्ड हो जायेंगे।'

अन्तिम बात सुनकर कुमुद क्या कहती है, इसकी प्रतीक्षा एक क्षण करने के बाद गोमती ने फिर कहा—'गृह-कलह, जो कुमार कुन्जरसिंह ने खड़ी करदी है, कदाचित् इस अलीमर्दान के मुँह मोड़ने में दलीपनगर राज्य को कुण्ठित कर दे। प्रार्थना है, आप नये राजा को ऐसा अदमनीय बल दें कि नये महाराज कुन्जरसिंह के विद्रोह को कुचलकर अलीमर्दान की अधर्म-कुचेष्टा को नष्ट-भ्रष्ट करने में समर्थ हों।'

कुमुद देर तक कुछ सोचती रही। थके हुये कुछ काँपते हुये बारीक स्वर में बोली—'गोमती, सो जाओ, फिर कभी बात करूँगी। नींद आ रही है।'

परन्तु भक्त का हठ चढ़ चुका था। गोमती बोली—'नहीं देवी, आज वरदान देना होगा, जिसमें कोई अनिष्ट न हो। यदि कहीं आपने समझ लिया कि कुन्जरसिंह का पक्ष न्याय-संगत है, तो दलीपनगर का, संसार भर का सर्वनाश हो जायगा। यदि दलीपनगर के धर्मानुमोदित महाराज कुन्जरसिंह से हार गये; यदि अलीमर्दान ने ऐसी अव्यवस्थित अवस्था में राज्य पाया, तो आपके मन्दिर का क्या होगा? धर्म का क्या होगा?

अन्य राजा अपनी तर्जनी भी मन्दिर की रक्षा में न उठावेंगे । विराटा-राज्य मे इतनी शक्ति नही कि अलीमर्दान का मर्दन कर सके । इसलिए जननी रक्षा करो, बचाओ ।'

गोमती कुमुद के पैरों से लिपट गई और आँसुओं से कुमुद के पैर भिगो दिये ।

कुमुद ने कठिनाई से उसे छुड़ाकर अपने पास बिठला लिया । सिर पर हाथ फेरकर बोली-'क्या चाहती हो गोमती ? जो कुछ कहोगी, उसके लिये माता दुर्गा से प्रार्थना करूँगी । यह निश्चय जानो कि माता का मन्दिर भ्रष्ट न होने पावेगा । उसकी रक्षा भगवती करेगी ।'

'तो यह वरदान चाहती हूं !' गोमती ने अन्धेरे में हाथ जोड़कर कहा-'यह भीख माँगती हूं कि कुन्जरसिंह का नाश हो, अलीमर्दान मर्दित हो और दलीपनगर के महाराज की जय हो ।'

ये शब्द उस कोठरी में गूज गये, कल-कल शब्दकारिणी वेतवा की लहरावली पर उतरा उठे । कुमुद को उस कोठरी में एक क्षण के लिये चमक सी जान पड़ी और शून्य गगन आंदोलित—सा ।

कुमुद ने कुछ समय पश्चात् शात, स्थिर स्वर में कहा-'यह न होगा गोमती-परन्तु मन्दिर की रक्षा होगी और अलीमर्दान का मर्दन होगा, इसमें कोई सन्देह नही ।'

'यह वरदान नहीं है ।' गोमती ने प्रखर स्वर में कहा—'यह मेरे लिये अभिशाप है देवी । मैं इस समय इस. तपोमय भवन में इस वेतवा के कोलाहल के बीच चरणों में अपना मस्तक काटकर अर्पण करूँगी ।'

कुमुद ने देखा, गोमती ने अपनी कमर से कुछ निकाला ।

कुमुद ने कहा—'क्या करती हो ? ऐसा मत करना ।'

'भक्त के कटे हुये सिर पर ही दुर्गा का अधिकार है, अन्यथा नहीं । वरदान दीजिये या सिर लीजिये ।'

'मैं वतलाती हूं ठहरो ।' कुमुद ने कहा और कुछ क्षण तक कुछ सोचती रही ।

फिर दृढ़ता-पूर्वक बोली—'तुम्हारे राजा का राज स्थिर रहेगा। मन्दिर बचेगा और अलीमर्दान की जय न होगी। तुम्हें इससे अधिक और क्या चाहिये ?'

गोमती सन्तुष्ट हो गई, फिर पैर पकड़ लिये। कुमुद ने उसे धीरे से हटाकर रुखाई स्वर में कहा—'जाओ सोओ। भविष्य में कभी फिर उस राजकुमार का वर्णन करोगी, तो अच्छा न होगा।'

गोमती चुपचाप जा लेटी।

[२४]

अलीमर्दान एक बड़ी संख्या में सेना लिये हुये पालर जा पहुंचा। उसे अपने पड़ाव के लिये वहाँ से बढ़कर अच्छा स्थान मालूम न था। घोड़े के लिये पानी और चारा दोनों का सुभीता था तथा उसी स्थान पर दुर्गा का मन्दिर और पुजारिन का घर भी था।

बड़नगर के राजा को अलीमर्दान ने आश्वासन दे दिया था कि उसकी प्रजा के साथ किसी प्रकार का दुर्व्यहार न किया जायगा और न मन्दिर को नष्ट। दलीपनगर के राजा को दण्ड देना, राज्य-च्युत करके हलवाहे-का हलवाहा कर देना ही सिर्फ मेरी मंशा है।

दलीपनगर और बड़नगर वर्षों से दिल्ली के मातहत राज्य थे, परन्तु परस्पर स्वतंत्र थे। उनकी दिल्ली की मातहती भी दिल्ली के बल के हिसाब से घटती-बढ़ती या तिरोहित होती रहती थी। इस समय इनमें से कोई भी दिल्ली के प्रति व्यवहारिक रूप में अपनी अधीनता प्रकट नहीं कर रहा था; लेकिन खुल्लमखुल्ला विरोध भी न था। दिल्ली के बड़े कर्मचारियों या सेना-नायकों से उनकी इन दिनों कोई घोषित लड़ाई न थी। नाम-मात्र की भी पराधीनता से बच निकलने के अवसर की ताक में अवश्य थे परन्तु इस समय दलीपनगर का पक्ष लेकर अलीमर्दान से युद्ध छेड़ बैठना समयानुकूल नहीं समझा गया।

दलीपनगर दुविधा में था। एक ओर सिंहगढ़ का घेरा, दूसरी ओर अलीमर्दान; घर में छोटी रानी का भय और पूर्व-दुर्व्यवस्था से राज्य को निकाल कर वर्तमान मे संगठन का आयोजन।

इसलिये पालर तक पहुँच जाने में अलीमर्दान की रोक टोक की गई। शायद रास्ते में विराटा-सदृश छोटे-छोटे रजवाड़े कुछ विघ्न उप-स्थित कर दें, परन्तु यह कल्पना सफल न हुई।

अलीमर्दान जब पालर पहुँचा, उसे वहाँ सिवा किसानों के कोई नही मिला।

मन्दिर का निरीक्षण करने गया। साथ में उसका एक सरदार था। अलीमर्दान ने सरदार से कहा—'मन्दिर तो बहुत छोटा है काले खाँ। मैंने बहुत बड़े-बड़े मन्दिर देखे हैं। क्या इसी के ऊपर उन लोगों को इतना नाज था।'

'हुजूर, इस जगह को उन लोगों ने अपनी नाक बना रक्खा है। पुजारिन कही भाग गई होगी, मगर पता लग जायगा। बुन्देलखण्डी लोग भागते भी है, तो घर छोड़कर दूर नहीं जाते।'

'तुम्हारे साथ किस जगह लोचनसिंह लड़ा था?'

कालेखां ने स्थान बतलाकर कहा—'इस जगह, हुजूर।'

'और वह कहाँ थी?'

लड़ाई के समय कुमुद जिस स्थान पर अपने पिता के साथ कुञ्जर-सिंह की अभिभावकता में खड़ी थी, वह स्थान भी अलीमर्दान को बताया गया। यह सब देख-भालकर और आसपास के रास्ते, छिपाव और आक्रमण के स्थानों की परीक्षा करके सन्ध्या के पहले अलीमर्दान काले खाँ को साथ लेकर झील पर गया।

चारों ओर पहाड़ों से घिरी हुई झील के पूर्वोत्तरीय किनारे पर पहाड़ी से सटा हुआ नीचे की ओर पालर गाँव। उसी किनारे के ऊपरी भाग पर जाकर अलीमर्दान कालेखाँ के साथ एक चट्टान पर बैठ गया।

झील में लहरें उठ-उठकर बैठ रही थीं और सूर्य की किरणों का एक अनन्त भण्डार-सा प्रतीत हो रहा था। जैसे स्वर्ण की खानें खुल पड़ी हों और चारों ओर से विशाल ढोंके और पर्वत अपनी निधि की रक्षा के लिये तुले खड़े हों।

'पानी का बड़ा सहारा है यहाँ काले खाँ। यहीं से दस्ते बना-बनाकर हमला करना अच्छा है।'

'बेहतर है हुजूर।'

'दो दिन मे सामान इकट्ठा कर लो। तीसरे दिन धावा कर दिया जाय। सिपाहियों को इस बीच में आराम भी मिल जायगा।'

'मुसलमान सिपाहियों की एक ख्वाहिश है हुजूर।'

'क्या ?'

कालेखाँ बोला—'पहले मन्दिर तोड़ डाला जाय।'

मुस्कराकर अलीमर्दान ने कहा—'ताकी चढ़ाई की मुश्किलें और भी बढ़ जायें। यह न होगा। वल्कि तुम कड़ा पहरा मन्दिर पर लगवा दो। अगर मन्दिर की एक ईंट का टुकड़ा भी किसी ने उखाड़ा तो धड़ से सिर अलग करवा दूंगा। समझ गये कालेखाँ ?'

नीची गर्दन करके कालेखाँ ने उत्तर दिया—'जी हुजूर।'

थोड़ी देर में नमाज का वक्त होने के कारण दोनों पहाड़ी से उतर आये।

इतने मे एक सिपाही ने सूचना दी कि दलीपनगर से कोई मुजरा करने के लिये आया है। उससे नमाज के बाद तक ठहरने के लिये कह दिया गया।

नमाज के बाद अलीमर्दान से दलीपनगर का जो मनुष्य मिला, वह रामदयाल था। उस समय अलोमर्दान के पास कालेखाँ के सिवा और कोई न था।

रामदयाल ने कहा—'मैं सरकार के पास राखी लाया हूं।'

'राखी !' अलीमर्दान आश्चर्य से बोला—'किसने भेजी है ? परन्तु तुम जवाब दो या न दो, मैं राखी मन्जूर न करूँगा।'

'ऐसा कभी नहीं हुआ है। रामदयाल अपने कपड़ों के भीतर हाथ बढ़ाता हुआ बोला।'

अलीमर्दान ने कहा—'वह जमाना अब नही है। मै राखियाँ लेने-देने के लिये नहीं आया हूं। मेरे आने का प्रयोजन स्पष्ट है। और यह तो मैंने आज ही सुना है कि दलीपनगर के मर्द भी राखी भेजते हैं।'

'नही हुजूर।' रामदयाल ने कपड़ों में से रेशम की एक छोटी-सी पोटली निकाल कर दृढ़ता के साथ कहा—'यह राखी दलीपनगर की रानी ने भेजी है। ग्रहण करनी होगी। बुरी अवस्था में हैं।'

नफरत भरी निगाह से देखते हुये अलीमर्दान बोला—'तुम्हारा नया राजा इतना गिरकर रानी के जरिये क्यों शरण माँगता है ? छोटी-छोटी-सी दो शर्तें पूरी करने में कौन से पहाड़ खोदने पड़ेंगे ?'

रामदयाल ने उत्तर दिया-'यह राखी राजा ने नही भिजवाई है ?'
'उसका फल एक ही है, लौटा ले जाओ।'

'यह राखी लौट नही सकती। मृत महाराज की छोटी रानी ने भेजी है। जो नये राजा के विरुद्ध आपसे सहायता चाहती है।'

अलीमर्दान चौक पड़ा। 'छोटी रानी की राखी मन्जूर है।' वह एक क्षण बाद बोला—'जाओ, आज से वह मेरी धर्म की बहिन हुई।'

रामदयाल ने प्रसन्नतापूर्वक अलीमर्दान को राखी दे दी। उसने पगड़ी में रखली।

फिर रामदयाल से उसने एक-एक करके रियासत सम्बन्धी सब वृत पूछ डाला।

सब हाल सुनकर कालेखाँ से बोला—'तुम एक दस्ता लेकर कुन्जरसिंह की मदद के लिये सिंहगढ़ जाओ। मै दूसरे दस्ते से दलीप-

काले खाँ ने स्वीकार किया।

दूसरे दिन काले खाँ एक दस्ता लेकर सिंहगढ़ की ओर रवाना हो गया। अलीमर्दान ने रामदयाल को अपने शिविर में एक-दो दिन के लिये रोक लिया।

[२५]

कुञ्जरसिंह के दस्ते की हलचल,—सिंहगढ़-विद्रोह का समाचार अलीमर्दान को रामदयाल के मिलने से पहले ही मालूम हो गया था, परन्तु उस समय के सन्देह के वातावरण के कारण रामदयाल को एक-आध दिन के लिये रोक रखा। उसने सोचा-यदि राखी महज छल-कपट ही है, तो यह आदमी जल्दी दलीपनगर जाकर किसी तरह की खबर न दे सकेगा।

अपनी सेना का एक तस्ता पालर में छोड़कर दूसरे दिन उसने कूच कर दिया। जब दलीपनगर के राज्य में कई कोस घुस गया, तब रामदयाल को बिदा करते समय बोला—'रानी के पास कुछ सरदार है?'

'है सरदार।' उसने उत्तर दिया।

'उन सबको लेकर सिंहगढ़ पहुंचो। अब रानी का दलीपनगर में रहना ठीक नहीं।'

'बहुत अच्छा। मैं अभी जाकर इसका प्रवन्ध करता हूं।'

कुछ समय उसे रोककर अलीमर्दान ने कहा—'मन्दिर के विषय में तुम्हारा क्या ख्याल है कि मैं तुड़वा दूँगा।'

'कभी नहीं।' रामदयाल ने आवेश में आकर उत्तर दिया।

जरा ठहरकर अलीमर्दान ने कहा—'मगर जिस लड़की ने यह फसाद करवाया था, उसे कुछ सजा दी जायगी।'

रामदयाल चुप रहा।

अलीमर्दान बोला-'रामदयाल, हम तुम्हारे देवताओं की इज्जत करते है, मगर उन आदमियों की नहीं, जो देवता बनकर दुनियाँ को शरारत से न सिर्फ ठगते है, बल्कि बेकसूर सिपाहियों को मरवा डालते हैं।'

'यह दुरुस्त है हुजूर।' रामदयाल ने कहा।

अलीमर्दान हँसकर बोला—'मगर उस लड़की को जो सजा दी जायगी, वह किसी बड़े पुरस्कार से भी बढ़कर होगी।'

रामदयाल अलीमर्दान का मुँह जोहने लगा।

अलीमर्दान कहता गया–'उसे मैं अपने महल में जगह दूंगा। पालर की अपेक्षा शायद कालपी उसे शुरू-शुरू में कम पसन्द आवे, बस, इतने में ही सजा समझो। इसके बाद अगर वह सुखी न रह सकी, तो तुम मुझे दोष देना। क्या कहते हो रामदयाल ?'

उसने उत्तर दिया—'इसमें तो किसी प्रकार का हर्ज नही दिखलाई पड़ता हुजूर।'

अलीमर्दान ने आँख गड़ाकर पूछा—'उस लड़की का पता बतला सकोगे ?'

रामदयाल ने विश्वास दिलाकर कहा—'खोजकर बतलाऊँगा।'

[२६]

अलीमर्दान दलीपनगर राज्य में थोड़ा ही घुस पाया था कि उसे राज्य की सेना का सामना करना पड़ा।

राजा देवीसिह और लोचनसिंह के नायकत्व मे दलीपनगर की सेना को अलीमर्दान नुकसान नही पहुंचा पाया। दलीपनगर की ओर उसकी बढ़ती हुई प्रगति को निश्चित रूप से रुक जाना पड़ा। लगभग हर समय नालों, जङ्गलों और पहाड़ियों मे लड़ते-लड़ते अलीमर्दान ने सोचा, बिना किसी अच्छे किले को हाथ मे किये युद्ध आसानी से और विजय की पूरी आशा के साथ न हो सकेगा। इसलिये उसने देवीसिंह की सेना को अटकाये रखने के लिये एक दस्ता जङ्गल मे छोड़ दिया और उसी सेना के दूसरे दस्ते को लेकर होशियारी के साथ चुपचाप सिंहगढ़ रवाना हो गया। बहुत चक्करदार मार्ग से जाना पड़ा, इसलिये वह सिंहगढ़ के निकट देर मे पहुंचा।

राजा देवीसिंह को इस चाल की सूचना विलम्ब से मिली। उस समय पालर की छावनी से अलीमर्दान की इस नई योजना के अनुसार और सिपाही आ पहुँचे। देवीसिंह इस सेना का मुकाबला और पालर की छावनी पर धावा करने के लिये वहीं गया और लोचनसिंह को सिंहगढ़ की ओर भेजा।

परन्तु इसके पहले ही रामदयाल ने छोटी रानी के पास पहुँचकर राजधानी में ही उपद्रव जाग्रत कर दिया था। जो लोग राजा देवीसिंह के अभिषेक से असन्तुष्ट थे वे सब छोटी रानी के झण्डे के नीचे आ गये और उन्होंने खास दलीपनगर मे गृह-युद्ध आरम्भ कर दिया। छोटी रानी ने एक सरदार के नीचे थोड़ी-सी सेना राजधानी को तङ्ग करने के लिये छोड़ दी और एक बड़ी तादाद में लेकर सिंहगढ़ की ओर चल पड़ी। उसे यह नहीं मालूम था कि अलीमर्दान सिहगढ़ की ओर गया है। मालूम भी हो जाता, तो वह न रुकती।

जनार्दन ने इस विद्रोह का समाचार राजा के पास, जहाँ वह लड़ रहा था भेजा। पत्र-वाहक लोचनसिंह को बीच ही में मिल गया। तब लोचनसिंह सिंहगढ़ की ओर न जाकर सीधा दलीपनगर पहूँचा। राज-धानी के बलवे को दबाने के लिये लोचनसिंह को कई दिन लग गये।

इस बीच में रानी और अलीमर्दान की सेनायें सिंहगढ़ के मुहासिरे पर पहुँच गई। तब वहां राजा देवीसिंह की सेना को कुञ्जरसिंह अलीम-र्दान और छोटी रानी की सेनाओं से लोहा लेना पड़ा। परन्तु फल के निर्णय मे अधिक बिलम्ब नहीं हुआ।

[२७]

राजा देवीसिंह की सेना सिंहगढ़ के घेरे में हार गई और भागकर दलीपनगर पहुँची। विजय की अपेक्षा पराजय का समाचार ज्यादा जल्दी फैलता है। राज्य-भर के और आस-पास के लोग सुनकर घबराने लगे।

अलीमर्दान के वे दस्ते, जो राजा देवीसिंह की सेना का सामना कर रहे थे, अधिक उत्साह के साथ लड़ने लगे।

देवीसिंह ने जनार्दन से कहलवा भेजा—'यदि लोचनसिंह से काम न चलता हो, तो किसी दूसरे सरदार को सिंहगढ़ भेजो। यहाँ उसे मत लौटाना। मैं उसका मुँह नही देखना चाहता।'

जनार्दन ने सामयिक स्थिति पर बातचीत करते हुये लोचनसिंह से कहा—'यदि आप सीधे सिंहगढ़ चले जाते, तो अच्छा होता। राजा की आज्ञा का उल्लंघन करके अच्छा नही किया।'

'इधर आपकी राजधानी ख़ाक में मिल जाती। मैं न आता, तो यहाँ कौन लड़ता?'

'राजा किसी न किसी को भेजते। परन्तु जो हो गया, सो हो गया। सिंहगढ़ को किसी तरह हाथ में लेना चाहिये, नही तो इस राज्य की कुशल नही।'

'और यदि दलीपनगर भी हाथ से निकल गया, तो आपको आराम से बैठे-बैठे बातचीत करने के लिये जगह तक का ठिकाना न रहेगा।'

'महाराज की आज्ञा है कि आप सिंहगढ़ जायें।'

'वह पुरानी बात है। यदि काम करना है, तो उसे तो यों ही मानूंगा और नहीं करना है, तो अपने घर चला जाऊँगा, परन्तु युद्ध के विषय में मैं पण्डितों की आज्ञा नहीं लिया करता।'

'महाराज नें कहलवाया है, जानते हो?' जनार्दन ने उत्तेजित होकर कहा—और युद्ध के दिनों में घर बैठ जाना तो किसी भी सरदार को शोभा नहीं देता।'

लोचनसिंह ने पूछा—'महाराज ने क्या कहलवाया है जी?'

सावधानी के साथ जनार्दन ने उत्तर दिया—'यह कि यहाँ न आकर सीधे सिंहगढ़ जायें।'

लोचनसिंह ने कहा—'आपने यहाँ के विषय में लिख दिया था या नहीं कि क्या-क्या हुआ। किस-किस संकट में राजधानी पड़ गई थी।'

उत्तर मिला—'सब लिख दिया था।'

'महाराज ने कुछ और कहलवा भेजा है ?' उसने पूछा।

जनार्दन बोला—'और तो कुछ याद नहीं पड़ता। जब स्मरण हो आवेगा, बतला दूंगा। अभी तो अपना काम देखिये।'

लोचनसिंह ने तड़ककर कहा—'तो अब राजा को सूचित कर दो कि जहाँ पौरुष की कदर नहीं, वहाँ लोचनसिंह नहीं रहेगा।' और जनार्दन के विनय-प्रार्थना करने पर भी वहाँ से उठ गया।

[२८]

सिंहगढ़ में कुञ्जरसिंह को छोटी रानी की सेना के आने का और उसके उद्देश्य का समाचार मिल गया था। इन दोनों का संयुक्त दल सिंहगढ़ के फाटक खुलवाकर भीतर पहुंच गया। कुञ्जरसिंह को अलीमर्दान के दस्ते का हाल न मालूम था। रामदयाल अलीमर्दान के साथ-साथ था। डोले में रानी की सवारी सबसे पहले दाखिल होकर दूसरी ओर चली गई। कुञ्जरसिंह सबसे पहले रानी के पास गया। पैर छूकर खड़ा हो गया। परिश्रम और थकावट के सारे चिन्ह उसके मुख पर थे, परन्तु हर्ष की भी रेखायें चमक रही थीं जैसे धूल में सोना दमक रहा हो।

रानी ने कृतज्ञ कुञ्जरसिंह से कहा—'खास दलीपनगर में लड़ाई हो रही है। सैयद की फौज देवीसिंह से पालर की ओर लड़ रही है और स्वयं सैयद को रामदयाल यहाँ लिवा लाया है। उसकी सहायता न होती, तो तुमसे मिल पाना असम्भव होता।' और कुञ्जर के नत-मस्तक पर हाथ फेरा।

हर्ष की रेखायें उसी थकावट की बाढ़ में डूब गईं। कुञ्जर की आँखों में तारे छिटक उठे। अलीमर्दान का नाम सुनते ही शरीर में पसीना आ गया। जब उसका सिर उठा, रानी ने देखा, एक क्षण पहले का उत्फुल्ल मुख मुरझा गया है, जैसे कमल को पाला मार गया हो।

रानी इस परिवर्तन को न समझ सकी, परन्तु यह उन्हें भासित हो गया कि कृतज्ञता के स्थान पर उसके नेत्रों में रुखाई, उपेक्षा और घबराहट अधिक है।

'क्या है कुञ्जरसिंह ? क्या कहना चाहते हो ?' रानी ने पूछा।

'कुछ नहीं कक्कोजू !' कुञ्जर ने उत्तर दिया—'मुझ-सरीखे तुच्छ मनुष्य के लिये आपने जो कष्ट उठाया है, वह व्यर्थ गया सा जान पड़ता है।'

इस रुखाई से रानी तिलमिला उठी। बोली—'तुम सदा से रोते-से ही बने रहे। क्या इस विजय से तुम्हें राजसिंहासन अपने अधिक निकट नहीं दिखाई पड़ रहा है। सेना एक-आध रोज विश्राम कर ले कि तुरन्त दलीपनगर के ऊपर प्रबल आक्रमण कर दिया जायगा और जनार्दन, देवीसिंह, लोचन इत्यादि बागियों को उनके किये का भरपूर बदला दे दिया जायगा।'

'महाराज'—कुञ्जरसिंह कहता,कहता रुक गया।

'बोलो, बोलो, कुञ्जरसिंह क्या कहते हो ?' रानी जरा चिढ़कर बोलीं।

सामने से रामदयाल को और उससे थोड़े ही पीछे अलीमर्दान को देखकर कुञ्जरसिंह ने कहा—'अभी कक्कोजू विश्राम करें बहुत परिश्रम किया है। अवकाश मिलने पर निवेदन करूँगा।' रानी का डोला किले के भीतर महलों मे चला गया और कुञ्जरसिंह मुड़कर रामदयाल के पास पहुँचा।

रामदयाल ने महत्वपूर्ण दृष्टि और मिठास-भरे स्वर में जुहार किया, धीरे से बोला—'कालपी के नवाब साहब हैं। इन्होंने बात रख ली।'

कुञ्जरसिंह चुपचाप चलती-फिरती पत्थर की मूर्ति की तरह बिना कोई भाव प्रदर्शित किये अलीमर्दान के पास पहुंचा। अभिवादन, किया।

अलीमर्दान को जान पड़ा, इस स्वागत में अतिथि-पूजा की अनुभूति नहीं है परन्तु उसने अपने कुढ़न को तुरन्त दबा लिया। हँसकर और चिल्लाकर बोला—'सिंहगढ़ के बहादुर शेर राजा कुन्जरसिंह का दर्शन हो रहा है न ?'

कुन्जरसिंह ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया। उसका आंतरिक भाव जो कुछ भी रहा हो, परन्तु उसमे इतनी शिष्टता थी कि हर्ष का उत्तर खिन्नता से न दे।

अपने स्थान पर ले जाते हुये कुन्जरसिंह ने मार्ग में कहा—'आपका किसी तरह का कोई समाचार हम कैदियों को यहाँ मिलना भाग्य में न बदा था। इसलिये अकस्मात् सुनकर उचित रूप से आपकी अगवानी न हो सकी।'

सिपाही की अगवानी सिपाही किस तरह करता है राजा साहब ?

कुन्जरसिंह की रुखाई में कुछ कमजोरी आई। बोला—'नबाव साहब, यदि अगवानी की त्रुटियों को अच्छे भोजन-पान आदि से कर सकता, तो भी मेरे लिये कुछ कृतकृत्य होने की बात थी परन्तु हम लोगों के पास रुखे—सूखे के सिवा यहां और कुछ नही है। इसलिये और भी लज्जित हूं।'

रामदयाल ने, जो पीछे-पीछे चला आ रहा था कहा—'महाराज, नबाव साहब बड़े कट्टर सैनिक हैं। इन्हें लड़ाई की धुन में खाना-पीना कुछ नहीं सूझता।'

कुन्जरसिंह सबसे पहले अपने जीवन में अपने को 'महाराज' शब्द से सम्बोधित पाकर एक क्षण के लिये चकित और रोमांचित हो गया। कुछ कहना चाहता था, न कह सका।

अलीमर्दान हँसकर बोला—'राजा साहब, रामदयाल ने बड़ी सहायता की है। आपके शुभचिन्तको में ऐसे कुशल मनुष्य का होना गर्व की बात है। एक छोटी-सी सेना के बराबर इस अकेले का काइयांपन है।'

कुञ्जरसिंह ने संयत शब्दों में उसकी प्रशंसा की परन्तु उनमें काफी कृपणता थी और रामदयाल को वह खटकी। कुञ्जरसिंह के स्थान पर पहुँचकर अलीमर्दान ने तय किया कि रात को आनन्दोत्सव मनाया जाय।

[२६]

कड़ी लड़ाई के बाद सिपाही जब अवकाश पाकर आनन्द मानते हैं, तब उनका वेग पाठशाला से छूटे हुये छोटे-छोटे विद्यार्थियो के हुल्लड़ से कही अधिक बढ़ जाता है। इस शोर-गुल को एक ओर छोड़कर अलीमर्दान, कुञ्जरसिंह और रामदयाल एकान्त स्थान में जा बैठे।

उमङ्ग के साथ अलीमर्दान ने कहा—'जिस दिन राजा साहब का तिलक होगा, उस दिन जश्न और भी जोर-शोर के साथ मनाया जायगा। आज तो बेचारे थके-मांदे सिपाही केवल थकावट दूर कर रहे है'

'बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ सामने है।'कुञ्जरसिंह ने गम्भीरता के साथ कहा—'मैंने तो समझा था कि सिंहगढ़ के भीतर ही रणक्षेत्र और शमशान दोनों हैं।'

रामदयाल बोला—'अब उतनी कठिनाइयाँ हमारे सामने नही है, जितनी देवीसिंह इत्यादि के सामने है। राजा, ऐसी मनगिनी बातें न करनी चाहिये !'

'आप राजा साहब,' अलीमर्दान स्वाभाविक गति के साथ बोला—'राज्य प्राप्त करते ही रामदयाल को बड़ा सरदार बनाइयेगा। मै इनके लिये सिफारिश करता हूं, निवेदन करता हूं।'

उसके स्वर में अनुरोध की विशेष मात्रा कल्पित करके कुञ्जर को रामदयाल की कुछ उन सेवाओं का स्मरण हो आया, जिनका सम्बन्ध मृत राजा नायकसिंह के साथ था।

'परन्तु।' भाव को छिपाकर बोला—'शुभ घड़ी आने पर किसी सेवक की कोई सेवा नहीं भुलाई जा सकती नवाब साहब। यथोचित् पुरस्कार सभी को मिलेगा।'

रामदयाल के मन में इस वचन से किसी उमङ्ग का संचार न हुआ। बोला—'महारानी साहब और राजा की कृपा बनी रहे नवाब साहब हमारे ऊपर। हमें तो चरणों में पड़े रहने मे ही सुख है, सरदारी लेकर क्या करेंगे ?'

अलीमर्दान की समझ में न आया। अधिक रोचक विषय की ओर मनोवृत्ति को फेरने के प्रयोजन से बोला—'भविष्य में आपकी क्या कार्य-विधि होगी राजा साहब ? अभी तक तो मैंने सैन्य-सञ्चालन किया है, अब सेनापतित्व का भार आपको लेना होगा।'

इसके उत्तर के लिये कुञ्जरसिंह तैयार था। बोला—'मेरी गति-मति के ऊपर रानी साहबा को अधिकार है। उनकी इच्छा मालूम करके आपसे प्रार्थना करूँगा।'

'बहुत अच्छा।' अलीमर्दान ने कहा—'सबेरे तक बतला दीजियेगा। परन्तु एक सम्मति है, उसे ध्यानपूर्वक सुन लीजिये और रानी साहिबा से अर्ज कर दीजिये। वह यह है कि सबेरे तुरन्त कुछ फौज दलीपनगर पर हमला करने के लिये रवाना करवा दी जाय और एक टुकड़ी पास पड़ोस के छोटे-मोटे किलों पर कब्जा करने के लिये भिन्न-भिन्न दिशाओं में भिजवा दी जाय।'

कुञ्जरसिंह बोला—'सेना को इस तरह कई भागों में विभक्त कर देना ठीक रणनीति होगी या नहीं, कक्कोज़ से पूछकर बड़े भोर निवेदन करूँगा।'

[३०]

आनन्दोत्सव वाली उसी सन्ध्या के बाद रामदयाल ने अलीमर्दान से बात करने का अवसर निकाला। वह भी रामदयाल की टोह में था।

परन्तु अनुकूल अवसर न होने से उसने वातचीत आरम्भ नही की, वार्तालाप के सिलसिले को भारी-भर कर दिया।

'गद्दी मिलने के वाद राजा साहव दीवान किस को वनायेंगे राम-दयाल ?' अलीमर्दान ने पूछा।

'हुजूर या वह जिसे उस पद पर विठलायें।' रामदयाल ने उत्तर दिया।

'मैं तो उन्हें गद्दी पर विठलाकर कालपी चला जाऊँगा। वहीं के मामलों से फ़ुरसत नही। न-मालूम दिल्ली जाना पड़े, न-मालूम मालवे की तरफ।'

'तव जिसे वह चाहेंगे, परन्तु राज्य, इस तिलक के वाद भी विना आपकी सहायता के किस तरह चलेगा सो जरा मुश्किल से समझ में आता है। यदि महारानी के हाथ में शासन की वागडोर रहने दी जायगी, तो निस्सन्देह कठिनाइयाँ कम नजर आवेंगी।'

अलीमर्दान हँसकर वोला—'यदि रामदयाल को दीवान वना दिया जायगा तो शायद ज्यादा गड़वड़ न हो।' फिर तुरन्त गम्भीर होकर कहने लगा—'तुम क्या इसे असम्भव समझते हो ? दिल्ली की सल्तनत में छोटे-छोटे आदमी वहुत वड़े-वड़े हो गये है। दिमाग और होशियारी की कद्रदानी की जाती है। रामदयाल।'

रामदयाल चुप रहा।

अलीमर्दान ने कहा-'तुम्हें अगर दीवान मुकर्रर किया, तो महारानी साहिबा को तो कोई एतराज न होगा ?'

उसने उत्तर दिया—'उनके चरणों की कृपा से तो मैं जीता ही हूं।' कुछ और कहना चाहता था, झिझक गया।

अलीमर्दान ने कहा—'राजा साहव तो वेचारे वड़े नेक और सीधे आदमी मालूम होते है।'

रामदयाल ने कोई मन्तव्य प्रकट नही किया ।

'हमारा कुछ काम रामदयाल ?' उसने पूछा ।

रामदयाल बोला—'आज्ञा ?'

'मैने तुमसे पालर मे कुछ कहा था ?'

'याद है ।'

'इस बीच मे तुम बहुत उलझनों में रहे हो । अगर अब पता लगा सको, तो अच्छा है, नहीं तो खैर ।'

'लगा लिया ।' रामदयाल ने कहा ।

उत्सुकता के साथ अलीमर्दान ने पूछा—'कहाँ है ?'

'खबर लगी है कि वह विराटा के जङ्गलों में किसी गुप्त किले की अदृश्य गुफा में है ।' रामदयाल ने उत्तर दिया ।

अलीमर्दान हँसकर बोला—'यह पता तो तुमने ऐसा बतलाया कि शायद तुम भी जाकर भूल जाओ ।'

उसने कहा—'जब इतना पता लग गया, तो शेष भी लग ही जायगा ।'

अलीमर्दान अपनी सहज सावधानता के वृत्त को उल्लंघन करके बोला—'रामदयाल, बड़ा काफी पुरस्कार मिलेगा ।'

'हुजूर, मैं उसे ढूढूंगा और आपके सम्मुख कर दूंगा। इसका बीड़ा उठाता हूं ।'

'और अगर रामदयाल तुमने इस काम में मेरी मदद की, तो इस राज्य की दीवानी तो तुम्हे मिलेगी ही, मैं अपने पास से भी बहुत बढ़िया इनाम दूंगा ।'

रामदयाल ने नम्रतापूर्वक कहा—'मुझे तो आप लोगों की कृपा चाहिये और क्या करना है ।'

जरा दबी जबान से अलीमर्दान ने पूछा—'तुम उसे देवी का अवतार तो नही समझते ? वह देवी का अवतार नही हो सकती—'

'जरा भी नही ।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'यह तो मूर्खों का

ढकोसला है।'

'उसका नाम क्या है?'

'कुमुद।'

[३१]

जिस समय अलीमर्दान और रामदयाल की बातचीत हो रही थी, करीब-करीब उसी समय कुञ्जरसिंह छोटी रानी के पास था।

छोटी रानी उससे कह रही थी—'तो तुम्हारा यह तात्पर्य है कि यहाँ हम लोग कोई न आते, तुम्हें यही लड़ने-सड़ने और मरने दिया जाता। ठीक है न कुञ्जरसिंह?'

'आपके दर्शनों से तो मेरे पाप कटते हैं। कुञ्जरसिंह ने कहा—'परन्तु अलीमर्दान को नही बुलाना चाहिये था।'

'अलीमर्दान को न बुलाया होता, तो सर्वनाश हो गया होता। उसने तो वैसे भी चढ़ाई करा दी थी। उसे रोक ही कौन सकता था? और दलीपनगर के पूर्व राजा इस तरह की सहायता का आदान-प्रदान पहले से भी करते आये हैं।'

'परन्तु जिस प्रयोजन से वह आया है, वह आपको मालूम है?'

'वह जनार्दन और लोचनसिंह को सूली देने आया है। यदि वह इसमें सफल हो जाय, तो मैं कहूंगी कि बहुत अच्छा हुआ। और अधिक जानने की मुझे जरूरत नही।'

'वह पालर की देवी और उनका मन्दिर नष्ट करने आया है। आपको यह बात स्मरण रखनी चाहिये।'

रानी ने झल्लाकर कहा—'मुझे क्या बात स्मरण रखनी चाहिये, मैं इसे बहुत अच्छी तरह जानती हूं। इसे सुझाने के लिये मुझे तुम जैसे लोगों की आवश्यकता नही पड़ती। यदि तुम साथ रहकर लड़ाई करना चाहो, तो अच्छा है। यदि तुम्हारे मन को भावे, तो जिस तरह चाहो लडो या उस धर्म-द्रोही, स्वामिघाती जनार्दन की शरण चले जाओ और हम लोगो का अशुभ चिन्तन करो।'

कुञ्जरसिंह का कलेजा हिल गया। नम्रतापूर्वक बोला—'महाराज रुष्ट न हों। आप राज्य करें मुझे राज्य की उतनी अधिक पर्वाह नही। यदि होगी भी, तो जनार्दन इत्यादि को दण्ड देने के उपरान्त जो कुछ भाग्य में होगा पाऊँगा।'

इस नम्रता में दृढ़ता की गूंज सुनकर रानी कुछ नरम पड़ी। बोलीं—'अलीमर्दान का वह प्रयोजन नहीं, जो तुम समझ रहे हो। उसने मेरी राखी स्वीकार की है, मुझे बहन की तरह माना है। हिन्दुओं का धर्मनाश उसका कदापि उद्देश्य नही है। ऐसी हालत में तुम्हें व्यर्थ के सन्देहों में माथापच्ची नहीं करनी चाहिये।'

इतने में वहाँ रामदयाल आ गया। रानी के पास किसी समय भी आने की उसे मनाही नही थी।

रानी ने उससे कहा—'रामदयाल, आगे के लिये क्या ढङ्ग सोचा गया है?'

कुञ्जरसिंह की ओर संकेत करके उसने उत्तर दिया—'जैसा निश्चय किया जाय, वैसा होगा।'

'अभी तक कुछ निश्चय नही हुआ?' रानी बोली।

कुञ्जरसिंह ने कहा-'अलीमर्दान की राय सेना को टुकड़ियों में विभक्त करके इधर उधर बिखेरने की है। सेना का अधिक भाग वह सिंहगढ़ में रखना चाहते है। यदि देवीसिंह की सेना ने किसी ओर से प्रचण्ड वेग के साथ चढ़ाई कर दी, तो सिंहगढ़ हाथ से चला जायगा और बिखरी हुई टुकड़ियाँ कभी संयुक्त न हो पायेंगी।'

रानी झुँझलाकर बोली—'रामदयाल, क्या इस तरह का युद्ध करने की बात अलीमर्दान ने कही है?'

उसने उत्तर दिया—'ठीक इसी तरह की तो नहीं कही है। नवाब साहब दलीपनगर को अधिकृत करने के लिये पर्याप्त सेना भेजना चाहते हैं।'

रामदयाल की बात कुञ्जरसिंह को कभी अच्छी नहीं लगती थी। इस समय भी प्रखरता के साथ पड़ गई। बोला—'तो कक्कोजू रामदयाल को सेना-नायक बना दें। बस प्रधान सेनापति अलीमर्दान और सहकारी सेनाध्यक्ष रामदयाल। इसे यदि इन बातों की दखल से दूर रक्खा जाय, तो कुछ हानि न होगी।'

अपने इस क्षोभ पर कुञ्जरसिंह को तुरन्त पछतावा हुआ। कुछ कहना ही चाहता था कि रामदयाल ने बहुत विनीत भाव के साथ कहा-'कक्कोजू ने पूछा था, इसलिए मैंने निवेदन किया। यदि कोई अपराध किया हो, तो क्षमा कर दिया जाऊँ। मैं तो सदा भगवान् से यह मनाया करता हूं कि आप लोगों के चरणों में पड़ा रहूं।'

रानी ने कहा—'कुञ्जरसिंह, तुम प्रायः रामदयाल पर क्यों रोष प्रकट करते रहते हो?'

ठंडे स्वर में कुञ्जरसिंह ने उत्तर दिया—'यह कभी-कभी जरा अपने दायरे के बाहर निकल जाता है, इसलिये चिड़चिड़ाहट हो जाती है। परन्तु में वैसे इससे नाराज नहीं हूं।'

कुञ्जरसिंह ने नहीं देखा, परन्तु रामदयाल की नीची निगाहों में उपेक्षा का भाव था।

रानी ने पूछा—'तब क्या कार्य-क्रम स्थिर किया?'

कुञ्जरसिंह ने उत्तर दिया—'हमारी कुछ सेना सिंहगढ़ में रहे, बाकी दलीपनगर पर धावा कर दे और अलीमर्दान अपनी सेना लेकर देवीसिंह पर छापा मारे।'

रानी ने रामदयाल की ओर देखते हुये कहा—'अलीमर्दान को पसंद आवेगा?'

'नहीं आवेगा महाराज।' रामदयाल ने उत्तर दिया।

कुञ्जरसिंह ने कहा—'मैं नवाब से बात करूंगा।'

दूसरे दिन सवेरे कुञ्जरसिंह ने अलीमर्दान से अपने संकल्प के अनुरूप कराने की चेष्टा की, परन्तु सफल न हुआ। अलीमर्दान सिंहगढ़ को अपने अधिकार से बाहर नहीं होने देना चाहता था। और कुंजरसिंह अलीमर्दान को प्रबलता के किसी विस्तृत कोण पर स्थित नही देखना चाहता था। दो-तीन दिन इसी विषय को लेकर वाद-विवाद होता रहा। इसका फल यह हुआ कि सहज निर्णयशीला रानी कुञ्जरसिंह को किले के बाहर निकाल देने की कल्पना करने लगी।

अलीमर्दान को रानी का यह भाव कुछ-कुछ अवगत हो गया। उसका व्यवहार कुज्जरसिंह के साथ कड़ुआ होने की अपेक्षा दो-तीन दिनों में अधिक शिष्ट हुआ। उन दो-तीन दिनों में कोई सेना कहीं नहीं भेजी गई। अलीमर्दान ने मुस्तैदी के साथ खाद्य-सामग्री इकट्ठी करली। परन्तु तीन दिन के उपरान्त भी रण की योजना अनिश्चित ही थी।

[३२]

उसी दिन लोचनसिंह के रुष्ट होकर चले जाने पर जनार्दन बहुत चिन्तित हुआ। वह उसके हठी स्वभाव को जानता था। इसलिये उस समय मनाने के लिये नहीं गया।

देवीसिंह को सूचित नही कर सकता था, क्योंकि वह जानता था कि बात और बिगड़ जायगी।

राजधानी में बलवा ऊपर से देखने में दब गया था, परन्तु शान्त नही हुआ था। जिन लोगो ने यह विश्वास करके उपद्रव किया था कि देवीसिंह यथार्थ में राज्य का अधिकारी नही है, बड़ी रानी अनुचित रूप से देवीसिंह का साथ दे रही है और छोटी रानी अन्याय-पीड़ित है, उन लोगों के कुचल दिये जाने से भावों की तरङ्ग नहीं कुचली जा सकी, प्रत्युत वह भीतर-ही-भीतर और भी प्रबल और प्रचण्ड हो उठी। जनार्दन इस बात को जानता था इसलिये लोचनसिंह जैसा सदृश योद्धा और सेनापति को ऐसे गाढ़े समय मे हाथ से नही खो सकता था।

परन्तु लोचनसिंह की प्रकृति मे ऐसी बातों के सोचने के लिये बहुत ही कम स्थान था। जनार्दन कुछ समय का अन्तर देकर बिना किसी ठाट-बाट के अकेला लोचनसिंह के घर गया।

जाते ही हाथ बाँधकर खड़ा हो गया। बोला—'आज एक भीख माँगने आया हूं।'

सैनिक लोचनसिंह ने बँधे हुये हाथ छुड़ा दिये कहने लगा—'पण्डित जी, मुझे हाथ जोड़कर पाप में मत घसींटो।'

'भीख माँगने आया हूं। इससे तो आप ब्राह्मणों को वर्जित नहीं कर सकते!'

'मै आपकी सब करामात समझता हूं। आप जो कुछ माँगें दे डालूंगा, परन्तु बात न दूंगा। मैं सिहगढ़ जाऊँगा।' परन्तु लोचनसिंह के स्वर में निश्चय की ऐंठ न थी।

जनार्दन ने तुरन्त कहा—'उसके विषय में जो आपको उचित दिखलाई पड़े, सो कीजिये। मै और एक भीख माँगने आया हूं।'

लोचनसिंह ने गम्भीर होकर पूछा—'और क्या पण्डित जी?'

जनार्दन ने राज्य की मुहर लोचनसिंह के सामने डालकर कहा—'सिहगढ़ मत जाइये। कहीं न जाइये। यह मुहर लीजिये और दीवानी काम कीजिये। मेरे बाल-बच्चों की रक्षा का भार लीजिये और मुझे बिदा दीजिये। मैं बदरीनारायण जाता हूं। ग्रीष्म-ऋतु आने तक वहाँ पहुंच जाऊँगा। यदि कभी लौटकर आ सका और दलीपनगर को बचा खूचा देख सका, तो बाल-बच्चो का भी मुंह देख लूंगा, अन्यथा ब्राह्मणों को तीर्थ में प्राणत्याग करने का भय नहीं है।'

लोचनसिंह नें अचम्भे के साथ कहा—'मै दीवानी करूंगा। दीवानी मै क्या-क्या करना होता है, इसे जानने की मैंने आज तक कभी कोशिश नही की मह मुझसे न होगा।'

आतंक के साथ ब्राह्मण बोला–'यह भी न होगा, वह भी न होगा तब होगा क्या ? बात देकर बदलना आपको आज ही देखा, अभी-अभी आपने क्या कहा था ?'

लोचनसिंह की आँख के कोने में एक छोटा-सा आँसू झलक आया। बोला—'मैं हार गया।'

'क्या हार गये ? भीख न दोगे ?' जनार्दन ने पूछा।

'सिंहगढ़ जाऊँगा। या तो सिंहगढ़ राजा को दे दूंगा या कभी अपना मुँह न दिखाऊँगा।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया–'अभी सेना लेकर रवाना होता हूं।

जनार्दन ने मन मे कहा—'अब राजा के पास लोचनसिंह के इस प्रण का समाचार भेजूंगा।'

[३३]

अलीमर्दान को खबर लगी कि राजा देवीसिंह का साम ना करने के लिये जिस फौज को वह छोड़ आया था, उसे मैदान छोड़ना पड़ा और पालर की सेना को देवीसिह ने इस तरह आक्रांत किया कि दूसरी टुकड़ी उसमें नही मिल सकी। वह चक्कर काटकर सिहागढ़ की ओर आ रही है, इस सूचना को पाकर अलीमर्दान ने एक बड़े दस्ते के साथ दलीप–नगर पर धावा कर देने का निश्चय किया।

वह सिंहगढ़ को भी नही भूला। अच्छी तरह कालेखाँ के सेनापतित्व में सैनिकों को छोड़ने का उसने प्रवन्ध कर लिया।

रानी को खवर लगी। उन्होंने कुञ्जरसिंह को उसी समय बुला–कर कहा–'अब क्या करने की ठानी है मन में, अब भी परस्पर लड़ते–झगड़ते ही रहोगे ?'

'मैंने तो कोई झगड़ा नही किया कक्कोजू। गँवार लोग गाली-गलौज आपस में करते हैं। क्या उसी को झगड़ा कहा जाता है। कक्कोजू ?'

'कह डालो। सङ्कोच मत करो।'

कुञ्जरसिंह ने जरा रुखाई के साथ कहा-'मैं यदि किले में ही लड़ते लड़ते मर जाता, तो बहुत अच्छा होता।'

रानी ने कहा-'वह अब भी हो सकता है कुञ्जरसिंह। मौत के लिये किसी को भटकना नही पडता। जो लोग कहते है कि मौत नही आती, वे असल में मौत चाहते नही, मुंह से केवल बकते है। तुम्हें यदि क्षत्रियों की मौत चाहिये, तो योजनाओं में मीन-मेख मत निकालो। जो कहा जाय, करो।'

'मैंने अपनी नीति निश्चित कर ली है।' कुञ्जरसिंह ने निर्णय-व्यंजक स्वर मे कहा-'मैं इस गढ़ को अलीमर्दान के अधिकार में न जाने दूंगा। वह हमारी सहायता सेंत-मेत करने नहीं आया है सिंहगढ़ का परगना और किला सदा के लिये हथियाना चाहता है, क्योंकि कालपी की भूमि इसके पास पड़ती है। मैं इस बपौती को प्राण रहते न जाने दूंगा। केवल आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है और किसी की नहीं-'

रानी ने वाक्य पूरा होने दिया। बोली-'तुम कदाचित् यह समझते हो कि यहाँ न होते तो प्रलय हो जायगी। मैं भी सैन्य-संचालन कर सकती हूं। लड़ना मरना और राज्य करना भी जानती हूं।'

असंदिग्ध भाव से कुञ्जर ने कहा—'आप राज्य करें, मै आड़े नही हूं। कोई राज्य करे, पर मै सिंहगढ़ को दूसरों के हाथ न जाने दूंगा।'

'मूर्ख।' रानी प्रचण्ड स्वर मे बोली-'सदा मूर्ख रहा और सदा मूर्ख ही रहेगा। मैने अलीमर्दान को सेनापति नियुक्त किया है उसकी आज्ञा माननी होगी। जो कोई उल्लघंन करेगा। वह दण्ड का भागी होगा।'

कुञ्जरसिंह क्रोध के मारे काँपने लगा। काँपते हुये स्वर में उसने कहा—'आप स्त्री है, यदि किसी पुरुष ने यह बात कही होती, तो अपने खड्ग से उसका उत्तर देता।'

रानी का हाथ अपने हथियार पर गया ही था कि दौड़ता हुआ रामदयाल आया। यकायक बोला–'हम लोग घिर गये है।'

'किनसे ?' कुञ्जरसिंह और रानी दोनो ने पूछा।

उसने उत्तर दिया–'लोचनसिंह की सेना का एक भाग सिंधु–नदी के उस पार वन में उत्तर की ओर बहुत निकट आ गया है। दक्षिण और पश्चिम की ओर से भी एक बढ़ी सेना आ रही है।'

रानी पैर दाँत पीसकर बोली-'कुञ्जरसिंह, कुञ्जरसिंह जाओ। अब मेरे सामने मत आना।'

कुञ्जरसिंह यह कहता हुआ वहाँ से चला गया-'मैं किला छोड़कर बाहर नहीं जाऊँगा।'

रानी ने रामदयाल से विस्तार-पूर्वक हाल सुना। उसे इस बात पर बड़ी कुढन हुई कि दो तीन-दिन यो ही नष्ट करके लोचनसिंह को इतने निकट चले आने का मौका दिया। कदाचित् सारा कोप कुञ्जरसिंह के ऊपर केन्द्रित हो गया।

अपने विश्वास-पात्र रामदयाल से बोली-'तुझे अपना प्रण याद है ?'

'हाँ महाराज।'

'कब पूरा करेगा ?'

'सिंहगढ़ के युद्ध के उपरांत अवसर मिलते ही तुरन्त।'

'अभी चला जा। जैसे बने, राजधानी में उसका गला काट डाल। यदि सब मारे जायें और अकेला जनार्दन बचा रहे, तो शान्ति न होगी।

'चरणो को अकेला नही छोड़ सकता। कुञ्जरसिंह राजा के स्वार्थ का मुझे बहुत भय है।'

रानी इस उत्तर को सुनकर कुछ देर चुप रही, फिर बोलीं-'अच्छा, अभी यही बना रह। कुञ्जरसिंह के ऊपर निगरानी रखने के लिये सेनापति से कह दे।'

रामदयाल ने स्वीकार किया।

[१४]

कुन्जरसिंह ने अपने सब आदमी इकट्ठे करके सिन्धु नदी की ओर उत्तर वाले छोटे फाटक के आस-पास फैला दिये और उन्हें अपनी स्थिति समझा दी। वे लोग बहुत नहीं थे, परन्तु आज्ञाकारी थे।

इतना करके अलीमर्दान के पास गया। 'नवाब साहब' कुन्जरसिंह ने साधारण शिष्टाचार के साथ कहा—'लोचनसिंह का विरोध बड़ी सावधानी और कढ़ाई के साथ करना पड़ेगा। उस सरीखा रण-शूर और रण-चतुर कठिनाई से कहीं और मिलेगा।'

'जरूर होगा।' अलीमर्दान ने रुखाई के साथ कहा—'जब दुश्मन उसको बखान करते हैं, तो ऐसा ही होगा और इसमें कोई सन्देह नहीं कि देवीसिंह की सेना में हम लोगों-जैसे काहिल बहुत कम होंगे।'

कुन्जरसिंह इस प्रकट व्यङ्ग से पीड़ित नही हुआ–'कम-से-कम ऐसा उसकी आकृति से जाहिर नहीं होता था। बोला–'यह अच्छा हुआ कि हम लोगों ने अपनी सेना को अनेक भागों में खण्डित नहीं किया।' कुन्जरसिंह ने कहा–'अन्यथा इस समय हाथ में कुछ भी न रहता, पर, खैर, अब गई–गुजरी बातें छोड़कर लोचनसिंह के मुकाबले की तैयारी कीजिये।'

अलीमर्दान ने कहा–'वह अच्छी तरह हो गई है। आप कालेखाँ और रानी साहब किले के भीतर से लड़ें और मैं बाहर से लड़ूँगा। सब लोग भीतर बैठकर लड़ेंगे तो एक तरह से कैदियों की-सी हालत हो जायगी।'

'मुझे यह सलाह पसन्द है।' कुन्जरसिंह ने एक क्षण सोचने का भाव दिखलाते हुये कहा।

वह बोला—'आप किले की लड़ाई बहुत पसन्द करते हैं, इसलिये मैंने यही तय किया है।'

अलीमर्दान ने 'यही तय किया है,' इस बात को सुनकर कुञ्जरसिंह को बहुत सुख नहीं मिला।

वह अपने स्थान पर चला गया। थोड़े ही समय में उसे ज्ञात हो गया कि गढ़ का नायकत्व उसके हाथ में नहीं है और रानी के नाम की ओट में अलीमर्दान सेनापतित्व कर रहा है।

उसके छोटे से दल को भी यह बात विदित हो गई। अपनी प्रभुता के मद, अपनी आजादी के नशे में वह, पहले जिस आने वाली मौत को दोनों हाथों झेलने के लिये तैयार था, अब उसके साक्षात्कार में उस उन्माद का अनुभव न कर सका।

[३५]

लोचनसिंह एक बड़ी सेना लेकर तूफान की तेजी की तरह सिंहगढ़ पर चढ़ आया। चक्कर दिलवाकर उसने अपनी सेना का एक भाग सिन्धु उस पार किले के ठीक उत्तर में भेज दिया।

अलीमर्दान ने गढ़ से बाहर निकलकर उसका सामना किया। दो दिन की लड़ाई में दोनों ओर के बहुत आदमी मारे गये। बार-बार लोचनसिंह विरोधी दल को गढ़ में भगा देने की चेष्टा करता था और अलीमर्दान उसे विफल-प्रयत्न कर डालता था। तीसरे दिन लोचनसिंह ने निरन्तर आक्रमण जारी रखने के लिये अपनी सेना के अनेक दल बनाये, जो बारी-बारी से जागते, सोते और युद्ध करते थे। यद्यपि यह योजना बिलकुल सही तौर से अमल में न आ सकी, परन्तु बहुत अंशों मे सफल हुई और एक दिन रात की लड़ाई में उसका प्रभाव अलीमर्दान की पीछे हटती हुई सेना पर पड़ा हुआ दिखलाई देने लगा। गढ़ अभी लोचनसिंह से दूर था। थोड़ा-सा पीछे हटकर अलीमर्दान खूब जमकर लड़ने लगा। दिन भर बहुत जोर की लड़ाई हुई सन्ध्या से जरा पहले उसकी कुल सेना दायें-बांये कटकर बहुत तेजी के साथ लड़ते-लड़ते भाग

गई। आध-आध मील पश्चिम और पूर्व दिशाओं में भागने के बाद दूर पर एक जगह इकट्ठी होने लगी।

इस आकस्मिक दौड़-धूप में लोचनसिंह की सेना भी तितर-बितर हो गई। अन्धेरा हो जाने के कारण दूर तक पीछा न कर सकी और लौट पडी। अलीमर्दान की सेना ने थोडी दूर पर सामने इकट्ठे होकर गोलाबारी शुरू कर दी, परन्तु घड़ी-दो घड़ी बाद शान्त हो गई।

लोचनसिंह की समझ में यह रहस्य न आया। थोड़ी देर सोचने के बाद उसने निश्चय किया कि अलीमर्दान किले में जा घुसा है, परन्तु सामने कहीं-कहीं आग का प्रकाश देखकर उसका भ्रम दूर हो गया। विश्राम-प्राप्त दल को लेकर उसने तुरन्त हमला करने का निश्चय किया। लोचनसिंह के निश्चय को मिटाने या ढीला करने की सामर्थ्य सेना मे किसी मे न थी, यद्यपि विश्राम-प्राप्त सैनिक भी और अधिक विश्राम-प्राप्त करने के आकाक्षी थे।

घुड़सवारों ने आक्रमण किया। आक्रमण का वेग पहले कम फिर प्रचण्ड हो उठा। जो घुडसवार आगे थे, एक स्थान पर जाकर यकायक रुक गये। एकबारगी चिल्लाये—'मत बढ़ो' धोका है।' और बहुत-से सवारों का चीत्कार और घोड़ों के मर्माहत होने का स्वर सुनाई पड़ा। तुरन्त ही बन्दूकों की बाढ़ दगने लगी।

गोलियों की भनभनाहट के बीचों बीच लोचनसिंह अपना घोड़ा दौडाता हुआ उसी स्थान पर पहुंचा। देखा, सामने एक बड़ी गहरी और चौडी खाई है, जिसमे पड़े-पड़े घोड़े अपने टूटे सिर पैर फड़फड़ा और घायल सिपाही कराह रहे हैं।

घोड़े का लगाम हाथ में पकड़े हुये, घुटने टेके हुये एक सैनिक से लोचनसिंह ने पूछा—'इसमे कितने खप गये होगे ?'

'सैकड़ों।' उत्तर मिला।

'इसी स्थान पर।'

'मैं लोचनसिंह हूं ।'

'चामुन्डरायजु जुहार ।'

'मेरे पीछे आओ । सब आओ ।'

'मौत के मुंह में ।'

'नहीं; मौत के मुंह से बचाने के लिये । अभागे; सब खाई में कूद पड़ो ।'

लोचनसिंह की आज्ञा पर कोई सैनिक खाई में नहीं कूदा ।

लोचनसिंह के शरीर में मानो आग लग गई । परन्तु वह अपने सैनिक को प्यार करता था, इसलिये उसने अपने कोप का किसी को लक्ष्य नहीं बनाया । परन्तु शीघ्र कुछ करना था, इसलिये अपने पास तुरन्त थोड़े से सैनिक इकट्ठे कर लिये ।

बोला—'साफा मेरी कमर में बाँधकर नीचे लटका दो । मैं वहां की दशा देखता हूं । उसके बाद घोड़ों को छोड़कर और लोग भी इसी तरह उतर आओ । घोड़ों की लोथों और आदमियों की लाशों को इकट्ठा करके खड्डा पाट दो, और मार्ग बनाकर खाई को पार कर लो । एक घण्टे के भीतर सिंहगढ़ हाथ में आ जायगा । मैंने निश्चय किया है कि आज वहीं सोऊँगा ।'

लोचनसिंह को नीचे अकेले न जाना पड़ा । कई सैनिक इसके लिये तैयार हो गये, परन्तु लोचनसिंह सबसे पहले नीचे उतरा । नीचे जाकर इन लोगों ने लाशों का ढेर लगाकर खाई में एक सकरी रास्ता बना ली, वह इतनी बड़ी थी कि दो-तीन सवार एक साथ निकल सकते थे । दूसरी ओर से बन्दूकें चल रही थी, परन्तु लोचनसिंह आगे और उसके सवार पीछे-पीछे खाई पार करके दूसरी ओर पहुंच गये । अलीमर्दान ने कल्पना नहीं की थी कि लोचनसिंह की सेना खाई पार करके इतनी शीघ्र आ जायगी । उसने इस खाई के पश्चिमी तथा पूर्वीय सिरों पर व्यूह बना लिया था और बीच की पाँत को जरा पीछे हटाकर

जमा किया था। सिरे वाली टुकड़ियों ने उसके बंधे हुये इशारे पर काम नहीं कर पाया, नहीं तो जिस समय आरम्भ में ही लोचनसिंह के बहुत से योद्धा खाई में गिरे और शोर हुआ, सिरे वाली टुकड़ियाँ इन पर दोनों ओर से हमला कर देती और लोचनसिंह की सेना का एक बहुत बड़ा भाग बहुत थोड़ी देर में नष्ट हो जाता। लोचनसिंह की सेना व एक बड़े दल ने खाई पार करके तुमुल-ध्वनि के साथ जय-जयकार किया। खाई के उसी अरफ पीछे जो लोग रह गये थे, उन्होंने भी जयकार किया। किले के ऊपर से तोपें गोले उगलने लगी। खाई के दोनों सिरों की टुकड़ियाँ किले की ओर भागी। इस गोल-माल मे अलीमर्दान की बीच की पाँत भी पीछे हटी। किले की तोपों ने शत्रु और मित्र का भेद न पहचाना दोनों दलों के अनेक लोग इन गोलों से चकनाचूर हो गये

अलीमर्दान ने किले के भीतर घुसकर युद्ध करना पसन्द नहीं किया वह पूर्व की ओर दूरी पर अपनी सेना लेकर चला गया। यद्यपि वह चतुराई के साथ पीछे हटने में बड़ा दक्ष था, परन्तु इस लड़ाई में उसका नुक्सान हुआ।

[३६]

लोचनसिंह की विजयिनी सेना किले की ओर बढ़ती गई। खाई के सिरों पर अलीमर्दान की जो टुकड़ियां किले की ओर भागी, उनके लिये द्वार न खुल पाया। उत्तर की ओर से लोचनसिंह के दूसरे दस्ते ने जोर का धावा किया। कुञ्जरसिंह के दल ने यथाशक्ति उत्तर की ओर से आने वाली बाढ़ का प्रतिरोध किया, परतु कुछ न बन पड़ा। वह दल उस ओर से किले के भीतर घुस आया। कुञ्जरसिंह ने अपने साथियों सहित लड़ कर मर जाने की ठानी।

उसी समय रामदयाल कुञ्जरसिंह के पास आया। बोला—'राजा महारानी के महलों पर चलकर लड़ो। यह स्थान घिर गया है।

कालेखाँ फाटक पर लड़ रहे हैं। उस तरफ से दुश्मन की फौज दावे चली आ रही है। यदि फाटक खोलते हैं, तो भीतर-बाहर सब ओर वैरी का लोहा बज जायगा।'

कुन्जरसिंह ने कहा—'महारानी जितने सिर कटवा सकती है, उतने बचा नहीं सकतीं, इस जगह लड़ना व्यर्थ है, मै तो बाहर जाकर लड़ूंगा।'

'स्त्री की पुकार? और वह आपकी माँ भी होती है।'

'उन्होंने हम सबको इस दुर्दशा में पहुंचाया।'

'फिर भी माँ है। राजा नायकसिंह की रानी है। याद कर लीजिये। माँ के ऋण से उऋण होना है। अन्य सब बातों को भूल जाइये।'

'कुछ कहना है, वह तुमसे कह दिया। जाकर कह दो। वह स्त्री नहीं है। स्त्री वेश में प्रचण्ड पुरुष हैं। यदि उन्हें अपनी रक्षा की चिन्ता हो, तो मेरे साथ चलें। जाओ।'

यह कहकर कुन्जरसिंह अपने आदमियों को लेकर चलने को हुआ- इतने में कालेखाँ आ गया। बोला—'कुन्जरसिंह, तुमने हमारा सत्यानाश किया। कहाँ जाते हो?'

'जहाँ इच्छा होगी, वहाँ?'

'यह नहीं हो सकता। मैं कोटपाल हूं। मेरा हुकुम मानना होगा, न मानोगे सजा पाओगे।'

कुन्जरसिंह नङ्गी तलवार हाथ में लिये था। बोला—'दण्ड-विधान मेरे हाथ मे है। जाओ, अपना काम देखो। गढ़ और राज्य का मालिक मैं हूं और फिर बतलाऊँगा।'

कुन्जरसिंह चला गया। कालेखाँ चिल्लाया—'पकड़ो, पकड़ो।'

रामदयाल ने भी वही पुकार लगाई। लोचनसिंह की सेना के जो सैनिक गढ़ के भीतर आ गये थे, वे कालेखाँ की ओर झपटे। वह तो

लड़ता हुआ किले की दक्षिण की ओर निकल गया, परन्तु रामदयाल पकड़ा गया। उसने घिघियाकर प्राण-रक्षा की प्रार्थना की—'मैं तो नौकर हूं, सिपाही नही हूं, मुझे मत मारो।'

सिपाहियों ने उसे कैद कर लिया।

उधर से हल्ला कर के लोचनसिह की सेना ने गढ़ का सदर फाटक तोड़ डाला। कालेखाँ की सेना घमासान युद्ध करने लगी, परन्तु लोचन-सिह को पीछे न हटा सकी। कालेखाँ कुछ सिपाहियों को लेकर किले से बाहर निकल गया। उसकी शेष सेना का अधिकांश भाग मारा गया, जो नही लडे, वे कैद कर लिये गये।

रामदयाल पहले ही कैद कर लिया गया था। लोचनसिह ने रानी को भी कैद कर लिया।

मशालो की रोशनी में किले का प्रबन्ध करके लोचनसिह ने किले के भीतर और बाहर सेना को नियुक्त किया। एक दल कालेखाँ का पीछा करने के लिये भी भेजा। अलीमर्दान भी स्थिति को समझ कर कर वहाँ से दूर चला गया। कालेखाँ अपने बचे-खुचे आदमी लेकर उससे जा मिला और दोनो अपने पालर वाले दस्ते से कई कोस के फासले पर कुछ समय उपरांत जा मिले। उस रात लोचनसिह सिहगढ़ में तो पहुंच गया, परन्तु सो नही सका।

[२७]

राजा देवीसिह ने अलीमर्दान के पालर वाले दस्ते को हटाकर ही चैन नही लिया, वल्कि इस बात का प्रबन्ध करने की चेष्टा की कि वह लौटकर फिर उपद्रव न करें। राजधानी सुरक्षित थी। सिहगढ़ विजय का समाचार पाकर उसने दलीपनगर की सीमा को बचाव के लिये दृढ़ करना आरम्भ कर दिया। उधर लोचनसिह को उचित धन्यवाद देते हुये आदेश भेजा।

लोचनसिंह ने इसे पाकर रामदयाल को बुलाया। कैद में था, पहरेदारों के साथ आया। लोचनसिंह ने कहा—'छोटी रानी से मिलना चाहता हूं। थोड़ी देर में आता हूं। कागज कलम-दावात तैयार रक्खें।'

रामदयाल लौटा दिया गया। थोड़ी देर बाद लोचनसिंह गया। पर्दे मे बैठी हुई रानी से बातचीत होने लगी।

रानी ने कहा—'जो हुकुम तुमने अपने डेरे पर मेरे नौकर को बुलाकर दिया, उसे किसी से यहीं कहलवा भेजते, क्यों मेरा हल्कापन करते हो?'

'मैं नौकरों के डेरों पर नहीं जाता। और क्या ठीक था, जो कुछ किसी के द्वारा कहलवा भेजता, उसे माना जाता या नहीं?'

'यह नौकरों का डेरा है लोचनसिंह?'

'यह न सही, वह तो है। अब मैं जिस काम से आया हूं, वह सुन लीजिये।'

'क्या? सिर काटने के लिये।'

'यह काम मेरा नही और न मै इसके लिये आया ही हूं। कलम, दावात, कागज मौजूद है?'

'नहीं है। काहे के लिये चाहिये?'

लोचनसिंह ने बहुत शिष्टाचार के साथ बतलाने की कोशिश की, परन्तु फिर भी उसके स्वर में काफी कठोरता थी। बोला—'आपको कागज पर यह लिखना होगा कि दलीपनगर राज्य से आपको कोई वास्ता नही।'

'किस की आज्ञा से?' रानी ने काँपते हुये स्वर में पूछा।

'राजा की आज्ञा से।' उत्तर मिला।

'राजा की आज्ञा से।' बड़ी घृणा के साथ रानी बोली-'उस भिख-मंगे की आज्ञा से! जाओ उससे कह दो कि मैं रानी हूं, राज्य की स्वा-मिनी हूं। वह लुटेरा और जनार्दन विश्वासघाती हैं, चोर हैं, मैं तुम सबों को दण्ड की व्यवस्था करूँगी।'

'तुम अब रानी नही हो।' लोचनसिंह ने उत्तेजित होकर कहा—'स्त्री हो, नहीं तो—'लोचनसिंह वाक्य पूरा नही कर पाया। अपने आवेश में डूबकर रह गया।

रानी बोली—'लोचनसिंह, लोचनसिंह, कोई स्त्री तुम्हारी भी माँ रही होगी परन्तु तुम किसी के न होकर रहे। मेरे स्वामी के लिये तुम अपना सिर दे डालने की डींग मारा करते थे। झूठे, घमण्डी, इस छिछोरे का अञ्जलि-भर अन्न खाते ही तू अपने पुराने स्वामी को भूल गया। हट जा मेरे सामने से।'

लोचनसिंह ने इस तरह के कुवचन अपने जीवन में कभी न सुने थे। तिलमिला गया। बोला—'सच मानो रानी, अपने पूर्व राजा की याद ही मेरे खड्ग को इस समय रोके हुये है, नही तो ऐसा अपमान करके कोई भी स्त्री-पुरुप मेरे हाथ से नही बच सकता था। तुम कैद में हो, इसलिये भी अवध्य हो और इसीलिये तुम्हारी जबान इतनी तेज चल रही है। राजा को सब हाल लिखे देता हूं। वह यदि तुम्हें प्राण-दण्ड भी देंगे, तो मैं कोई निषेध नही करूँगा।

लोचनसिंह बहुत खिन्न, बहुत क्लांत वहाँ से चला गया, परन्तु रानी कहती रहीं-'देखूंगी, देखूंगी कैसे देवीसिंह राजा बना रह सकता है? सबको सूली न दी या कतर न डाला, तो मेरा नाम नही। इन नमक-हरामों का माँस यदि कुत्तों से न नुचवा पाया, तो जान लूंगी कि संसार से धर्म बिलकुल उठ गया।'

उस दिन से लोचनसिंह ने रानी का पहरा बहुत कड़ा कर दिया।

(३८)

लोचनसिंह से खबर पाकर राजा देवीसिंह ने रानी को रामदयाल समेत दलीपनगर बुलवा लिया और लोचनसिंह को सिंहगढ़ रक्षा के लिए वहीं रहने दिया।

देवीसिंह अपनी सेना को एक सरदार की मातहती में छोड़कर दलीपनगर आ गया। उस दिन जनार्दन के साथ बातचीत हुई।

राजा ने कहा—'लोचनसिंह ने रानी के साथ बहुत कड़ाई का बर्ताव किया है, परन्तु इसमें दोष मेरा है, मुझे लिखा-पढ़ी कराने का काम लोचनसिंह के हाथ में न देना चाहिये था। तुम्हारे हाथ में होता तो सुभीते के साथ हो जाता।'

'नही महाराज।' जनार्दन बोला—'मुझी पर तो रानी का पूरा कोप है। पन्होंने मुझे मरवा डालने का प्रण किया है। मेरे द्वारा वह काम और भी दुष्कर होता।'

राजा ने हँसकर कहा—'वह तो इस समय संसार को दूसरे लोक में उठा भेजने की धमकी देती है। मैं ऐसे पागलों की बहक की कुछ भी परवाह नहीं करता। मैं चाहता हूँ, रानी का अब किसी तरह का अपमान न किया जाय और पहरा बहुत हल्का कर दिया जाय। वह राजमाता हैं आदर की पात्री है केवल इतनी देखभाल की जरूरत है, जिसमें संकट उपस्थित न कर सकें।'

'यह बात जरा कठिन है महाराज! पहरा कठोर न होगा, किसी दिन पूर्ववत् महल से निकल भागकर विद्रोह खड़ा कर देंगी।' जनार्दन दृढ़ता के साथ बोला।

राजा ने एक क्षण सोचकर कहा—'तब उन्हें बड़ी रानी के महलों में ऐक ओर रख दो। वहाँ पहले ही से बहुत नौकर-चाकर और सैनिक रहते है। पहरा काफी बना रहेगा और रानी को खटकने न पावेगा।'

इस प्रस्ताव को ध्यानपूर्वक सोचकर जनार्दन ने स्वीकार कर लिया।

राजा बोले—'और यदि वह लिखा-पढ़ी न कराई जाय, तो क्या होगा ? सब जानते हैं, मैं राजा हूं। एक रानी के मानने या न मानने से क्या अन्तर पड़ेगा ?'

'जो लोग महाराज !' जनार्दन ने उत्तर दिया—'भीतर-ही-भीतर राज्य से फिरे हुये हैं, उनके लिये लिखा-पढ़ी अमोल अस्त्र का काम देगी। डांवाडोल तबियत के आदमियों के लिये इतना ही सहारा बहुत हो जायगा।'

राजा ने कुछ उत्तर नही दिया। इसके बाद दोनों छोटी रानी के पास गये। वहाँ पहुंचने के पहले देवीसिंह ने कहा—'पण्डित जी, बात-चीत आपको करनी पड़ेगी। मैं बहुत कम बोलूंगा।'

जनार्दन को कुछ कहने का मोका न मिला। दोनो रानी के पास पहुंच गये। रानी पर्दे मे थीं। राजा ने देहरी पर माथा टेककर प्रणाम किया। रानी ने आशीर्वाद नहीं दिया।

बोलीं'—जनार्दन को यहाँ से हटा दो।'

देवीसिंह इस तरह के अभिवादन की आशा नही करता था। सन्नाटे ने आ गया। उसे अवाक् होता देख जनार्दन आगे बढ़ा। कहने लगा—'मेरे ऊपर आपका जो रोष है सो उचित ही है, परन्तु यदि आप विचार करें तो समझ मे आ जायगा कि वास्तव में मेरा अपराध कुछ नहीं और मान लिया जाय कि मैं अपराधी ही हूं, तो भी आपको माता के बराबर मानता हूं, इसलिये क्षमा के योग्य हूं। मैंने जो कुछ किया है, राज्य के उपकार के लिये किया है—'

रानी ने टोककर कहा—'हम जो दर-दर मारे-मारे फिर रहे हैं, हमारे साथ जो छोटे-छोटे आदमी पशुओं जैसा वर्ताव कर रहे हैं, हम बन्दी-गृह में डाल रक्खा है, वह सब राज्य का उपकार ही है न

पण्डितजी ? स्मरण रखना, इस लोक के बाद भी कुछ और है और देर सबेर वही जाओगे।'

'सो मूझे सब मालूम है। जनार्दन ने कहा—'आपकी मेरे ऊपर जैसी कुछ दया-दृष्टि है, वह भली-भाँति प्रकट है, परन्तु प्रार्थना है कि अब ऐसा निर्देश कीजिये, जिसमें राज्य का कुशल-मङ्गल हो।'

राजा ने जनार्दन से पूछा—'रामदयाल कहाँ है ?'

रानी ने तुरन्त उत्तर दिया—'कैदखाने में पैकरे डाले हुए और मुझे जितनी स्वतन्त्रता दे रक्खी है, उसका बड़प्पन इससे नापा जा सकता है कि स्नान करते समय भी दो-तीन बादियाँ नङ्गी तलवार लिये सिर पर तनी रहती है। एक शूरवीरता का काम तुम लोगों के लिये और रह गया है—मुझे विष दिलवा दो, या तलवार से कटवाकर फिकवा दो।'

जनार्दन कुछ कहना चाहता था, परन्तु राजा ने आँख के संकेत से मना कर दिया और स्वयं बोला—'रामदयाल को मैं इसी समय मुक्त करता हूं। वह सदा आपकी चाकरी में रहेगा और आप बड़ी कक्कोजू वाले महल में चली जायें।'

'न।' रानी ने कहा—'मैं इसी कैदखाने में अच्छी, जो पहले मेरा ही महल था, आज यातना-गृह हो गया है। इसी में बने रहने से तुम लोगों की शुभ कामना अच्छी तरह पूर्ण हो सकेगी। मैं यहाँ से नहीं जाऊँगी।'

'जाना होगा।' राजा बोले—'कक्कोजू, यदि तुम यहाँ से उस महल में न जाओगी, तो मै सेवा करने के लिये इसी स्थान पर आ रहूंगा।'

रानी कुछ देर चुप रही।

जनार्दन ने कहा—'आप इसे भी हम लोगों के किसी स्वार्थ की प्रेरणा समझेंगी। परन्तु कृपा करके आप शांति के साथ रहियेगा। सोचिये, आपने इस राज्य के नाश करने मे कोई कसर उठा नहीं रक्खी।

अलीमर्दान को बुलवाया, जो पालर के मन्दिर का नाश करने के लिये कटिबद्ध रहा है, जो दुर्गा के अवतार को भ्रष्ट करने का निश्चय करके आया था। आप यदि यहीं रहना पसन्द करती है, तो बनी रहें, किया ही क्या जा सकता है?'

'झूठ, झूठ, सब झूठ।' रानी नें कड़ककर कहा—'यह सब जनार्दन का रचा हुआ माया-जाल है। किसी तरह तुम्हीं ने मेरे स्वामी को दवा-दे-देकर अधोगति को पहुंचाया, न जाने क्या खिला-खिलाकर फिर रोग-मुक्त न होने दिया और अन्त में प्राण लेकर ही रहे, और फिर'—रानी का गला रुँध गया।

राजा बीच में पड़ना चाहते थे, पर यह समझ मे न आता था कि इस अवसर पर किस तरह बात को टालकर साँत्वना दी जाय।'

जनार्दन ने कहने का निश्चय कर लिया और बोला—'और फिर क्या रानी? राजा ने जो कुछ आज्ञा दी, उसका मैने पालन किया। जिसके भाग्य में भगवान ने राज्य लिखा था, उसे मिला था; आप यों ही हम लोगो की जान की ग्राहक बन बैठी है। महाराज आपके सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करने की योजना करते है, तो आप व्यर्थ अपने कष्टों को बढ़ाने की चिन्ता मे निरंत हो जाती है।'

राजा ने कहा—मैने रामदयाल को मुक्त कर दिया है। आप उसे तुरन्त यहाँ भेजे।'

जनार्दन रामदयाल को लेने गया।

राजा ने कहा—'कक्कोजू, आप पण्डित जी पर क्रोध न करें। राज्य सम्भालने के लिये उन्हे अपना काम करना पड़ता है।'

'कक्कोजू मुझे मत कहो।' रानी ने रोते हुये कहा—'मैं राजा की रानी हूँ और तुम्हारी कोई नहीं। यदि कोई होती, तो क्या लोचनसिंह इत्यादि मेरा ऐसा अपमान कर पाते?'

'जो कुछ हुआ, वह अनिवार्य था कक्कोजू।' राजा बोले–'जो कुछ हुआ, उसका स्मरण छोड़ दीजिये। आगे जो कुछ करूंगा, आपकी आज्ञा से।'

'जिसमें मैं तुम्हें लिखा-पढ़ी कर दूं कि राज्य का हक छोड़ दिया।' रानी ने रोना बन्द करके, चमककर कहा–'यही है न तुम्हारी दयालुता के मूल में ?'

राजा ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। बांदियों से रानी के आराम के विषय में बातचीत करने लगे। इतने में रामदयाल को लेकर जनार्दन आ गया।

राजा ने रामदयाल से कहा–'कक्कोजू को बड़ी कक्कोजू वाले महल में पहुंचा दो। उन्हें यदि किसी तरह का कष्ट हुआ, तो तुम्हें सङ्कट में पड़ना होगा।'

रानी बोली–'तुम उसकी खाल खिचवाओ और जनार्दन मेरी खाल खिचवाये।'

इस व्यङ्ग का कोई प्रतिवाद न करके दोनों वहाँ से चले गये।

[३९]

बड़ी रानी के महल मे छोटी रानी को रखने के बाद जनार्दन ने सोचा, अच्छा नही किया। एक तो यह कि छोटी रानी शायद उन्हे भी विचलित करने की कोशिश करें, और दूसरे यह कि वहाँ निकल भागने का अधिक सुभीता है। उसे इस बात का पछतावा था कि राजा की भावुकता का नियन्त्रण न कर पाया और स्वयं भी एक छोटे-से कष्ट से बचने के लिये दूसरे बड़े सङ्कट में जा पड़ा।

राजा ने छोटी रानी को बड़ी रानी के भवन में भेज देने के बाद पहरा शिथिल कर दिया और रामदयाल को उनकी सेवा में बने रहने की अनुमति दे दी। जो लोग बड़ी रानी की टहल में रहते थे, उन्हीं से छोटी रानी पर निगरानी रखने के लिये चुपचाप कह दिया।

परन्तु निगरानी नही हुई। राजा के साथ उस दिन जो वार्तालाप छोटी रानी का हुआ था, वह लोगों पर प्रकट हो गया। उसी के बाद पहरा ढीला कर दिया गया था। किसे क्या पड़ी थी कि प्रकट व्यवहार को भूलकर गुप्त आदेश का अक्षरशः अनुसरण करे। जिन लोगों को यह काम सौंपा गया था, उन्हे यह भी भय था कि यदि कोई बात राजा की मर्जी के खिलाफ हो गई, तो जान पर बन आवेगी और राजा की मर्जी कब क्या है, इस बात का पता लगा लेना किसी साधारण टहलुये या सिपाही के सम्भव नहीं था।

इस गलती को जनार्दन ने राजा को सुझाया भी, परन्तु उन्होंने यह कहकर जनार्दन को शांत करने की चेष्टा की कि विश्वास करने से विश्वास उत्पन्न होता है। जनार्दन ने ऊपर से तो कुछ नहीं कहा परन्तु विश्वस्त गुप्तचर नियुक्त कर दिये। महल के टहलुओ में से इन्हें कोई-कोई पहचानते थे। गुप्तचर के विषय में परस्पर काना-फूसी हुई, वास्तविक स्थिति का अनुमान करने के लिये इधर-उधर के अटकल लगे, चर्चा बढ़ी। रामदयाल को भी मालूम हो गया। दोनों रानियों के लिये भी वह भेद रहस्य न रह गया। छोटी रानी को विश्वास हो गया कि देवीसिंह क्रूरता के लिये जिम्मेदार नहीं है, बल्कि जनार्दन-पुराना शत्रु जनार्दन है। बड़ी रानी को अपने भवन में छोटी रानी का आगमन अच्छा नही मालूम हुआ। राजा ने क्यो ऐसा किया? जनार्दन का इसमें क्या मतलब है? मेरे ही महल में क्यों इस विपद को रक्खा! इत्यादि प्रश्न बड़ी रानी के मन में उठने लगे।

बड़ी रानी का स्वभाव गिरती पाली का साथ देने का था, परन्तु अपने पूर्व वैभव की स्मृति को जाग-जाग पड़ने से रोकना किसकी सामर्थ्य में है? छोटी रानी के लिये उनके हृदय में शायद ही कभी प्रेम रहा हो परन्तु उनके कष्टो और अपमानों की बढ़ी हुई, बहुत बढ़ाई हुई, गाथा सुनकर मन खीझने लगा। उस क्षोभ का वह किसी को भी लक्ष्य नहीं

बनाना चाहती थीं। राजा देवीसिंह की ओर उनके मन की प्रवृति संधि की तरफ हो चुकी थी और उन्होंने अपनी वर्तमान अनिवार्य स्थिति के ऊपर करीब-करीब काबू कर लिया था। परन्तु उजड़े हुये गौरव को लुटा हुआ बतलाने वालों की कमी न थी। दलित महत्वाकांक्षा का पुरा हुआ घाव कभी-कभी हरा होकर निःश्वास के रूप मे गल-गलाकर बाहर आ जाता था।

छोटी रानी की उपस्थिति ने खीझ, क्षोभ और दलित हृदय की आहों का सिलसिला जारी कर दिया। मन की इस अवस्था में जनार्दन के गुप्त-चरों की चिनगारी के समाचार ने उन्हें इस बात के सोचने पर विवश किया कि छोटी रानी को जैसा 'आश्वासन, विना किसी विघ्न-बाधा के जीवन-यापन कर लेने का दिया है, उसी तरह का मुझे भी दिया गया है, क्योंकि जिस तरह चुपचाप उनकी चौकसी रहती है, उसी तरह अवश्य ही मेरे ऊपर भी रहती होगी।

दो-तीन दिन के वाद छोटी रानी से सलाह करके रामदयाल बड़ी रानी के पास पहुंचा। जब तक दासियाँ पास रही, तब तक वह केवल शिष्टाचार की बाते करता रहा। रानी समझ गई कि किसी गुप्तचर की उपस्थिति के कारण रामदयाल हृदय-तल की बात कहने से झिझक रहा है। अपनी निज की दासियों मे भी कोई गुप्तचर नियुक्त है इस कल्पना पर रानी का जी जल उठा। दासियो को हटाकर रानी ने रामदयाल के साथ अधिक स्वतन्त्र वार्तालाप की आशा की।

रामदयाल ने दासियों के चले जाने पर कहा—'वह आपसे छोटी हैं। आप क्या उनके किये को क्षमा कर देगी? जो दुःख आपको है, वह उन्हें भी है।'

ठण्डी सांस लेकर रानी ने कहा—'उनमें और सब गुण है; केवल एक वाणी उनके काबू मे होती, तो वृथा का झंझट आपस में कभी न होता। उनके कष्ट और अपमान की बात सुनकर हृदय बैठ जाता है।

रामदयाल ने इधर-उधर की बातें करने के सिवा उस समय और कुछ नहीं कहा।

जाते समय बोला—'यदि कक्कोजू आपके पास आयें, तो क्या आपको अखरेगा ?'

बड़ी रानी की पूजा उनके स्वाभिमान के माप से अधिक हो गई। आँखें छलक पड़ी। रुद्ध कण्ठ से कहा—'वह क्या कोई और है ? अवश्य आवें।'

'बहुत अच्छा महाराज।' कहकर रामदयाल चला गया।

'महाराज' शब्द के सम्बोधन मे खोखलेपन की पूरी झाई अवगत

[४०]

करके बड़ी रानी को असमर्थ अवस्था पर परिताप हुआ।

नियुक्त समय पर छोटी रानी बड़ी रानी के पास आईं। बड़ी का चरण-स्पर्श द्वारा अभिवादन किया। बड़ी ने आशीर्वाद देना चाहा। क्या आसीश देती ? कोई गुप्त वेदना हृदय में जाग पड़ी और मुख पर आँसुओं की बूँद ढलक आई। छोटी रानी भी घूंघट मारे रोई, परन्तु बड़ी रानी को यह नहीं मालूम हुआ कि उनके आँसुओं ने घूंघट को भिगो पाया या नही।

बड़ी रानी की समझ में जब कुछ समय तक यह न आया कि कौन सी बात पहले कहूं, तब छोटी रानी बोली—जो कुछ मुझसे बुरा-भला बना हो, उसे बिसार दिया जाय, क्योंकि अब यह सोचना है कि इतने बडे जीवन को कैसे छोटा किया जाय।'

बड़ी ने कहा—'मैं तो आज ही जीवन को समाप्त करने के लिये तैयार हूँ, अब और क्या देखना है, जिसके लिये जियूं।'

छोटी रानी ने जरा घूंघट उघारा। बोली—'मैं केवल एक अनुष्ठान के लिये अब तक जोवन बनाये हुये हूं। बात फैल भी गई है, परन्तु उसकी चिन्ता नही। आज्ञा हो, तो सुनाऊँ ?'

'अवश्य, अवश्य ।'

'जनार्दन हम लोगों के सर्वनाश की जड़ है ।'

'अब उसकी चर्चा व्यर्थ है ।

'वह चर्चा अमिट है क्या भूल गईं, किस तरह से उसने महाराज के हस्ताक्षर का जाल बनाया ? किस तरह उसने एक अनजान लड़के को अपना खिलौना बनाकर सारे राज्य की बागडोर अपने हाथ में रक्खी है ?'

इन प्रश्नों का बड़ी रानी ने कोई उत्तर नहीं दिया । नीचा सिर कर लिया । छोटी रानी ने जरा धीमें होकर कहा—असल में हम लोग राज्य के अधिकारी है । विराने को अपनी सम्पत्ति भोगते देखकर छाती सुलग जाती है । यही मेरा दोष है, यही मेरा पाप है ।'

'पर इसका प्रतिकार ही क्या हो सकता है ? जो भाग्य में लिखा है, सो होकर रहेगा ?'

'हमारे भाग्य में यह सब दुःख और जनार्दन के भाग्य में हमारा अपमान करना ही लिखा है, यह अभी कैसे कहा जा सकता है ?'

बड़ी रानी छोटी का मुंह ताकने लगीं ।

छोटी रानी ने उत्तेजित होकर कहा—'हमारे भाग्य मे राज्य लिखा है, प्रजा-पालन लिखा है, और जनार्दन के भाग्य में प्राण-वध का दण्ड बदा है । मुझे देवी ने सपना दिया है ।'

देवी के सपने की बात सुनकर बड़ी रानी बोली—'अलीमर्दान को तुमने क्यों निमन्त्रण दिया ? इसे लोग अच्छा नहीं कहते ।'

'न कहें अच्छा ।' छोटी ने कहा—'कष्टों से पार पाने के लिये मैंने उसके पास राखी भेजी थी । और क्या करती ?'

'वह देवी का मन्दिर तोड़ने आया है ।'

'नहीं ।'

'और मन्दिर की पुजारिन को, जो देवी का अवतार भी मानी जाती है, नष्ट करने।'

'इसमें बिलकुल तथ्य नहीं। हमारे विरुद्ध प्रजा को उभारने के लिये ही जनार्दन इत्यादि ने यह षड़यन्त्र खड़ा किया है।'

'लोचनसिंह सौगन्ध खाकर कहता है।'

'ओह! उस नीच, नराधम पशु की बात मत कहो। उस जैसी हृदय हीनता पत्थर की शिलाओं में भी न होगी। ऐसा मूर्ख, ऐसा अभिमानी—'

बड़ी रानी ने धीरे से छोटी रानी की उग्रता के बढ़ते हुये को रोकने के लिये टोककर कहा—'अपने स्वभाव को अपने हाथ में रक्खो। जो कुछ करो, समझ-बूझ कर करो। हमारे निर्बल हाथों में कोई शक्ति नहीं। जो सरदार किसी समय तरफदार थे, उनके जी मुरझा गये हैं। अब कदाचित् कोई साथ न देगा।'

'यह सब पाजीपन जनार्दन का है।' छोटी रानी ने धारा-प्रवाह में कहा—जिस समय सरदार मुझे नङ्गी तलवार लिये घोड़ी की पीठ पर देखेंगे, उस समय उनके बाहु फड़क उठेंगे। न्याय और धर्म का साथ देने में मनुष्यों को विलम्ब नहीं होता। बिखरी हुई, सोई हुई शक्तियाँ, मुर्झाई हुई अचेत आत्मायें धर्म के लिये सिमट कर प्रचण्ड रूप धारण करती है और—'

उद्दण्ड प्रबलता के इन काल्पनिक चित्रों से जरा भयभीत होकर बड़ी रानी बोली—'तुम ठीक कहती हो परन्तु इस विषय पर फिर कभी शांति के साथ बातचीत होगी, तब तक सावधानी के साथ अपने मन में रक्खो।'

'मैं किसी से नहीं डरती। छोटी रानी ने कहा—'मन की बात मन में ही बन्द कर लेने से वह वहीं होकर रह जाती है। आपको सीधा पाकर ही तो इन लोगों की बन आई है। आप कैसे इन लोगों की करतूतों को सहन करती है?'

इसका उत्तर बड़ी रानी नें एक लम्बी सांस लेकर दिया। थोडी देर में छोटी रानी चली गई। बड़ी रानी ने सोचा—'यदि मैं छोटी के साथ अपनी शक्ति को मिला देती तो ये दिन सिर न आते। मैं अपने को निस्सहाय, निराश्रय समझकर ही इस हीन दशा को पहुंची हूं।'

[४१]

कुञ्जरसिंह अपने साथियों को लेकर अन्धेरे में सिंहगढ़ से निकल आया था। सिंधु-नदी के उत्तर की ओर कई कोस तक दलीपनगर का राज्य था, वन और पर्वतों से आकीर्ण, परन्तु कोई दृण किले उस ओर नही थे। जहाँ दलीपनगर की सीमा खत्म हुई थी, वहाँ से कालपी का सूवा शुरू हो गया था। उस ओर चले जाने पर दलीपनगर के दीर्घ क्षेत्र से सम्बन्ध टूट जाता और कोई पक्का आश्रय मिलता नहीं। ऐसी दशा में उसने पूर्व की ओर पहूज और बेतवा नदियों के आस-पास ठहरकर अपनी टूटी हुई शक्ति को फिर से जोड़ने का निश्चय किया। उसके सङ्गी भी राजी हो गये, परन्तु साथ बहुत थोड़ों ने दिया। गिरती हुई अवस्था में भी आशा के बल पर साथी बलिदान करने के लिये अनुप्राणित रहते हैं, परन्तु निराशा की दशा में बलिदान लगभग असम्भव हो जाता है। इसलिये कुञ्जरसिंह के साथियों की संख्या क्रमशः कम होती चली गई।

सिंहगढ़ से निकलने के उपरांत दो-एक दिन भटकने में लग गये। शीघ्रता किसी निश्चय पर पहुंच जाने का अभ्यास न होने के कारण कभी उत्तर और कभी पूर्व की ओर भटकते गये। पहूज के निकट की उर्वरा शस्य-श्यामला भूमि शीघ्र त्यागकर वन में पहुचे। वहाँ भी एक आध दिन ही रह पाये। अन्त में २५-३० कोस की उद्देश्य-हीन यात्रा समाप्त करके इन लोगों ने बेतवा-किनारे के घोर वन और सुरक्षित गढ़ों की ओर दृष्टि डाली।

कुछ ही समय पहले प्रसिद्ध चम्पतराय ने बेतवा के जङ्गल भरकों और इन छोटे-छोटे किलों के आश्रय से मुगल-सम्राट औररंगजेब की

नाकों दम करके बुन्देलखण्ड की स्वाधीनता का अनुष्ठान किया था। अभी लोगो को वे दिन याद थे। कुञ्जरसिंह की धारणा और विचार पर भी उस स्मृति का प्रभाव पडा। उसने विराटा और रामनगर के पड़ोस में अपनी योजना सफल करने की ठानी। इन गढ़ों के पड़ोस में वह पहुंच चुका था।

झाँसी से पूर्वोत्तर-कोण में विराटा की गढ़ी, जिसका अवशेष अव एक मन्दिर-मात्र है पच्चीस मील की दूरी पर है। रामनगर और विराटा में केवल कोस-भर का अन्तर है। दोनों वेतवा के किनारे भयंकर वन में छिपे से अर्द्ध-भग्नावस्था में अब भी पडे है।

विराटा से दो कोस दक्षिण-पश्चिम की ओर मुसावली एक छोटा सा उजड़ा गांव है। उन दिनों भी वह वड़ी जगह न थी। परन्तु छिपाव और रक्षा का साधन वहाँ सदा रहा है। नालों और काँटेदार पेड़ो की विस्तृत भरमार है। मुसावली की पहाड़ी इस जङ्गल की ओट का काम करती है।

उन दिनों विराटा मे दाँगी राजा राज्य करता था और रामनगर मे एक बुन्देला सरदार रहता था। ये दोनों कभी पूर्ण स्वतन्त्र नहीं रहे, परन्तु इनकी अधीनता भी नाम की थी। कभी कालपी को कर देते थे, कभी ओरछा को और कभी किसी को भी नहीं।

औरङ्गजेब के काल तक ये लोंग भांडेर या कालपी के मुगल-सूबेदार की मार्फत मुगल सम्राटों को कर चुकाते रहे। औरङ्गजेब की दक्षिण चढ़ाइयो के समय शासन शिथिल हो गया। उसके मरने के उपरांत जो राजनीतिक भूकम्प आया उसमें ये लोग करीब-करीब स्वाधीन हो गये। स्वाधीनता–यज्ञ के बड़े यजमानों का ये लोग साथ देते रहते थे, परन्तु स्वयं खुल्लम-खुल्ला किसी शक्ति के कोप को उत्तेजित नहीं करते थे। इसीलिये इतने दिनों बचे रहे।

चम्पतराय ने ऐसे लोगों का खूब उपयोग किया था। कुञ्जरसिंह ने भी इनके उपयोग को ही अपना एक मात्र आश्रय निर्धारित किया।

परन्तु एकाएक इनमें से किसी के पास सहायता माँगने के लिए पहुंचना उसने उचित नही समझा।

उसने सोचा, मुसावली में पहुंचकर स्थिति का निरीक्षण और विराटा तथा रामनगर के सरदारों से मिलकर अपने वल की पुनः स्थापना करूँगा। यदि सम्भव न हुआ, तो विराटा-वन के किसीं एकान्त स्थान में भगवती दुर्गा का स्मरण करते-करते जीवन समाप्त कर दूँगा और अलीमर्दान इस स्थान पर किसी मतलव से चढ़ाई करे, तो उसके विरोध में शरीर त्याग करना राज्य-प्राप्ति से भी वढ़कर होगा। उसे मालूम था कि कुमुद कही विराटा के आस-पास ही है।

परन्तु इस योजना मे कुञ्जरसिंह के बचे-खुचे सरदार ऊपर से ही सहमत हुये, भीतर से उन्हें इस योजना की अन्तिम सफलता पर कोई विश्वास न था। दो-तीन दिन वाद यह लोग भी अपने घरों को चले गये और समय आने पर सहायता करने का वचन दे गये।

अलीमर्दान को इस तरह की कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा। पालर वाले दस्ते को उसने झाँसी के उत्तर में १०-१५ कोस के फासले पर पहूज के किनारो पर पा लिया। वहां से वह भांडेर चला गया। कालेखाँ भी उसे भांडेर में आकर मिल गया। वही से अलीमर्दान आगे की कतर-व्योंत का हिसाव लगाने लगा।

[४२ [

कुञ्जरसिंह मुसावली मे एक अहीर के घर ठहर गया था। घर से लगा हुआ कांटो की विरवाई से घिरा एक वेड़ा था उसमें कुञ्जरसिंह घोड़ा वांधकर स्वयं घर के एक कोने मे अकेला जा वसा।

विरवाई से लगे ३-४ महुए के पेड़ थे। महुओ के पीछे से एक चक्करदार नाला निकला था। दूसरी ओर वह पहाड़ी थी, जो मुसावली पाठा कहलाती है। एक ओर वीहड़ जङ्गल। कुञ्जरसिंह महुओं के नीचे गया। अहीर की कुछ भैंसें नाले के पास चर रही थीं, कुछ महुए के

नीचे ऊंघ रही थीं। एक लड़का कुछ धूप कुछ छाया में सोता हुआ जानवरों की देख-भाल कर रहा था।

घास आधी हरी, आधी सूखी थी। करधई के पत्ते पीले पड-पड़कर गिरने लगे थे। नाले का पानी अभी नही सूखा था। कुछ भैंसें उसमें लोट लोटकर शब्द कर रही थीं। चिड़ियाँ इधर से उधर उड़कर शोरकर रही थी। सूर्य की किरणों में कुछ तेजी और हवा में थोड़ी उष्णता आ गई थी। कुञ्जरसिंह अपने घोड़े के सामने घास डालकर महुए के नीचे आया। जो भैंसें दूर पर बैठी ऊंघ रही थी, यकायक उठ खड़ी हुईं। चरवाहे की आँख खुल गई। पास में कुञ्जरसिंह को देखकर लड़के ने उठाई हुई लाठी को नीचा कर लिया। बोला—'दाउजू, सीताराम।' प्रमाण का उत्तर देकर कुञ्जरसिंह पेड़ की जड़ से टिककर बैठ गया। लड़का विना किसी संकोच के एकटक कुञ्जरसिंह की ओर देखने लगा। उस चरवाहे के शरीर पर फटी हुई अंगरखी थी। घुटन्ना चढ़ाये मैला अंगोछा पहने था, आँखों में एक निर्मल, निर्भय दृढ़ता थी।

कुछ देर टकटकी लगाने के बाद बोला—दाउजू, अबै दर्शन नई भये का ?'

लड़के की सहज, सरल निर्भयता और प्रश्न की विचित्रता से जरा आकृष्ट होकर कुञ्जरसिंह ने प्रश्न किया—'किसके दर्शन भाई ?'

'एल्लो ! हमई से टिटकरी करन आये ! दर्शन खों नई आये, इतै तो कायके लानै आये इत्ती दूर से ? संसार भर के राजाराव नित्त आउत रहत।'

लड़के के वेधड़क सम्बोधन से कुञ्जरसिंह जरा चकराया, क्योंकि महल और किले के वातावरण मे इस तरह की स्वच्छता उससे नही देखी थी। उसकी समझ मे प्रश्न नही आया था, परन्तु उस प्रश्न ने किसी गुप्त कौतूहल को जागृत किया। कुञ्जरसिह उपेक्षा के भाव को छोड़कर बोला—'हम कितनी दूर से आये है, तुम्हें मालूम है ?'

'पालर सें।'

'अच्छा, वतलाओ, हम किसके दर्शन के लिये आये है ?'

'जी के दर्शन खों हमाओ दद्दा कभऊँ-कभऊँ जात। कओ दाउजू, हमने जान लई कै नई? हमखों काऊ ने नई वताई, पै हम तो जान गये।'

कुञ्जरसिंह चौंक पड़ा। पालर से आना तो उसने ही चरवाहे के पिता को बतलाया था, परन्तु आने का प्रयोजन उसने कुछ और ही जाहिर किया था। कुञ्जरसिंह को अनुमान करने में विलम्ब नहीं हुआ कि किसके दर्शन की ओर लड़के का भोला संकेत था। उससे कहा—'तुम्हारे साथ चलेंगे, कब जाओगे ?'

लड़के ने उत्तर दिया—'जब चाये, तब। कौन दूर हैं इतै सें दो कोस तो हेईं। हमाई एक भैंस के दूध नई निकरत, सो बिनती के लानें कालई—परों जैहें। तुम जो कछू माँगो सो तुमें सोऊ मिल जैहै।'

कुञ्जरसिंह के हृदय में गुदगुदी पैदा हुई। उसने कल्पना की कि पूजा और वरदान का स्थान एक कोस पर विराटा ही है। पूरा पता लगाने के प्रयोजन से पूछा—'रास्ता क्या बहुत बीहड़ में होकर है ? यहाँ से तो मन्दिर दिखाई नही देता।'

'पाठ पै होकें सब दिखात है।' लड़का बोला—'विराटा की गढ़ी दिखात और देवी को मन्दिर दिखात। ठीक नदी के बीच मे विराजमान है। ए दाऊजू, हमने जब पैलउँपैल देखो तब आँखें मिच गई हती। उनके नेत्रन में से झार सी निकर रई हती।'

कुञ्जरसिंह को विश्वास हो गया कि यह वर्णन कुमुद का ही है। तो भी और अधिक जानकारी पाने की गरज से कहा—'कब से आई है यह देवी ?'

'सदा सें।' लड़के ने चकित होकर जवाब दिया—'उनकी कछू आद अन्त थोरक सौ है।'

इसके बाद उस सीधे लड़के ने देवी की करामतों की गिनती का ताँता बाँध दिया।

वह कहता गया। कुञ्जरसिंह कुछ और सोचने लगा—सदा से ही यहाँ पर हैं? यह असम्भव है। यदि वही है, तो उनको आये कुछ ही दिन हुये होंगे। परन्तु यदि नही होती, तो लड़का सदा से यही रहने की बात न कहता। शायद कोई और हो। शायद यह और ही कोई अवतार हो। जो कुछ भी हो। एक बार दर्शन अवश्य करूँगा।

कुञ्जरसिंह ने लड़के से उक्त देवी के विषय में और भी अनेक प्रश्न किये, परन्तु उसे कोई अभीष्ट उत्तर न मिला।

निदान उसने लड़के के पिता से पूछ-ताछ करने का निश्चय किया। चिड़ियों की विभिन्न प्रकार की चहचहाट और अपनी दुर्दशाओं की विश्रृङ्खलगणना मे कुञ्जरसिंह ने संध्या तक का समय किसी तरह व्यतीत किया। सूर्यास्त के पहले दूर के खेत पर से गृह-स्वामी जब आया, तब कुञ्जरसिंह ने अवसर प्राप्त होते ही उससे कहा—'देवी के दर्शन करके मैं यहां से दो-चार दिन में चला जाऊँगा।'

कृषक बोला—'सो काए? ऐसी का जल्दी परी दाऊजू? जो कछू लटौ-दूबरौ कनूका हमाये गाँठ में है, सो नजर है। हमसे ऐसी का बिगरी कि अबई जावौ हो जैं है?'

कृषक के इस सरल और सच्चे आतिथ्य—हठ से कुञ्जरसिंह का जी भर आया। घर पर चढ़ी हुई कदुये की बेलों को देखते हुये कुञ्जरसिंह ने कहा—'माते हम तो सिपाही हैं, न जाने अभी कहाँ-कहाँ भटकना पड़े। देवी के दर्शन करके कार्य-सिद्ध के पीछे यदि बचे रहे तो फिर तुमसे आकर मिलेगे।'

'जैसी मर्जी।' अहीर ने कुछ उदास होकर कहा। एक क्षण के बाद बोला—'मै परों दर्शन करबे जैहो, तबई चलबो होए। आजकल बड़ी

हूला-चालौ मचौ है। कछू दिना इतै बनौ रैवो हुईये, तो मड़ैया बच रै।'

किसान के इस प्रकट स्वार्थ पर कुञ्जरसिंह क्षुब्ध नहीं हुआ। उसने विश्वास दिलाते हुये कहा—'अच्छा।'

[४३]

छोटी रानी की वाग्मिता बड़ी रानी को अधिक आकृष्ट करने लगी और दोनों एक दूसरे से बहुधा मिलने-जुलने लगीं। थोड़े ही दिनों में दोनों के बीच का बहुत दिनों से चला आने वाला अन्तर कम हो गया। राजा को इस मेल-जोल पर सन्तोष हुआ, परन्तु जनार्दन को इसमें श्रद्धा के योग्य कुछ न दिखाई दिया।

एक दिन बहुत लगन के साथ छोटी रानी बड़ी रानी से बातें कर रही थीं। बातचीत के सिलसिले मे छोटी रानी ने कहा—'जब तक हम लोग इस बन्दीगृह में बैठी-बैठी दूसरों का मुँह ताकती रहेंगी, तब तक कोई सरदार मैदान में नही आवेगा। बाहर निकलते ही बहुत से सरदार साथ हो जायेंगे।'

बड़ी रानी थोड़ी देर पहले कही हुई एक बात को दुहराते हुये बोलीं-'इसमे कोई सन्देह नही कि इस राज्य के असली अधिकारी कैद मे है और जिसे कैद में होना चाहिये, वह राज्यदण्ड हाथ मे लिये है।'

'परन्तु उसके छीनने की शक्ति अब भी हमारे हाथ में।' छोटी रानी ने उत्तर दिया।

बड़ी रानी ने पूछा-'मुझे केवल एक बात का भय है कि यदि तुम्हारी योजना असफल हुई, तो रक्षा का यह एक स्थान भी हाथ से निकल जायेगा।'

रक्षा का! इस वन्दीगृह को रक्षा का स्थान बतलाती हैं। मेरे लिये तो सबसे बड़ी रक्षा का साधन घोड़ा, तलवार और रण-क्षेत्र है।'

'मैं भी मानती हूं और यदि काफी तादाद में सरदार लोग सहायता के लिये आ गये, तो सब काम बन जायगा। परन्तु यदि ऐसा न हुआ तो प्रलय की आशंका है।'

'जरा भी नही। दृढ़ निश्चय के साथ जो काम किया जाता है, वह कभी असफल नही होता, थोड़ी देर के लिये मान लीजिये, असफल भी हो गये, तो इस अवस्था की अपेक्षा स्वतन्त्र विचरण फिर भी बहुत अच्छा होगा।'

'तो यहाँ लौटकर नहीं आवेंगी, यह निश्चय है।'

'असफलता का कोई कारण नहीं मालूम होता। असफलता ही हुई, तो इस जीवन से मरण अच्छा। आप किसी बात से डरती हैं?'

बड़ी रानी ने निश्चय-पूर्ण स्वर में कहा-'मुझे कोई डर नही, मैं डरती किसी से भी नही। परन्तु यह कहती हूं कि जो कुछ करो, सोच-समझकर।'

छोटी रानी अधिक निश्चय-पूर्ण स्वर में बोलीं—'बिलकुल सोच—समझ लिया है। रामदयाल अपने पक्ष के सरदारों से मिल चुका है। वे लोग नये राजा से असन्तुष्ट है, परन्तु जब तक हम लोग महलों में बन्द हैं, तब तक वे लोग अपनी निजी प्रेरणा से कुछ नहीं कर सकते। बाहर निकल पड़ते ही ठठ के ठठ सरदार आ पहुंचेंगे।'

'यहाँ से चलकर ठहरोगी कहाँ?' बड़ी रानी ने जरा संकोच के साथ पूछा।

'कहीं भी, दलीपनगर के बाहर कहीं भी। सिंह की गुफ़ा में नदी की तली में, पहाड़ के शिखर पर, कही भी।' छोटी रानी ने उत्तेजित होकर उत्तर दिया-'हमारे स्वामिधर्मी सरदार कही भी हमारी सहायता के लिये आ सकते है।

बड़ी रानी ने प्रतिवाद करते हुये कुछ रुखाई के साथ कहा—'मैं इस तरह की यात्रा के प्रस्ताव से सहमत नही हो सकती। व्यर्थ मारे-मारे फिरने से यही अच्छे।'

छोटी रानी तुरन्त रुख बदलकर बोली—'रामनगर के राव के यहाँ ठिकाना रहेगा। वहाँ से अलमर्दान की भी सहायता सहज हो जायगी। सिंहगढ़ पर चढ़ाई उसी ओर से अच्छी तरह हो सकती है।'

छोटी रानी के ढले हुये स्वर ने बड़ी रानी को नरम कर दिया। कहा—'रामनगर के राव के पास बड़ा बल तो नहीं, परंतु स्थान-रक्षा के विचार से अच्छा है। अलीमर्दान की सहायता के बिना काम न चलेगा?'

'वह हमारा राखी-बन्द भाई है।' छोटी रानी ने उत्तर दिया—उसकी ओर से जी में कोई खटका मत कीजिये। किसी भी मन्दिर के विध्वन्स करने की कोई इच्छा उसके मन में नहीं है।'

इसी समय एक दासी ने बड़ी रानी को खबर दी कि दीवान जनार्दन आशीर्वाद लेने के लिये आना चाहते है।'

बड़ी रानी उसका नाम सुनते ही चौक पड़ी! छोटी रानी से कहा—'इस समय इसका यहाँ आना बुरा हुआ। न मालूम किस टोह को लगाकर आया है।'

छोटी ने आश्चर्य प्रकट किया—'बुरा हुआ! क्या वह इस कैद-खाने का दरोगा है, जो आप भयभीत सी मालूम पड़ती है? क्या बुरा हुआ?'

बड़ी को चोट सी लगी। उन्होंने दासी से पूछा—'और कुछ नहीं कहते थे?'

छोटी रानी की ओर देखकर दासी ने जवाब दिया—'और कहते थे, महाराज!'

छोटी रानी ने कडाई के साथ पूछा—'क्यों डरती है? बोल, क्या कहते थे?'

उसने उत्तर दिया—'केवल यह पूछते थे कि छोटी महारानी भी यहाँ हैं या नही?'

'तूने क्या कहा?' बड़ी ने पूछा।

छोटी रानी विना उत्तर की प्रतीक्षा किये हुये वोली—'इसने कह दिया होगा कि है। मैं कोई वाघनी या तेंदुनी तो हूं नहीं, जो इसी समय दीवान जी को फाड़ डालूँगी?'

दासी ने उत्तर दिया—'नहीं महाराज मैने कहा था कि नहीं है।'

छोटी रानी ने कड़ककर प्रश्न किया—'क्यों? तूने क्यों यह झूठ वोला?'

दासी काँपने लगी।

बड़ी रानी ने शाँति स्थापित करने के प्रयोजन से कहा—'यह वेचारी साधारण स्त्री है मुंह से निकल गया होगा। कोई बुराई मत मानो। वह मुझे चाहती है और मेरा इस पर स्नेह है। यहाँ की और स्त्रियाँ तो दुष्ट है।'

छोटी रानी कुछ नही वोली। कुछ सोचती रही बड़ी रानी ने कहा—'तुम जरा छिपकर देखो न, जनार्दन क्या कहता है, किस प्रयोजन से आया है?'

'व्यर्थ है।' छोटी रानी ने उत्तर दिया—'वह इस वात को जानता है कि आप मेरे ऊपर कृपा करती है, इसलिये मेरे छिपकर सुनने लायक़ कोई वात न कहेगा।'

'तो भी क्या हर्ज है।' वड़ी रानी ने कहा—'सुन लो। तमाशा ही सही।'

छोटी रानी वडी को प्रसन्न करने की नियत से वोली—'छिपने की क्या जरूरत है। मै एक कोने में वैठ जाती हूं। ड्योढ़ी के बाहर से वह वातचीत करेगा। मै अपने को प्रकट न होने दूंगी। आप उसे बुलवा लें।'

वड़ी रानी ने जनार्दन को लिवा लाने के लिये संकेत किया और छोटी रानी से कहा—'यह उन स्त्रियो मे से है, जो मेरे लिये अपना सिर कटाने को तैयार रहती है।' इस पर छोटी रानी केवल मुस्कराई। कोई मंतव्य प्रकट नही किया।

थोड़ी देर में जनार्दन आ गया। आशीर्वाद और कुशल-मंगल पूछने के पश्चात् उस दासी द्वारा जनार्दन और वड़ी रानी का वार्तालाप होने लगा।

जनार्दन ने पूछा—'छोटी महारानी न मालूम मुझसे क्यों रुष्ट हैं?' महाराज इस बात को जानते है कि मैं उनका कोई अहित-चिंतन नही करता।'

बड़ी रानी ने जवाब दिलवाया—'इस बात से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। आप इस विषय पर उन्ही से कहें सुनें।'

'मैं आपकी सहायता चाहता हूं। उन्हें इस राज्य में जो स्थान पसन्द हो, उसमें आनन्द-पूर्वक रहें, जिससे इस लांछन से बचूं कि दिलीप-नगर में मैंने इन्हें बरबस रोक रक्खा है।'

'इसे तो वह अवश्य पसन्द करेंगी।' और जबाब देने वाली ने रानी की ओर से कहा—'बड़ी महारानी भी कुछ दिनों के लिये बाहर यात्रा कर आवेंगी।'

जनार्दन को यह प्रस्ताव पसन्द न आया। बोला—'आजकल अवस्था जरा खराब हो रही है, और वैसे भी यह स्थान तो आपको बहुत प्यारा रहा है। आपने कभी शिकायत नही की कि—'

बीच में टोक दिया गया। बड़ी रानी की तरफ से कहा गया—'जरूर जाऊँगी। कैदी नहीं है, जो उन्हें तो जाने दिया जाय और इन्हें रोक रक्खा जाय।'

जनार्दन बोला—'मैं महाराज से अनुमति के लिये कहूंगा। परन्तु जिस काम से मैं आया था,—वह यदि यहाँ नही हो सकता, तो छोटी रानी के ही पास जाकर अपने अपराधो की क्षमा मागूंगा।'

'वहाँ आने की कोई आवश्यकता नही।' छोटी रानी ने दासी का आश्रय लिये बिना ही पर्दे के भीतर से कहा—'हम दोनों अत्याचार पीड़ित स्त्रियाँ एक स्थान मे शान्ति के साथ रहना चाहती है, वह भी तुम्हें सहन नहीं। हमारा राज्य-पाट ले लिया और दोनों को एक दूसरे से अलग करके क्या किसी एकांत गढ़ी में हमारा सिर कटवाओगे?'

जनार्दन चौंका नही। थोड़ी देर तक स्तब्ध, निश्चल बना रहा। कुछ ही क्षण पश्चात् बोला—मैने तो ऐसी कोई बात नही कही, जिससे

आपके निष्कर्ष की पुष्टि होती हो। आपसे क्षमा प्रार्थना करने की ही बात कह रहा था। वह न रुची, जाता हूं।'

यदि ठहरता, तो उसे और प्रलाप भी सुनना पड़ता।

छोटी रानी ने सन्नाटे में आई हुई बड़ी रानी से कहा—'देख लो इसकी चाल ! हम लोगो को अलग करना चाहता है और अलग करके हमारा नाश ! हम लोग अलग नही हो सकती।'

बडी रानी ने जोर के साथ कहा—'कभी नहीं। मैं तुम्हें कदापि न छोड़ूंगी।'

जनार्दन दोनों रानियो को एक दूसरे से अलहदा करना चाहता था। इसी प्रयोजन से वहाँ गया था, परन्तु अपनी साधारण सावधानी से काम न करने के कारण और छोटी रानी के ताड़ लेने से उसका मनोरथ निष्फल हो गया। छोटी रानी के कुवाक्य का उसे बहुत थोड़ी देर ध्यान रहा होगा। उसके मन मे बहुत ग्लानि थी कि चतुराई के साथ बातचीत नही की।

राजा के पास गया। चतुर मन्त्री के लिये समय से बढ़कर मूल्यावान और कोई चीज़ नही हो सकती थी। इसलिये उसने राजा से तुरन्त भेंट की। दोनों रानियो कि परस्पर बढ़ती हुई घनिष्टता मे किसी भयंकर विपद की विभीषिका, किसी विकट षड़यन्त्र की जनन–शक्ति की आशंका का चित्र जनार्दन ने खींचा।

राजा ने जरा खीझकर कहा—'तब क्या करूँ ? जब तक कोई बड़ा अपराध सिद्ध न हो जाय, दण्ड दिया नही जा सकता।'

राजा की खिझलाहट से जरा भी न घबराकर जनार्दन बोला—'न तो किसी अपराध के सिद्ध करने की जरूरत है और न किसी दण्ड के विधान की। इन्हें तो अन्नदाता दो अलग-अलग स्थानों मे सम्मानपूर्वक रख दे।'

'इससे वैमनस्य और बढ़ेगा। जो सरदार अभी पीछे–पीछे और शायद दबी जबान यह कहते है कि हम लोगों ने रानियों को महल में

कैद कर रक्खा है, वे भड़ककर खुल्लम—खुल्ला बुराई करेंगे। रानियों को यहाँ से हटाकर मैं अपने लिये व्यर्थ का विरोध नहीं खड़ा करना चाहता था।'

'अन्नदाता, वे यहाँ बैठी-बैठी सम्मिलित शक्ति से राज्य को उलटने-पलटने की तरकीबें सोचा करती है, सरदारों को अराजकता के लिये उभाड़ा करती हैं। एक दूसरे से दूर रहने पर दोनों निर्बल हो जायेंगी।'

'मैं इस बात को नही मानता।'

'जैसी महाराज की मर्जी हो, परन्तु छोटी रानी की हरकतों के मारे मेरी तो नाक में दम आ गया है। यह तो अन्नदाता को मालूम ही है कि मेरी सिर काटने या कटा लेने का रानी ने प्रण ठान रक्खा है—'

राजा ने हँसकर जनार्दन की बात काट दी। कहा—'डरो मत। तुम्हारी उम्र अभी वहुत है। चाहे ज्योतिषियों से पूछ लेना।' फिर एक क्षण बाद गम्भीर होकर राजा वोला—'शर्माजी, तुम्हें तलवार चलाना सीखना चाहिये था। राजनीति के गणित लगाते लगाते बहुत से व्यर्थ भय के भूत तुम्हे सताने लगे हैं। स्त्रियाँ वात काटती है, सिर नहीं काटती। आपका काम-काज देखो राज्य की बहुत सी समस्यायें तुम्हें उलझाने के लिये यों ही वहुत काफी है। इधर का ख्याल जरा कम कर दो। कुछ मेरा भी भरोसा करो।'

विनीत भाव से दीवान ने कहा—'महाराज का भरोसा न होता तो एक घड़ी भी बचना करीब—करीव असम्भव था, परन्तु—'

'किन्तु-परन्तु कुछ नही।' राजा ने कहा। फिर हँसकर बोला—'तुम्हारा सिर सही सलामत है घबराओ मत। मौज करो।'

जनार्दन चला आया। अकेले में एक आह भरकर मन में बोला—'अब तो मेरा सिर राजा को इतना सस्ता मालूम पड़ना ही चाहिये।'

[४५]

अलीमर्दान अपनी फौज लिये भाँडेर मे पड़ा था। दलीपनगर के दमन की प्रवल आकांक्षा उसके मन में थी। परन्तु दिल्ली की अस्थिर

अवस्था और इलाहाबाद के सैयद भाइयों की प्रबल हल चल उसे उग्र रूप धारण करने से वर्जित कर रही थी। कालेखाँ पालर की पुजारिन की बीच-बीच मे काफी याद दिला देता था। उस विषय के लिये भी अलीमर्दान के हृदय में एक बड़ा-सा लालसा-युक्त स्थान था। परन्तु इस स्थान में भी उसकी इच्छाओं पर एक बड़ा बन्धन कसा हुआ था। वह यह था कि अलीमर्दान और उस-सरीखे अन्य मनचले सूबेदार, जो सिर से दिल्ली का बोझ हल्का होते ही, स्वतंत्र हो जाने के मनोहर स्वप्नों में डूबे रहते थे, अपने सूबे की और पड़ोस की हिन्दू जनता पर साधनों और सैनिकों के लिये बहुत निर्भर रहते थे, इसलिये यथासम्भव उसे व्यर्थ नही चिढ़ाते-छेड़ते थे। दिल्ली में कमजोर नरेश और प्रान्तों में महत्वाकांक्षी सूबेदार होते थे, उस समय यह बात बहुत स्पष्ट रूप में दिखलाई पड़ती थी।

धीरे-धीरे भाँडेर में भी यह खबर पहुंच गई कि विराटा में एक देहधारिणी देवी है, जो अपने वरदानों से निस्सहायों को समर्थ कर देती है। यदि अलीमर्दान चढ़ाई के साथ अनुसंधान करता, तो पालर और विराटा की देवी की समानता उसे कदाचित् शीघ्र मालूम हो जाती। उसने इस विषय को किसी शीघ्र आने वाले अनुकूल समय की आशा से प्रेरित होकर स्थगित कर दिया और केवल ऐसी साधारण ढूंढ़–खोज की, जो आसानी से दूसरों पर प्रकट न हो पाये, जारी रक्खा। इस साधारण ढूंढ़–खोज से शीघ्र पता इसलिये और न लगा कि लोग सहज और स्पष्ट का शीघ्र विश्वास नहीं करते, दूर के कारणों का आविष्कार करने मे निकट की वस्तु स्थिति दृष्टि से लोप होने लगती है। विराटा में पालर की सुन्दरी भाँडेर के इतने नजदीक ! असम्भव !! अनुसन्धान-कर्ता उस देवी की उपस्थिति को भाँडेर के इतने पास भान नहीं कर सकते थे। इसके अतिरिक्त अलीमर्दान की इस विषय की ओर कोई प्रबल रुचि प्रकट न होती देखकर उन लोगों ने ढूंढ़-खोज का सिलसिला ढीला रक्खा।

भाँडेर के आस-पास के राजा और राव अलीमर्दान की भाँडेर में उपस्थिति देखकर जरा चौकन्ने थे, किसी भी प्रवल व्यक्ति का अपने पड़ोस में जरा देर तक टिका रहना देखकर उन्हें मन-ही-मन अखरता था। उनका अपना स्वच्छन्द वन-पर्वत किसी अस्पष्ट आतंक के विरुद्ध-सा दिखाई पड़ता था और वे उससे शीघ्र छुटकारा पाने के लिये व्याकुल से थे। उदाहरणों की उनके सामने कमी न थी।

रामनगर का राव पतराखन इस बीच में कई बार भाडेर गया—आया। वह यह बात जानना चाहता था कि अलीमर्दान क्यों यहाँ पड़ा हुआ है और कब तक इस तरह पड़ा रहेगा। साथ ही वह अलीमर्दान को मौका मिलने पर यह विश्वास दिलाना चाहता था कि भाँडेर में और अधिक ठहरना बेकार है। एक दिन अलीमर्दान से अकेले में बात-चीत हुई। अलीमर्दान ने पूछा—'सुना है रावसाहब, आपके पड़ोस में देवी का कोई अवतार हुआ है।'

'जी हाँ। कोई नई बात नहीं है, हमारे धर्म में ऐसा होता रहता है।'

'कब हुआ था ?'

'बरसो हो गई हैं। हमेशा से उसकी बावत सुनता आया हूं।'

'हाँ साहब, अपने-अपने मजहब की बात है। मुझे उसमें दखल देने की कोई जरूरत नहीं है। वैसे ही पूछा है।'

परन्तु विराटा लौट आने के कई रोज पीछे भी पतराखन ने सुना कि अलीमर्दान भाँडेर मे ही है।

[४६]

सन्ध्या हो चुकी थी। रामनगर की गढ़ी के फाटक बन्द होने में अधिक विलम्ब न था। पहरे वालो ने फाटकों को अधमुंदा रख छोड़ा था। उनका कोई साथी गाँव में तम्बाकू लेने गया था। इतने मे गढ़ी के नीचे, जो वेतवा-किनारे एक ऊँची टौरिया पर बनी थी, दस-बारह घुड़-सवार आकर रुक गये। और सवार तो वहीं रहे, एक उनमें से फाटक

पर आया। पहरेवाले ने फाटक को जरा और खोलकर पूछा—'आप कौन हैं ?'

'दलीपनगर से आ रहा हूं। महारानी और कुछ सरदार नीचे खड़े हैं, वहुत शीघ्र और आवश्यक काम से मिलना है।' आगन्तुक ने उत्तर दिया।

पहरेवाले ने नम्रता-पूर्वक कहा—'आपका नाम ?'

'रावसाहव को मेरा नाम रामदयाल वतला देना।' उत्तर मिला।

पहरेवाला भीतर गया। राव पतराखन आ गया। अन्धेरा था, नहीं तो रामदयाल ने देख लिया होता कि पतराखन के चेहरे पर इस आगमन के कारण प्रसन्नता के कोई चिन्ह न थे। रामदयाल से प्रयास-पूर्वक मीठे स्वर में वोला - 'महारानी को ऐसे समय यहाँ आने की क्या आवश्यकता पड़ी ?'

रामदयाल ने कहा—'कालपी के नवाव अलीमर्दान को कर्त्तव्य-पथ पर सजग करने के लिये आई है। दलीपनगर की दूरी से यह काम नहीं वन सकता था। इस समय नवाव साहव भाँडेर में है। यहाँ से सव काम ठीक हो जायगा।'

पतराखन ने पूछा – 'महारानी कहाँ है ?'

रामदयाल ने इशारे से वतला दिया।

कुछ सोचता विचारता पतराखन गढ़ी से उतरा और नीचे से दलीपनगर के सवारो को गढ़ी पर लिवा लाया। कुशल-मङ्गल के वाद जव सव लोगों को डेरा दे दिया तव रामदयाल से वातचीत हुई।

पतराखन ने कहा—'अव की वार वड़ी रानी ने भी छोटी रानी का साथ दे दिया।'

रामदयाल ने जवाव दिया—'साथ तो वह सदा से हैं, परन्तु कुछ लोगों ने वीच में मनमुटाव खड़ा कर दिया था।'

'परन्तु वड़ी रानी के साथ हो जाने पर भी फौज-भीड़ तो कुछ भी नहीं दिखाई पड़ती। इतने आदमियों से देवीसिंह का क्या विगड़ेगा ?'

'ये सब सरदार हैं। इनके साथ की सेना पीछे है और फिर नवाब साहब की मदद होगी। आप भी सहायता करेंगे ?'

'सो तो है ही। इसमें सन्देह ही क्या है। यदि नवाब साहब ने सहायता कर दी, तो बहुत काम बनने की आशा है। मैं भी जो कुछ सहायता बनेगी, करूँगा ही। विराटा का दांगी भी अपने भाई बन्दों को लायेगा। आजकल उसे जरा घमण्ड हो गया है।'

'किस बात का ?'

'अपनी संख्या का उसके गाँव में देवी का अवतार हुआ है। उसका भी उसे बहुत भरोसा है।'

'देवी का अवतार ? हाँ, हो सकता है। होता ही रहता है। उसका पालर में हुआ था, परन्तु—'

'परन्तु क्या ? सुनते हैं वही यहाँ चली आई है। एक दिन अली-मर्दान ने मुझसे पूछा था। लोग कहते थे, उनके कारण ही देवी को पालर से भागना पड़ा। यह बात गलत है। नवाब कहता था कि अवतार सब कौमों में होते हैं और उसे किसी धर्म में दखल देने की जरूरत नहीं है और मैं इन विषयों पर बहुत कम बहस करता हूं।'

'नवाब साहब कहते थे !' रामदयाल ने प्रकट होते हुये आश्चर्य को रोककर कहा—'जरूर कहते होंगे। वह तो बड़े उदार पुरुष है। उन्होंने पालर में जाकर देवी की पूजा की थी। मूर्तियों को छुआ तक नहीं, तोडने की तो बात क्या।'

किसी कल्पना से विकल पतराखन बोला—'हमारी गढ़ी की बहुत दिनों से मरम्मत नही हुई है। दीवारें गोलाबारी नही सह सकतीं। फाटक भी नये चढ़वाने है, गोला-बारूद की भी कमी है। इस गढ़ी में होकर युद्ध करना बिलकुल व्यर्थ होगा। वैसे मै और मेरे सिपाही सेवा के लिये तैयार है।'

रामदयाल समझ गया। बोला—'यहाँ से युद्ध कदापि न होगा। आप गढ़ी की मरम्मत चाहे कल करालें, चाहे दस वर्ष बाद। यह स्थान छिपा हुआ है और सुरक्षित है इसलिये महारानी को पसन्द आया—'

पतराखन ने रोककर कहा—'सो तो उनका घर है, चम्पतराय कई बार ठहरे है, परन्तु ठहरे वह थोड़-थोड़े दिन ही है। खैर उसकी कोई बात नही है। विराटा की गढ़ी देखी है?'

'नहीं तो।'

'बहुत सुरक्षित है दाँगी को उसी का तो बड़ा गर्व है।'

'मैं कल ही जाकर देखूँगा।'

'परन्तु मेरी ओर से वहाँ कुछ कत कहना।'

'नही, मैं तो किला देखने और देवी के दर्शनों को जाऊँगा, किसी से वहाँ बातचीत करने का क्या काम? इसके पश्चात् परसों नवाब साहब के पास जाऊँगा। देवीसिंह से जो लड़ाई होगी, उसमें महारानी आपसे बहुत आशा करती है और आपको पुरस्कार भी बहुत देंगी।'

पतराखन ने उत्तर दिया—'वैसे तो मैं किसी का दबा हुआ नहीं हूं। दलीपनगर के राजा से कोई सम्बन्ध नही। कालपी के नवाब और दिल्ली के बादशाह से हमारा ताल्लुक है इसलिये जिस पक्ष में नवाब होंगे, उसी का समर्थन मैं भी करूँगा।'

पतराखन को रामदयाल रानियो के डेरे पर ले गया। दोनों आड़-ओट से वार्तालाप करने लगीं।

छोटी रानी ने कहा—'बड़ी महारानी ने भी अबकी बार हम लोगों का साथ दिया है। चोर-डाकू एक अधर्मी ब्राह्मण की सहायता से हमारे पुरखो के सिंहासन पर जा बैठा है। कुछ दिनो तो वह बड़ी महारानी और क्षत्रिय सरदारों को भुलावे में डाले रहा, परन्तु अन्त में भंडा-फोड़ हो गया। अबकी बार बहुत-से सामन्त हमारे साथ है। आशा है विजय प्राप्त होगी। आपको हम धन-धान्य और जागीर से सन्तुष्ट करेंगे। टेढ़े

समय में जो हमारी सहायता करेगा, उसे सीधे समय में हम कभी नहीं भूल सकेंगे ।'

पतराखन ने बड़ी रानी के सिसकने का शब्द सुना ।

बोला—'मुझ से शक्ति-भर जितनी सहायता बनेगी, करूँगा । यह टूटी-फूटी सी गढ़ी आप अपनी समझें ।'

बड़ी रानी ने करुण कण्ठ से कहा—'राव साहब, हम आपको इसका पुरस्कार देंगे ।'

राव पतराखन ने अदृष्ट को, अनिवार्य को सिर-माथे लेकर सोचा-'यदि इन दो निस्सहाय स्त्रियों की रक्षा मे इस गढ़ी को धूल में मिलाना पड़ा, तो कुछ हर्ज नहीं । किसी और गढ़ी को ढूँढ लूँगा ।'

[४७]

कुञ्जरसिंह मुसावली वाले कृषक और चरवाहे के साथ विराटा की ओर पैदल गया । वह अपने को प्रकट नहीं करना चाहता था । मार्ग के भरकों और वृक्षों के समूहों में होकर जाते हुए उसने सोचा—यदि वहीं हैं, तो शायद पहचान लें । न पहचानें, तो बुराई ही क्या ? जिसे संसार ने करीब-करीब त्याग दिया है, उसे देवता क्यो तिरस्कृत करने चला ? न पहचाने जाने में एक सुख भी है । खोद-खोदकर लोग कुशल-वार्ता न पूछेंगे और उन्हें व्यथा न होगी । शांति-पूर्वक उनके दर्शन कर लूंगा । परन्तु यदि उन्होंने पहचान भी लिया, तो उन्हें व्यथा क्यों होने लगी ? मैं उनका कौन हूं । केवल भक्त और फिर थोड़े से पलों का परिचय ।

कृषक और चरवाहों ने बातचीत करना चाही । कुञ्जरसिंह अनमनस्क था । प्रोत्साहन न पाकर वे लोग आपस में ही बातचीत करते चले ।

थोड़ी देर में नदी पार करके टापू के सिरे पर स्थित मन्दिर में पहुँच गये । वह देवी के दर्शनों का खास समय न था । कृषक और ऊसके साथी

को घर लौटाना था, परन्तु कुञ्जरसिंह ने कहा—'क्यों जल्दी करते हो ? यदि किसी ने मना कर दिया, तो अपना-सा मुँह लेकर रह जायेंगे और ठहरना तो पड़ेगा ही।'

कृषक बोला—'कए सें का बिगरत ? जो दर्शन होजें तो अच्छौ है ओर न हूं है तो आप ठेंर जइयो, हम भोर फिर आ जैहे।' कृषक ने विनय के साथ कहा—'पालर से जे कोऊ ठाकुर आए है, दर्शन गोमती करन चाउत है। अबै दर्शन न हुईएँ ? कोउ बहुत बड़े आदमी है।'

गोमती पालर का नाम सुनकर जरा पास आई कुञ्जरसिंह को पहचानने की चेष्टा की, न पहचान पाया।

कृषक से बोली—'यह पालर के नहीं जान पड़ते। किसी और स्थान के है। मैं तो पालर के हर व्यक्ति को जानती हूं।'

'परन्तु वे अनुप खों तो पालर को बताउत्ते।'

चरवाहे बालक ने कहा—'पालर से तो आई है। झूठी थोरक सी बोलत। हमसें कही, हमाए दाऊ सैं कही।'

इस चर्चा ने कुमुद को भी उस स्थान पर आकृष्ट कर लिया। एक ओर से अपने आगन्तुकों को बारी बारी से देखा। कुञ्जरसिंह को उसने कई बार बारीकी से देखा। वहाँ से हटकर चली गई। नरपतिसिंह को भीतर से भेजा।

उसने आकर अधिकार के स्वर में कहा—'क्या है ? आप लोग क्या चाहते है ?'

'दर्शन।' क्षीण स्वर में कुञ्जर ने उत्तर दिया।

'हो जायेंगे।' नरपति ने उसी स्वर में कहा—'जरा ठहरिये। हाथ पैर धो लीजिये। आप पालर से आये हैं ?

'जी हाँ।' कुञ्जर ने क्षीण स्वर में उत्तर दिया।

नरपति—'आपको पोलर में तो मैंने कभी नही देखा। आप वहाँ के रहने वाले नही है।'

कुञ्जरसिंह—'रहने वाला तो वहाँ का नही हूं, परन्तु इस समय अर्थात् कुछ दिन हुये, तव—आया वही से था।'

नरपति ने पास आकर कुञ्जरसिंह को घूरा। कुछ सोचकर वोला-'आपको कभी कहीं देखा अवश्य है, परन्तु याद नहीं पड़ता। पालर के ऊपर कालपी के नबाव के आक्रमण के समय आप दलीपनगर की सेना में या ऐसे ही किसी मेले में उससे पहले कभी आये है।'

'आप ठीक कहते है।' कुञ्जर ने जरा सम्भल कर कहा—'मैं एक मेले में पालर गया था।'

नरपति ने अपनी स्मरण-शक्ति को जरा और दवाकर पूछा—'आप कालपी के सैनिको के उपद्रव के समय पालर मे नही थे मुझे आपकी आकृति खूब याद आ रही है।

कुञ्जरसिंह ने टौरिया से नीचे बहती हुई वेतवा की धारा और उस पार के जङ्गलों की हरियाली को देखते हुये कहा—'मुझे याद नहीं पड़ता। शायद आया होऊँ।'

कुमुद ने भी यह वार्तालाप सुना। गोमती जरा उत्सुकता के साथ बोली—'आप दलीपनगर के रहने वाले होगे।'

'हाँ।' कहकर कुञ्जर ने सोचा, प्रश्नो की समाप्ति हो जायगी और हाथ-पाँव धोने के लिये नदी की ओर टौरिया से नीचे उतर गया। नरपतिसिंह सिर खुजलाता हुआ भीतर चला गया। गोमती कृषक से बातचीत करने लगी। बोली—'तुम इन ठाकुर को पहचानते हो।'

उसने उत्तर दिया—'मै तो नई चीनत। मोसें तो कहत्ते कँ पालर के आ है।'

'तुमसे इनसे क्या सम्बन्ध ?'

'मोरे इतैं डेरा डारे है।'

'तव तुम्हें इससे ज्यादा जानने की अटक ही क्या पड़ी? पालर से आये, इसलिये पालर का बतलाया, परन्तु है यह असल में दलीपनगर के रहने वाले। दलीपनगर का कुछ हाल इन्होने बतलाया था?'

'हमें तो अपने काम सें उकास नईं मिलत ।'

और अधिक बातचीत करना उचित न समझकर गोमती कुमुद के पास चली गई। कुमुद कुछ व्यग्रता के साथ मन्दिर को साफ कर रही थी। पहले की अपेक्षा दोनों में अब सम्बन्ध कुछ अधिक घनिष्ट हो गया था।

बोली—'दलीपनगर से एक ठाकुर आये हैं।'

किसी भाव से दीप्त होकर कुमुद का चेहरा एक क्षण के लिये रंजित हो गया। गोमती की ओर बिना देखे ही उसने कहा—'हाँ, आये होगे। नित्य ही लोग आया करते है।'

'इनसे वहाँ का कुछ हाल पूछूं ?'

'पूछने मे तुम्हें लाज नही आवेगी ? और फिर इसका क्या निश्चय कि यह ठाकुर कोई संतोषप्रद वृत्तांत भी तुम्हें सुना सकेंगे या नही।'

'तब क्या करूँ। दलीपनगर का तो बहुत दिनों से कोई यहाँ आया ही नही। यह एक आये है, सो प्रश्न करने मे मुझे भी संकोच मालूम होता है। इसलिये पूछा !'

'मै क्या कह सकती हूं ?'

'पूछूं कुछ हाल ?'

'तुम्हारा मन न मानता हो, तो पूछ देखो परन्तु मुझे विश्वास है, तुम्हे कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिलेगा। इस समय वह हारे-थके भी होंगे। यदि आज यहाँ बस जायें, तो सबेरे निश्चित होकर पूछ लेना, नही तो पिताजी द्वारा कहो, तो मैं बहुत सा हाल पुछवा लूं ?'

गोमती सहमत हो गई।

थोड़े समय के पीछे हाथ-पाँव धोकर कुन्जरसिंह नदी से आ गया। उसने नरपतिसिह से दर्शनों की इच्छा प्रकट की।

नरपतिसिह ने एकाएक कहा—'मैंने पहिचान लिया।'

कुन्जरसिंह का वेतवा के जल से धुला हुआ मुँह जरा धूमरा पड़ गया। नरपति के मंह की ओर देखने लगा।

नरपति ने कहा—'आप उस दिन पालर के दङ्गा करने वालों में थे। अवश्य थे। वह दिन भुंलाये नही भूलता। न वह दङ्गा होता और न हमें इतनी विपद झेलनी पड़ती। परन्तु, परन्तु—'

नरपति सोचने लगा। एक क्षण बाद बोला—'परन्तु एक लम्बा दुष्ट और था, सफेद दाढ़ी-मूँछ वाला, उसी ने गोल-माल किया था।'

कुमुद और वार्तालाप के बीच में केवल एक छोटी-सी दीवार थी। कुमुद ने तुरन्त पुकारकर कहा—'यहाँ आइये।'

कुमुद की पुकार के उत्तर में नरपति 'हाँ' कहते हुये कुन्जर से बोला—'आप शायद नहीं थे, शायद कोई और रहा हो; परन्तु वह बूढ़ा अवश्य था।

कुन्जरसिंह कुछ उत्तर देना चाहता था, परन्तु नरपति के सन्देह का निवारण करना इस समय इसका उद्देश्य न था इसलिये जरा-सा खाँस कर चुप रहा।

नरपति भीतर से लौटकर तुरन्त आ गया। बोला—'चलिये दर्शन कर लीजिये।'

कृषक और चरवाहा भी हाथ-पैर धोकर आ गये थे, परन्तु उन्हें नरपति ने टोका। कहा—'तुम दर्शन कर लेना। यह तुम्हारे लिये समय नही है।

कुन्जर लौट पड़ा। बोला—'उन्हें भी आने दीजिये। इन बेचारों को इसी समय लौट जाना है। मैं तो दर्शनों के लिये रुक भी सकता हूं।'

कुन्जर का प्रतिवाद शायद बेकार जाता, परन्तु कृपक चरवाहा मन्दिर में धँस पड़े। नरपति ने उन्हें रोक न पाया।

देवी की मूर्ति के पास एक किनारे पर कुमुद बैठी थी। वही मुख, वही रूप। आज केवल कुछ अधिक आतंकमय दिखलाई पड़ा। भौहों के बीच में सिन्दूर और भस्म का टीका अधिक गहरा था।

पुजारिन को एक बार चंचल दृष्टि से कुन्जर ने देखा, फिर देवी को साष्टांग प्रणाम करके मन-ही-मन कुछ कहता रहा।

जब विभूत-प्रसाद की वारी आई, तब फिर कुमुद की ओर देखा। वह पीली पड़ गई थी।

काँपते हुये हाथ से कुमुद ने फूल और भस्म कुञ्जरसिंह को दी। वह अंगूठी उसकी उङ्गली में अब भी थी। कुंजर ने नीची दृष्टि किये हुये ही काँपते कण्ठ से कहा—'वरदान मिले। बहुत दुर्गति हो चुकी है।'

कुमुद देवी की ओर देखने लगी, कुछ न बोली।

कुञ्जर ने फिर कहा—'देवी के वरदान के बिना मेरा जीवन असम्भव है।' कुञ्जर का गला और अधिक काँपा।

'देवी जो कुछ करेंगी, सब शुभ करेंगी।' कुमुद ने कुञ्जर की ओर दृष्टिपात करने का प्रयत्न करते हुये उत्तर दिया।

इतने में नरपति बोला—'आप पालर क्या अभी चले जायेंगे?'

कुञ्जर के मन में कोई जल्दी न थी। बोला—'अभी तो न जाऊँगा और कुछ ठीक नहीं, कहाँ जाऊँ।'

'तो क्या आप दलीपनगर जायेंगे?' नरपति ने पूछा।

'वहाँ का भी कुछ ठीक नहीं' कुञ्जर ने संयत निश्वास के साथ उत्तर दिया।

कुमुद अपने सहज स्वाभाविक धैर्य को पुनः प्राप्त-सा करके भर्राये कण्ठ से बोली—'इनके भोजनों का प्रबन्ध कर दीजिये।'

गोमती ने एक कोने से कहा—'और विश्राम का भी, क्योंकि लौट कर कल जायेंगे, सन्ध्या होने वाली है।'

[४८]

मन्दिर का विस्तार थोड़े-से स्थान में था। उसकी कोठरियाँ भी छोटी-छोटी थीं। नरपति ने अपनी कोठरी में कुञ्जरसिंह को स्थान दिया। भोजन के उपरान्त नरपति कुञ्जर के पास बैठ गया। दोनों एक दूसरे के साथ बातचीत करने के इच्छुक थे, परन्तु नरपति दिमाग के किसी दोष के कारण और कुञ्जर किसी संकोच के वस यह निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि चर्चा का आरम्भ किया किस तरह जाय।

इतने में पास ही कोठरी में गोमती ने जरा आह खींचकर कुमुद से कहा—'काकाजू को आज जल्दी नींद आ गई !'

नरपति ने सुन लिया। किसी कर्तव्य का स्मरण करके कुन्जर से बोला—'मैं बड़ी देर से सोच रहा हूं कि आपको उस दङ्गे के अवसर पर पालर में देखा था या नही। आप थे या आपके साथ राजकुमार था। था कोई अवश्य। बहुमूल्य वस्तु देवी को भेंट की थी, परन्तु और याद नही पड़ता। दिन बहुत हो गये हैं। बूढ़ा हूं और देवी की रट के सिवा मन में अब कुछ उठता भी नही।'

'मैं क्या कहूं।' कुन्जर ने कहा—'इसे जानकर आप क्या करेंगे ? किसी दिन मालूम हो जायगा। आपके लिये इतना जान लेना बहुत होगा कि आफतों का मारा हुआ हूं।'

'क्या आप राजकुमार है ?' कुछ जोर से और एकाएक नरपति ने पूछा।

कुन्जर ने बहुत धीरे से जवाब दिया—'सैनिक हूं। संसार का ठुकराया दरिद्र मनुष्य हूं और अधिक मत पूछिये।'

पास की कोठरी में लेटी या बैठी हुई उन दोनों स्त्रियों ने नरपति का प्रश्न तो सुन लिया, परन्तु शायद उत्तर न सुन पाया।

नरपति ने पूछा—'आप दलीपनगर के रहने वाले है।'

'जी हां।'

'वहां का राजा कौन हैं ? सुनते है, कोई देवीसिंह राज्य करते है।'

'आपको मालूम तो है ?'

'कैसे राजा है ?'

कुन्जर चुप रहा।

नरपति ने जिद करके पूछा—'कैसा राजा है ? प्रजा को कोई कष्ट तो नही देता ?'

'अभी तो सिंहासन को अपने पैरो के नीचे बनाये रखने के लिये खून-खराबी करता है।'

'यह राज्य तो उन्हे महाराज नायकसिंह ने दिया था ?'

'विल्कुल झूठ वात है।'

नरपतिसिंह ने पाँडित्य प्रदर्शित करते हुये कहा—'हमें भी ख्याल होता है कि महाराज ने राज्य न दिया होगा, क्योंकि उनके एक कुमार थे। उनका क्या हुआ ? अब क्या वह राजकुमार नही हैं ? सच-सच वतलाइये। आपको कसम है।'

कुन्जरसिंह ने एक क्षण सोचकर कहा-'नहीं, मैं इस समय वह नही हूं, परन्तु जो राजकुमार है; वह किसी समय प्रकट अवश्य होगा।'

नरपतिसिंह अपनी उसी धुन को जारी रखते हुये बोला-'राजकुमार वड़ा सुशील और होनहार था। मैने उसके लिये देवी से प्रार्थना की थी। उस वेचारे को राज्य तव नही मिला, तो कभी-न-कभी मिलेगा।'

'स्वार्थियो की नीचता के कारण।' कुन्जर ने उत्तर दिया—'दलीप-नगर मे जनार्दन शर्मा एक पापी है। उसके षड़यन्त्रों से देवीसिंह राजा वन वैठा है। वास्तविक राजकुमार वंचित हो गया है और रानियो की मूर्खता के कारण भी उसे नुकसान पहुचा है—'

नरपति ने टोककर कहा-'देवी की कृपा हुई, तो असली हकदार को फिर राज्य मिलेगा और नीच, स्वार्थी, पापी लोग अपने किये का फल पावेगे।'

गोमती को दूसरी कोठरी में वड़ी जोर से खाँसी आई।

उसकी खाँसी के समाप्त होने पर कुन्जर ने पूछा-'विराटा के राजा के पास फौज-फाँटा कैसा है ?'

'अच्छा है।' नरपति ने उत्तर दिया—'रामनगर के राव साहव की अपेक्षा यह वहुत जन और धन-सम्पन्न है। वह अपने को छिपाते बहुत हैं, नही तो उनमें इतनी शक्ति है कि किसी भी राजा या नवाव का मुकावला कर सकते है। हमारी जाति के वह गौरव है।'

कुञ्जर ने नरपति के जाति-गर्व को मन-ही-मन क्षमा करते हुये कहा—'यदि किसी समय दलीपनगर के राजकुमार उनसे मिलने आवें तो अच्छी तरह मिलेंगे या नहीं ?'

'अवश्य।' नरपति ने उत्तर दिया—राजा राजाओं के साथ बराबरी का ही बर्ताव करते है। आपका उस राजकुमार से कोई सम्बन्ध है ?'

'जी हाँ।'

'क्या ?'

'मैं उनकी सेना का सेनापति हूं।'

'वही तो, वही तो।' नरपति ने दम्भ के साथ कहा—'मेरी स्मरण-शक्ति ने धोखा नहीं खाया था। मुझे देखते ही विश्वास हो गया था कि आप राजकुमार या राजकुमार के साथी या दलीपनगर के कोई व्यक्ति अवश्य है।'

स्मरण शक्ति का यह प्रमाण पाकर कुञ्जरसिंह को अपनी उस दशा में भी मन मे हँसी आ गई। बोला—'राजकुमार आपके राजा से पीछे मिलेंगे, मै उनसे पहले मिल लूँगा। आप कुछ सहायता करेंगे ?'

नरपति ने पूछा—'उस दंगे के दिन राजकुमार के साथ आप किस समय आये थे या शुरू से ही साथ थे ?'

कुञ्जर ने अन्धेरी कोठरी मे दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—'मैं शुरू से ही साथ था। आपको अवश्य याद होगा।'

तुरन्त ही कुञ्जरसिंह ने अपने पहले प्रश्न को फिर दुहराया—'आप राजकुमार की कुछ सहायता कर सकेंगे ?'

नरपति बोला—'अवश्य। मै आपके कुमार के लिये देवी से प्रार्थना करूँगा और राजा सबदलसिंह से भी कहूंगा। अपने साथ आपको ले चलूँगा।'

[४९]

नरपति और कुञ्जर शायद जल्दी सो गये होगे, परन्तु उन दोनों युवतियो को देर तक नींद नहीं आई। धीरे-धीरे बातें करती रहीं।

गोमती ने कहा—'यह तो उनके वैरी का आदमी निकला। क्या इसका यहाँ अधिक टिकना अच्छा होगा?'

'यह मन्दिर है।' कुमुद ने उत्तर दिया—'यहाँ कोई भी ठहर सकता है। किसी को मनाही नही।'

'चाहे जितने दिन।'

'इसके विपय में मैं कुछ नहीं कह सकती। काकाजू जाने।'

'काकाजू ने उसे वचन सा दिया। यहाँ के राजा यदि महाराज के विरुद्ध हथियार उठावें भी, तो उनका कुछ विगड़े नहीं। देवी का वरदान उनके लिये है। परन्तु काकाजू का साथ देना मुझे भयभीत करता हे।'

'अपनी-अपनी सी सभी कहते है। काकाजू ने इस सैनिक को यहाँ के राजा के पास पहुंचा देने की सहायता के लिये अनुरोध-मात्र का वचन दिया है इससे आगे और वात से उन्हें प्रयोजन ही क्या है?'

गोमती की घवराहट इससे शांत न हुई। विनय-पूर्वक वोली—'परन्तु वह देवी से भी प्रार्थना करेंगे। इससे उन्हें, क्या कोई रोक सकेगा?'

'देवी से प्रार्थना नह नही करते।' कुमुद ने रूखेपन के साथ कहा—'जो कुछ कहना होता है, वह मेरे द्वारा कहा जाता है।'

गोमती चुप हो गई। थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। फिर वोली—'क्या सो गई?'

'अभी नही।' उत्तर मिला।

'अपराध क्षमा हो, तो एक वात कहूं?'

'कहो।'

'न मालूम क्यों मेरे मन मे रह-रहकर यह खटका उपन्न हो रहा है कि यह मनुष्य मेरे अनिष्ट का कारण होगा।'

'तुम्हारा भय भ्रम से उत्पन्न हुआ है, जैसे सव तरह के भयों का मूल-कारण किसी-न-किसी प्रकार का भ्रम होता है।'

'तो आप एक बार फिर कह दें कि महाराज का इस व्यक्ति के द्वारा कोई अनिष्ट न होगा।'

'उस दिन सब कुछ कह दिया था। अब और कुछ नहीं कहूंगी।'

(५०)

सवेरे कुञ्जरसिंह नरपति के साथ विराटा के राजा सबलसिंह के पास गया। राजा ने स्पष्ट इनकार तो नही किया, परन्तु नरपति के बहुत हठ करने पर कहा—'देवीजी की कृपा से काम बनाने की आशा करनी चाहिये, परन्तु भरोसा पक्का उस समय दिला सकूंगा, जब यह निश्चय हो जाय कि कालपी के नवाब की सहायता बिना आपके कुमार दलीपनगर के राजा की शक्ति का सफलता-पूर्वक सामना कर सकते है। यदि दिल्ली का पाया लौट गया और कालपी की नवाबी खतम हो गई, तो मुझे आपके राजा का साथ देने में बिलकुल संकोच न होगा। अथवा यदि आप लोग किसी तरह कालपी के नवाब को अपने पक्ष में कर लें, तो कदाचित मुझे अपना सिर खपाने में ऊँच-नीच का विचार न करना पड़ेगा।'

कुन्जरसिह बोला—'कालपी का नवाब दलीपनगर पर धावा अवश्य करेगा, परन्तु वह अपने स्वार्थ के लिये करेगा।'

'तब ऐसी दशा में आपको कुछ दिन बल एकत्र करने और चुपचाप परिस्थिति के अध्ययन करने में बिताने पड़ेंगे। अनुकूल स्थिति होने पर हम और आप दोनों मिल-जुलकर काम कर सकते है।'

नरपति बोला—'हाँ, ठीक है। जरा देश-काल को परखकर काम करने में ही लाभ है। फिर दुर्गा सहायता करेंगी। आप तब तक रहेंगे कहाँ?'

'कुछ निश्चय नहीं।' कुन्जर ने सोचकर कहा—'चाहे कुमार कुञ्जरसिंह के पास चला जाऊँ, चाहे इधर-उधर सैन्य-संग्रह के लिये दौड़-धूप करता फिरूँ। आजकल हम लोगों के ठौर का कुछ ठिकाना नहीं।'

नरपति ने आग्रह-पूर्वक कहा—'तब आप हमारे राजाके यहाँ ठहर जायें।' और जरा निहोरे के साथ सबदलसिंह की ओर देखने लगा।

सबदल ने पूछा—'आपका नाम ?'

बिना किसी हिचकिचाहट के कुञ्जर ने उत्तर दिया—'अतबलसिंह।'

सबदल ने कहा—'आप यहाँ ठहर सकते हैं, यदि आपकी इच्छा हो तो। परन्तु आपको रहना इस तरह पड़ेगा कि आपका पता किसी को न लगे, अर्थात् जब तक आपका अभिप्राय सिद्ध न हो जाय।'

कुञ्जर बोला-'यह जरा मुश्किल है। ऐसा स्थान कहाँ है, जहाँ मैं बिना टोका-टाकी के बना रहूं, स्वेच्छा-पूर्वक जब चाहे जहाँ आ—जा सकूं।'

'ऐसा स्थान है।' नरपति ने बात काटकर कहा—'ऐसा स्थान देवी का मन्दिर है। एक तरफ कहीं, जब तक चाहो तब तक पड़े रहें। तैरना जानते हो ?'

'हाँ।' कुञ्जर ने उत्तर दिया।

तब नरपति बोला—'डोंगी की सहायता बिना भी स्वेच्छा-पूर्वक चाहे जहाँ आ-जा सकते हो।' परन्तु। सबदलसिंह ने जरा जल्दी से कहा—'डोंगी मिलने में अधिक अड़चन न हुआ करेगी। हाँ किसी समय उसका प्रबन्ध न हो सके, तो आप यों भी तैरकर पार जा सकते हैं। इस ओर की धार भी छोटी-सी ही है। मन्दिर में आने—जाने वाले लोग आपकी रोक—टोक भी न करेंगे।'

एक धीमी, अस्पष्ट आह भरकर कुञ्जर बोला—'देखें कब तक वहाँ इस तरह टिका रहना पड़ेगा।' फिर तुरन्त भाव बदलकर उसने कहा—'सैन्य-संग्रह शीघ्र हो जायगा और देवीजी की कृपा होगी, तो बहुत शीघ्र सफलता भी प्राप्त हो जायगी।'

[५१]

गोमती को मालूम हो गया कि दाँगी राजा ने सहायता-प्रदान का पक्का वचन न भी देकर अपने को कुञ्जरसिंह का सेनापति वतलाने वाले व्यक्ति को आश्रय-दान दिया है। गोमती को अखरा। यद्यपि वह स्वयं दूसरों के आश्रित थी, परन्तु अपने को धीरे-धीरे दलीपनगर की रानी समझने लगी थी और राजा देवीसिंह के सब प्रकार के शत्रुओं के प्रति उसके जी में घृणा उत्पन्न हो गई थी। यदि दाँगी राजा ने बिलकुल 'नाहीं' कर दी होती, अथवा स्पष्ट रूप से पूरी सहायता देने का वचन दिया होता, तो वह भयभीत भले ही वनी रहती किन्तु, उस अवस्था में घृणा का भयंकर भाव उदय न होता।

सबदलसिंह के यहाँ से लौट आने पर गोमती की इच्छा कुन्जर को दो खोटी बातें सुनाने को हुई, परन्तु मन में उसने यथेष्ट रूप को निश्चय और परिमित न कर पाया। नरपतिसिंह साफ तौर पर उसे देवीसिंह के द्रोही का पक्षपाती जान पड़ता था। कुमुद देवी का अवतार या देवी की अद्वितीय पुजारिन होने पर भी लडकी तो नरपति की थी। गोमती को रोष हुआ, कष्ट हुआ, परन्तु उसने नरपति के उस अनधिकार कृत्य पर उत्पन्न हुये अपने उद्दण्ड रोष को कुमुद के सामने प्रकट न करने का निश्चय कर लिया। भीतर ही भीतर असन्तोष और ग्लानि बढ़ने लगी और किसी सुपात्र के सम्मुख प्रकट न कर पाने के निषेध और वचन के कारण हृदय जलने लगा।

इसी समय उस मन्दिर मे एक व्यक्ति और आया। गोमती को उसके पुष्ट, भरे हुये चेहरे पर सतर्कता के चिन्ह मालूम हुये, परन्तु इससे अधिक वह उस समय और कुछ न देख सकी, क्योंकि उसने जरा आँख गड़ाकर गोमती की ओर देखा था। वह व्यक्ति रामदयाल था।

रामदयाल ने वहुत थोड़ी देर के लिये कुमुद को पालर में देखा था, गोमती को उसने देखा था। इसलिये पहले उसकी धारणा हुई कि

यही पुजारिन कुमुद है। गोमती भी सौदर्य-पूर्ण युवती थी। रामदयाल को उसके नेत्र अवश्य बहुत मादक जान पड़े।

जरा सिर झुकाकर गोमती से नीची आँखें किये हुये ही बोला-'दूर से दर्शन करने आया हूं।'

'कहाँ से?' गोमती ने बिना सोचे-समझे पूछा।

'दलीपनगर से।' तुरन्त उत्तर मिला।

गोमती के मन में कुछ और पूछने की प्रबल इच्छा हुई, परन्तु उसने एक ओर कुमुद को देखा। संकोच हुआ। दूसरी ओर जाने लगी। सोचा-'यह आदमी शीघ्र यहाँ से नहीं जायगा। यदि यह कुन्जरसिंह के पक्ष का या राजा के किसी वैरी का आदमी नहीं है, तो अवश्य इससे पता लगेगा।'

रामदमाल ने कुमुद को देखा था। गोमती को हाथ के संकेत से रोकता हुआ-सा बोला—'मैं दूर से दर्शन करने आया हूं क्या इस समय दर्शन हो जायेंगे?'

'मैं पूछकर बतलाती हूं।' गोमती ने उत्तर दिया।

रामदयाल ने प्रश्न किया—'किससे?'

गोमती बोली—'यदि तुम्हें इस समय दर्शन न हों, तो सवेरे तो हो ही जायेंगे।'

उसने कहा—'मैं तो दर्शनों के लिये चार दिन तक पड़ा रह सकता हूं। आप-'बड़ी नम्रता और विनय का नाट्य करता हुआ रामदयाल रुक गया।

'क्या कहना चाहते हो, कहो?' गोमती ने वार्तालाप करने की इच्छा से पूंछा।

'आप ही तो हम भूले-भटकों और भवसागर के कष्ट-पीड़ितों की बात को दूर तक पहुंचाती है। आपको किससे पूछना पड़ेगा?'

गोमती ने कहा—'मैं वह नहीं हूं।'

रामदयाल ने सिर जरा ऊँचा करके पूछा—'तब वह कहाँ हैं ? आप कौन हैं ?'

'वह यहीं पर हैं और मैं दलीपनगर के ···की' आगे गोमती से कुछ कहते न बन पड़ा। मुख पर लज्जा का रङ्ग दौड़ आया। द्रुत गति से वह जहाँ कुमुद थी, वहाँ चली गई। रामदयाल उस ओर देखने लगा। कुमुद कोठरी से निकल कर एक दो कदम आँगन में आई। पीछे-पीछे गोमती थी।

कुमुद के दिव्य सौन्दर्य की एक झलक रामदयाल ने पालर में देखी थी। यद्यपि उसके स्मृति पटल पर उस सौन्दर्य के यथार्थ रूप की रेखायें अंकित न थीं, परन्तु यह धुंधला स्मरण था कि विचित्र सौंदर्य है। देखते ही पालर का स्मरण जाग पड़ा और उसने समझ लिया कि जिस युवती से पहले संभाषण हुआ था, वह कुमुद नहीं है।

तब वह कौन थी ?

रामदयाल के मन में यह प्रश्न उठा, परन्तु उस समय इसकी विवेचना के लिये रामदयाल को आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। वह कुछ स्त्रियों के स्वभाव से परिचित था। उसने सोचा थोड़ी देर में उसका परिचय भी मिल जायगा।

रामदयाल ने विनय-पूर्वक कहा—'दूर से आया हूं। क्या इस समय दर्शन हो जायेंगे ? यदि न हो सकें तो सवेरे तक के लिये ठहर जाऊँगा और फिर कदाचित् एक अनुष्ठान के लिये यहाँ कई रोज ठहरना पड़ेगा।'

कुमुद बोली—'दर्शन इस समय भी हो सकते हैं, परन्तु यदि तुम सबेरे तक के लिये ठहर सकते हो, तो प्रातःकाल का समय सबसे अच्छा है।'

'बहुत अच्छा।' रामदयाल ने कहा—'मैं तब यहीं कहीं या किसी पेड़ के नीचे ठहर जाऊँगा।' उसने अन्तिम बात को प्रस्ताव के रूप में कहा।

'हमारी कोई हानि नही।' मुमुद बोली—'चाहे जहाँ ठहर जाओ; मन्दिर है। तुम कौन हो?'

उसने उत्तर दिया—'मैं दलीपनगर का रहने वाला हूं। महलों से मेरा सम्बन्ध रहा है। तीर्थयात्रा और एक विशेष अनुष्ठान के लिये यहाँ आया हूं।'

गोमती ने कुमुद के कान में पीछे से कुछ कहा। उस पर विशेष ध्यान न देकर कुमुद बोली—'मन्दिर में तो कोई खास स्थान ठहरने के लिये है नही। यह दालान खाली है। चाहो तो इसमे पड़े रहना। यदि बाहर ठहरने की इच्छा हो तो वैसा कर सकते हो।'

गोमती किसी आग्रह की दृष्टि से रामदयाल की ओर कुमुद के पीछे से देख रही थी। रामदयाल ने कहा—'मै दालान में ही ठहर जाऊँगा। बाहर अकेले जरा बुरा मालूम पड़ेगा।'

इसके बाद वे दोनों लड़कियाँ मन्दिर के एक दूसरे भाग में चली गईं।

वहाँ जाकर कुमुद ने गोमती से कहा—'तुम कभी-कभी बड़ी उतावली हो जाती हो। इस समय उस हारे-थके आदमी से दलीपनगर के विषय में कुछ नही पूछना चाहिये। फिर किसी समय देख लेना।'

'मैं पूछ लूँ उससे किसी समय!'

'पूछ लेना। मुझे उसमें कोई आपत्ति नही।'

उधर रामदयाल ने दालान के एक अंधेरे से कोने में अपना डेरा लगा लिया।

उस समय मन्दिर में नरपतिसिंह नहीं था। परन्तु कुंजरसिंह अपनी कोठरी में न था।

उसने रामदयाल के कण्ठ को पहचान लिया। सन्नाटे में आकर

निकला। उस समय रामदयाल दालान के उस कोने में अपना डेरा लगा रहा था। पहचान लिया। रामदयाल ने नहीं देख पाया। कुन्जर अपनी कोठरी में लौट आया।

सन्ध्या के उपरांत—जब वेतवा की अस्पष्ट कल्लोल के साथ-साथ पश्चिम तटवर्ती विराटा-ग्राम से लोगों की आहट आ रही थी और देवी के मन्दिर में कुञ्जर और नरपति देवी की आरती की तैयारी में लगे हुये थे—गोमती किसी काम के करने की इच्छा से आंगन में आई परन्तु किसी काम को सामने न पाकर वहां बैठ गई, जहाँ से रामदयाल का डेरा पास पड़ता था। रामदयाल की ओर न देखती हुई बोली—'दलीप-नगर का कोई और विशेष समाचार नही है ?' बात कोमलता का प्रयत्न करके कही गई थी और रामदयाल को कोमल जान भी पड़ी, परन्तु उस पर अधिकार की छाप थी। यह रामदयाल की परख में न आई।

उसने अपने आसन से जरा-सा खिसककर उत्तर दिया—'विशेष समाचार तो कुछ नही है। राजा सैन्य-संग्रह में लगे हुये है। उन्हें और किसी बात की धुन नही है।'

'सुना है पालर की किसी लड़ाई में वहुत घायल हो गये थे ?'

'हाँ, बहुत बाल—वाल बचे।'

'अब अच्छी तरह है ?'

'हाँ, अव अच्छी तरह है। बहुत दिन हुये तब चोट लगी थी। तब से तो वह कई लड़ाइयाँ लड़ चुके है उस चोट की अब उन्हें याद भी न होगी।'

'दलीपनगर की सेना में एक लम्बा, कठोर, कठिन आदमी था। वह मर गया या महाराज की सेवा में है ?'

'उन्ही की सेवा मे है। आपको पालर की घटना कैसे मालूम है ?'

जरा अधिकार-व्यंजक स्वर में गोमती वोली—'मैंने पालर में उस व्यक्ति को देखा था। राजा ने उस पाषाण हृदय को कैसे अपनी सेवा में फिर रख लिया ?'

रामदयाल के मन में गोमती का कुछ अधिक परिचय प्राप्त करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई।

बोला—'आप दलीपनगर में किस की बेटी हैं?'

'मैं दलीपनगर में किसी की बेटी नहीं हूं।'

'परन्तु दलीपनगर में आपका कोई न कोई तो अवश्य है। आपने ही थोड़ी देर पहले बतलाया था।'

गोमती जरा गर्व-पूर्ण स्वर में बोली—'पहले तुम यह बताओ कि राजा से तुम्हारा कोई सम्बन्ध है या नहीं?'

'है और नहीं है।' रामदयाल ने उत्तर दिया।

'राजा अपने सेवकों की सेवाओं का कैसा पुरस्कार देते हैं?'

'जैसा उनके मन में आता है। दानी हैं।'

गोमती ने धीरे से, परन्तु स्पष्ट कोमलता के साथ, किन्तु अधिकार युक्त स्वर में कहा—'तुम्हें मुँह मांगा पुरस्कार मिलेगा।'

रामदयाल सावधान हुआ। जरा और आगे खिसका।

'गोमती से बोला—'मेरे योग्य जो सेवा होगी अवश्य करूँगा।'

'यहाँ कुन्जरसिंह का सेनापति ठहरा हुआ है।' गोमती ने भी धीरे से कहा—'वह राजा के विरुद्ध कुछ कार्य कर रहा है। तुम पता लगाकर राजा की सहायता करो।'

'कहाँ ठहरा हुआ है?'

'इसी मन्दिर में।'

'कब से?'

'हाल ही में आया है।'

'किस प्रयोजन से?'

'विराटा के राजा से महाराजा के विरुद्ध सहायता की याचना करने के लिये। इससे अधिक मुझसे कुछ न पूछो, क्योंकि मैं नहीं जानती।'

'तुम्हें राजा का सेवक समझकर मैंने बतलाया है।'

रामदयाल कुछ क्षण तक सोचता रहा।

'आप कौन है ?' रामदयाल ने एकाएक पूछा।

'मैं दलीपनगर के राजा की' गोमती ने शीघ्र उत्तर दिया-'रानी हूं।'

रामदयाल ने तुरन्त खड़े होकर मुजरा किया। खड़ा रहा।

गोमती मन-ही-मन प्रसन्न हुई। बैठने का संकेत किया। वह बैठ गया।

रामदयाल ने विनीत भाव से कहा—'उस दिन महाराज की जो बारात पालर को आ रही थी, परन्तु बीच मे ही युद्ध हो पड़ा। क्या ?'

गोमती ने अभिमान के साथ उत्तर दिया—'हाँ मैं वही हूं। मुझे इस बात का बड़ा दुःख रहा करता है कि इस चिन्ता-पूर्ण समय में महाराज का कुशल समाचार मुझे बहुत कम मिल पाता है।'

'वह समाचार मैं कभी-कभी आपको दिया करूँगा।' रामदयाल ने प्रस्ताव किया।

गोमती बोली—'महाराज के स्वामिभक्त सेवक का नाम तो मुझे मालूम हो।'

'मेरा नाम। रामदयाल ने बतलाया-रामदयाल है। मैं बड़ी कठिनाइयो में हूं और बड़े कठिन कर्तव्य का पालन कर रहा हूं। आपने शायद सुना होगा कि मृत राजा की दो रानियाँ थीं। मैं उनकी सेवा में था। वे बागी हो गई। जासूस बनकर मुझे कभी एक के पास, कभी दूसरे के पास और कभी दोनों के पास रहना पड़ा। बड़ा नाजुक काम है। भेद खुलने पर पूरी विपद की आशंका है। इस समय भी उन रानियों की जासूसी के लिये दलीपनगर के बाहर हुआ हूं।'

'रानियाँ कहाँ हैं ?'

'वे दलीपनगर से बाहर हैं तभी तो मैं बाहर हूं। उनका ठीक-ठीक पता मालूम होने पर बतलाऊँगा। एक प्रार्थना है।'

'क्या ?'

'कोई बात कहीं प्रकट न हो, अन्यथा महाराज के हित की हानि होगी।'

'कभी किसी प्रकार न हो सकेगी।'

'इस प्रकार मैं कभी-कभी आना जाना चाहता हूं। आपकी बात से मुझे एक और काम का पता लग गया।'

गोमती बोली—'ठहर तो यहाँ सकोगे, परन्तु शायद बाहर रहना पड़ेगा। पुजारिन के पिता नरपति कुञ्जरसिंह के पक्ष में मालूम होते है। उन्हें अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करना चाहिये।'

'वह सब मैं धीरे-धीरे देखूंगा।' रामदयाल बोला—'चढ़ौती के विषय में यहाँ क्या नियम है?'

'कोई विशेष नियम नहीं है। परन्तु कुञ्जरसिंह ने उस बार पालर में एक बहुमूल्य आभूषण नरपति को भेंट किया था, इसलिये शायद वह कुञ्जरसिंह के नाम का पक्ष करते है। कुमुद अवश्य बहुत धीर, शान्त तेजस्विनी है। उनमें अवश्य देवी का अंश है।'

'मेरे लिये तो।' रामदयाल ने स्वर में सचाई की खनक पैदा करके कहा—'संसार भर की सब स्त्रियों में सबसे अधिक मान्य आप है।' अन्धकार मे रामदयाल ने नहीं देखा। परन्तु इसमें कोई सन्देह नही कि उसके गालो पर मन्तव्य के प्रकट होने पर गहरी लाली छा गई। इतने में देवी की आरती के लिये गोमती को कुमुद ने पुकार लिया।

[५३]

दूसरे दिन सवेरे रामदयाल दर्शनों के लिये मूर्ति के सामने पहुंचा। कुमुद मूर्ति के पास बैठी हुई थी और नरपति उससे जरा हटकर। रामदयाल ने बड़ी श्रद्धा दिखलाते हुये मूर्ति पर जल चढ़ाया और बेले के फूल अर्पण किये। उसने कपड़े की ओर कुछ निकालने के लिये हाथ बढ़ाया। नरपति ने एक बार उस ओर देखकर दूसरी ओर मुँह कर लिया। इतने में कुञ्जरसिंह भी आ गया। कुमुद की आँखें मूर्ति की

और देखने लगीं। रामदयाल ने बगल से कुञ्जरसिंह को देखा, फिर मुड़कर। पहचानने में सन्देह न रहा। एक क्षण के लिये सकपका-सा गया। गोमती पास थी। उसने रामदयाल का यह शारीरिक व्यापार ताड़ लिया। उसे वह बहुत स्वाभाविक जान पड़ा और रामदयाल के प्रति सहानुभूति और कुञ्जरसिंह के प्रति घृणा का भाव कुछ और गहरा हो गया। रामदयाल ने अपने को संयत कर लिया। कपड़ों में से सोने का बहुमूल्य गहना निकाल कर मूर्ति के चरणों मे चढ़ा दिया।

नरपति विस्फारित लोचनों से इस व्यापार को देखने लगा।

गहना अपने हाथ में उठाकर नरपति ने कहा—'आप कहाँ के कौन है?'

'मैं दलीपनगर का हूं।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'इससे अधिक कुछ और बतलाना मेरे लिये इस समय असम्भव है। आफत में हूं। दुर्गा के दर्शनों से आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये आया हूं। मेरी प्रार्थना है कि मेरे स्वामी का भला हो।'

गोमती ने उसी समय आँखें मूँदकर रामदयाल की प्रार्थना स्वीकार की जाने के लिये देवी से प्रार्थना की और बड़े अनुनय की दृष्टि से कुमुद की ओर देखा।

नरपति बोला—'आपके स्वामी का कल्याण होगा।'

गोमती किसी उमड़े हुये भाव के वेग को सहन न कर सकने के कारण बोली—'जीजी के मुख से यह आशीर्वाद और अच्छा मालूम होगा।'

कुमुद कुछ नहीं बोली।

नरपति ने तुरन्त कहा—'दुर्गा का प्रसाद इन्हें दिया जाय—फूल और भस्म।'

कुमुद ने भस्म उठाकर रामदयाल को दे दी। पुष्प नहीं दिया।

गोमती के हृदय को बड़ी पीड़ा हुई। नरपति बोला—'यदि उचित समझा जाय, तो पुष्प भी दे दिया जाय। यह दुर्गा के अच्छे सेवक जान पड़ते है।'

कुमुद मूर्ति को प्रणाम करके वहाँ से मन्दिर के दूसरे भाग में धीरे से चली गई। गोमती ने कुमुद के नेत्रों में इतनी अवज्ञा पहले कभी नहीं देखी थी।

बड़ी कठिनाई से गोमती ने नरपति से कहा—'इन्होंने क्या कोई अपराध किया है ?'

उदास स्वर में नरपति बोला—'कोई अपराध नहीं किया और न देवी इनसे रुष्ट है। रुष्ट होती, तो भस्म का प्रसाद क्यों देती ? जान पड़ता है, अभी इनके कार्य में कुछ विलम्ब है, इसलिये पुष्प-प्रसाद नही मिला।'

'तब इनके यहाँ थोड़े दिनों ठहरे रहने में आपकी कोई हानि तो होगी नही ?' गोमती ने कहा।

नरपति ने उत्तर दिया—'जरा भी नही। चैन से ठहरे रहें। एक दिन ऐसा अवसर अवश्य आयगा, जब देवी प्रसन्न होकर मनचाहा वरदान भी देंगी।

रामदयाल कुञ्जरसिंह को देखकर सकपकाया था, परन्तु इस घटना से विचलित नही जान पड़ा। मुस्कराकर बोला—'एक दिन उसकी कृपा अवश्य होगी और मेरा तथा मेरे स्वामी का अवश्व कल्याण होगा।'

'अवश्य।' नरपति बोला।

'अवश्य।' रामदयाल ने कहा।

नरपति ने रामदयाल से कहा—'आप यहाँ जब तक मन चाहे, बने रहिये, अर्थात जब तक आपको अभीष्ट आशीर्वाद न मिल जाय।'

जब दोनों अकेले रह गये, कुञ्जरसिंह ने धीमे स्वर में, परन्तु तीखे-पन के साथ कहा—'यहाँ किस लिये आये हो ?'

'दर्शनों के लिये।'

'तुम्हें ये लोग जानते नहीं है ?'

'जानते है।'

'ये लोग यह जानते है कि तुम्हारा नाम रामदयाल है और किस तरह के मनुष्य हो।'

'मैंने उन्हें स्वयं बतला दिया है।'

'तुम यहाँ से चले जाओ।'

क्रोध के मारे कुञ्जरसिंह काँपने लगा।

रामदयाल ठण्डक के साथ बोला—'राजा, गुस्से से काम न चलेगा। मैंने अपना परिचय इन लोगो को दे दिया है, परन्तु आप यहाँ नाम और काम दोनों की दृष्टि से छिपे हुये है। आपका भेद खुलने से मेरी कोई हानि न होगी। राजा देवीसिंह के आदमी आपके लिये घूम रहे है। कालपी का नवाव, जो भाँडेर में यहाँ से पास ही ठहरा हुआ है, आपसे शायद बहुत सन्तुष्ट नहीं है। रानियों की आपसे पटती नहीं। रियासत के सरदार आप लोगों के झगड़ो से अपने को बचाये हुये है। लोचनसिंह अभी जीवित है और मैंने कभी आपका कोई विगाड़ नहीं किया, फिर न जाने राजा मुझसे क्यों रुष्ट है।'

कुञ्जरसिंह ने एक क्षण के लिये कुछ सोचा। बोला—'जानता हूं, तुम घोर नास्तिक हो। तुम केवल दर्शनों के लिये यहाँ कदापि नहीं आये हो। बोलो, काहे के लिये आये हो ?'

'आप जानते है।' रामदयाल ने बनावटी विनय के साथ उत्तर दिया 'मैं और कुछ नही, तो स्वामिधर्मी तो अवश्य हूं। मेरे स्वामी का विश्वास इस स्थान पर है। इसीलिये आया हूं।'

कुञ्जरसिंह जिस बात का संदेह रामदयाल पर कर रहा था, उसे प्रकट करना उचित नही समझा, परन्तु भर्त्सना करने की प्रबल इच्छा जान पडी थी और भर्त्सना नही कर पाई थी इसलिये रामदयाल का गला घोंट डालने का भाव तो मन मे उठा, परन्तु जीभ या हाथ ने कोई तैयारी नही दिखलाई।

रामदयाल कनखियों से देखकर धीरे से बोला—'यदि राजा क्षमा करें, तो एक बात कहू ?'

कुञ्जरसिंह ने मुँह से कुछ न कहकर सिर से हाँ का संकेत किया।

रामदयाल ने कहा—'इस बार दोनों रानियाँ देवीसिंह के विरुद्ध है। दोनो दलीपनगर छोड़कर चली आई है। आप उनके साथ अपनी शक्ति सम्मिलित कर दें और कालपी के नवाब के साथ घृणा न करें तो दलीपनगर का सिंहासन आपके पाँव-तले शीघ्र आ जायगा।'

'मै सदा, रानियो के सम्मान का ध्यान रखता आया हूं, परन्तु अनुचित कार्यों का सहायक नही हो सका। कालपी के नवाब के ऊपर भी कोई है, जानते हो ?'

'हॉ, राजा। दिल्ली हे। परन्तु वहॉ किसी की कोई कुछ भी सुनने वाला नहीं मालूम पड़ता, ऐसा मैं आप ही लोगों से सुना करता हूं।'

'खैर, देखा जायगा, परन्तु मै एक बात से तुम्हें सावधान करना चाहता हूं।'

'वह क्या है राजा ?'

'तुमने जिसके प्रति अपना अशुद्ध प्रयत्न पालर में किया था, उनसे दूर रहना—बहुत दूर नही तो मैं सिंहासन प्राप्ति की अभिलाषा को एक ओर रख दूंगा और तुम्हें उस प्रयत्न के किये पर पछताने को भी समय न मिलने दूगा।'

कुञ्जरसिंह ने अन्तिम बात बड़े जोश के साथ कही थी।

रामदयाल हँसा। वह हँसी कुञ्जर के मन मे छुरी की तरह चुभ

रामदयाल बोला-'राजा, यदि मैंने कुछ किया था, तो अपने मालिक की आज्ञा से। जो कुछ करूँगा, अब अपने स्वामी की भलाई के लिये। परन्तु यह बचन देता हूं कि आपका मार्ग लाँघने की चेष्टा न करूँगा। यदि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें, तो मैं यही विनती करूँगा कि यहाँ न पड़े रहकर आप राज्य-प्राप्ति का कुछ और भी उपाय करें। पूजार्चा तो उन लोगो के लिये है, जो हथियार का भरोसा कम करते हैं और अन्य बातों का अधिक।'

सुनकर कुञ्जर विकल हो गया। बोला-'मै तुम्हें स्वामिद्रोही नहीं कहता। परन्तु तुम नीच अवश्य हो।'

'यह तो राजा लोगों का कायदा ही है।' रामदयाल ने कुटिल मुस्कराहट के साथ कहा—'काम निकल जाने पर नौकरों को धता बता देते हैं। गरीब तो सदा से ही दोषी चला आया है और अनन्त काल से नीच।'

'मैं पूछता हूं, तुम उस लड़की से कल शाम को क्या-घुल-घुलकर बातें कर रहे थे?' कुञ्जर ने एकाएक पूछा।

प्रश्न के आकस्मिक वेग से बिलकुल विचलित न होकर रामदयाल ने उत्तर दिया—'पुजारिन से तो मेरी कोई बातचीत नही हुई।'

'वह नही।' कुञ्जर जी कड़ा करके बोला-'तुम उस दूसरी लड़की से घुल-घुलकर क्या बातें करते थे?'

'वह कौन है, आप जानते है?' रामदयाल ने दृढ़तापूर्वक पूछा। कुन्जरसिंह ने अवहेलना की दृष्टि से उसकी ओर देखा।

रामदयाल ने कहा—'वह राजा देवीसिंह की रानी है।'

कुन्जरसिंह सन्नाटे में आ गया। एक कदम पीछे हट गया, बोला—'झूठ, असम्भव?'

कोई उत्तर न देकर रामदयाल फिर मन्दिर में चला गया।

[५४]

रामदयाल को मन्दिर में घुसते हुये नरपति मिला। वह कहीं बाहर जा रहा था। कुन्जरसिंह रामदयाल के पीछे-पीछे नहीं आया था। कानाफूसी-सी करते हुये नरपति बोला—'यहाँ के राजा से कुछ काम हो, तो मेरे साथ चलो।'

रामदयाल बोला-'अभी तो नहीं, किसी और समय चलूंगा। एकाध दिन यहाँ रहकर मैं काम से बाहर जाऊँगा। लौटकर फिर विनती करूँगा।'

नरपति चला गया।

कुमुद वहाँ दिखाई नही पड़ी। गोमती को एकान्त मे देखकर रामदयाल ने एक ओर बुलाने का सम्मान-पूर्वक संकेत किया। वह आ गई।

रामदयाल ने कहा—'जिसे आपने कुन्जरसिंह का सेनापति समझ रक्खा था, वह सेनापति नही है।'

'तब कौन है?' गोमती ने जरा चिन्तित होकर पूछा।

'स्वयं कुन्जरसिंह।'

गोमती चौंकी। रामदयाल ने निवारण करते हुये कहा—'आप आश्चर्य न करें, वह महाराज को हानि पहुंचाने के लिये तरह-तरह के उपायों की रचना में सदा व्यस्त रहते है। परन्तु मैं इसका उपाय करूँगा, आप चिन्तित न हों। केवल एक भीख माँगता हूं।'

स्नेह-पूर्वक गोमती बोली—'क्या चाहते हो रामदयाल।'

'आप इस भेद को कदापि किसी के सामने प्रकट न करें। रामदयाल ने प्रस्ताव किया—मेरी अनुपस्थिति मे यहाँ जो कुछ हो, उस पर अपनी दृष्टि रक्खे और मेरे ऊपर विश्वास। मै एक-आध रोज के लिये बाहर जाऊँगा। वहाँ से लौटकर अपनी और योजनायें बतलाऊँगा जैसा कुछ उस समय निश्चय हो उसके अनुसार फिर काम करें।'

गोमती ने सरलता-पूर्वक कहा—'मैं तो कुछ न कुछ करने के लिये बहुत दिनों से वेचैन हो रही हूं, परन्तु यह ठीक-ठीक समझ में नहीं आता था कि क्या करूँ। महाराज के पास शीघ्र जाओगे न ?'

'अवश्य।'

'उन्हें हमारा यहाँ का रहना मालूम है ?'

'नहीं मालूम है, परन्तु अव मालूम हो जायगा। मेरी अभिलाषा है, कभी वह यहाँ न आवें, और न आप वहाँ जायँ।'

अभिमान-पूर्वक गोमती बोली—'जब तक वह स्वयं यहाँ नही आयेंगे मैं दलीपनगर नहीं जाऊँगी।'

रामदयाल नम्रता-पूर्ण स्वर में बोला—'यह तो उचित ही है, परन्तु इस समय सरकार यह आशा न करें और न मुझे ही आज्ञा दें कि महाराज यहाँ आवें।'

'नही मैं ऐसा क्यों करने चली ? क्या यहाँ आने से उनके किसी अनिष्ट की सम्भावना है ?'

'वहुत वड़ी। कालपी का नवाब उनका परम शत्रु है। कुञ्जरसिंह उनका प्रति-द्वन्दी इस मन्दिर में है मृत राजा की रानियाँ उनके विरुद्ध खड्गहस्त होकर विचरण कर रही है। ऐसी हालत में उनका अकेले-दुकेले इस स्थान में आना बड़ा संकट-पूर्ण होगा। और ससैन्य वह अभी आ नही सकते। मै स्वयं रानियों का आदमी वनकर घूम रहा हूं। मुझे लोग महाराज का सेवक नहीं समझते।'

गोमती ने प्रसन्न होकर कहा—'तुम वड़े चतुर मनुष्य जान पड़ते हो, रामदयाल। धन्य है महाराज, जिनका ऐसा दक्ष और पुरुषार्थी सेवक हो तुम कव तक यहाँ रहोगे ?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'एक आध दिन और हूं। जरा यहाँ के राजा को कुञ्जर के पक्ष से विमुख कर लूँ, या कम-से कम उत्साह रहित कर दूँ, तब दूसरा काम देखूं।'

यह कहकर रामदयाल एकटक गोमती की ओर देखने लगा मानो कुछ कहना चाहता हो और कहने के लिये या तो शब्द न मिलते हों, अथवा हिम्मत न पड़ती हो।

गोमती बोली—'क्या कहते हो, कहो।'

'कहते डर लगता है।' रामदयाल बोला।

'कहो, कहो।' गोमती प्रोत्साहन देते हुये बोली।

'आपका इन पुजारिन के विषय में क्या विश्वास है?' उसने पूछा।

गोमती ने उत्तर दिया—'बहुत शुद्ध है। दुर्गा से उनका सम्पर्क है। लोग उन्हे देवी का अवतार समझते है।'

'यह सब ठीक है।' रामदयाल आँखें नीची करके बोला—'परन्तु मेरी यह प्रार्थना है कि आप जरा यह अच्छी तरह से देखती रहें कि कुञ्जरसिंह का वह कितना पक्ष करती हैं और क्यों करती है? आपको स्मरण होगा कि उन्होंने मुझे स्वामी की सफलता के लिये पूरा आशीर्वाद नहीं दिया।'

कुछ सोचकर गोमती ने कहा—'मुझे खूब याद है। उन्होंने एकबार आशीर्वाद दे दिया है। दूसरी बार आशीर्वाद फिर भी दे देंगी। क्या वह तुम्हें पहचानती है?'

'नहीं, वह मुझे नहीं जानती।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'परन्तु मुझे विश्वास है कि वह कुञ्जरसिंह को पहचानती है। उन्होने यह समझकर मुझे पूरा आशीर्वाद नही दिया कि कही कुञ्जरसिंह के विरुद्ध न जा पड़े।'

गोमती गम्भीर चिन्तन करने लगी। रामदयाल बोला—'मैं केवल यह विनती करता हूं कि आप सावधानी के साथ वस्तुस्थिति का निरीक्षण करती रहें। इस बात का भय न करें कि यह देवी का अवतार है—'

'कहो; कहो, और क्या कहते हो, मैं भय किसी का नही करती।' गोमती ने आग्रह-पूर्वक कहा।

वह बोला—'मेरा यह विश्वास है कि इस कलयुग में अवतार नहीं होता। मैं आपसे केवल इतना अनुरोध करता हूं कि आप खूब देख-भाल करती रहें।'

[५५]

इसी समय बाहर से कुंअर आकर अपनी कोठरी में चला गया।

कुञ्जरसिंह को जितनी बेचैनी उस दिन हुई, उतनी लोचनसिंह के मुकाबले में सिंहगढ़ छोड़ने के लिये विवश होने पर भी नही हुई थी। उसे भय हुआ कि रामदयाल कुमुद को किसी षड़यन्त्र मे फासने और स्वयं उसे किसी विपद् के कुचक्र में डालने की चिन्ता में है। उसने कुमुद से उसी दिन अकेले में कुछ कहने का निश्चय किया।

कई बार निराला पाने की कोशिश की, परन्तु कभी गोमती को उसके पास पाया और कभी किसी दर्शन करने वाले को। कुमुद ने भी उसकी विचलित अवस्था को एक आध बार देखा और उसने यह भी देखा कि उसकी दृष्टि में कुछ अधिक तत्परता, कुछ अधिक आग्रह है। गोमती ने भी उसे विना किसी उद्देश्य के इधर-उधर भटकते हुये देखा और वह सावधानी के साथ उनके विषय में विचार करने लगी। कुञ्जर ने सोचा—'यह स्त्री मेरी ओर आँख गड़ाकर क्यों देखती है? क्या राम-दयाल ने अपने कुचक्र मे इसे भी शामिल किया है?'

अन्त में कुञ्जरसिंह को दोपहर के लगभग एक अवसर हाथ लगा गोमती रसोई बनाने के लिये एक कोठरी में चली गई। दूसरी में नरपति को कुमुद भोजन कराने लगी। रामदयाल मन्दिर के एक कोने में मुँह पर चादर ढाँपे पड़ा था। कुञ्जरसिंह मन्दिर के आँगन मे जाकर ऐसी जगह खड़ा हो गया, जहाँ नरपति उसे नहीं देख सकता था, केवल कुमुद देख सकती थी परन्तु कुमुद ने उसकी ओर देखा नहीं। जब धूप में खड़े-खड़े कुमुद की ओर टकटकी लगाये कुञ्जर को कई पल वीत गये, तब उसने धीरे-से पैर की आहट की।

कुमुद ने देखा। उधर रामदयाल ने भी चादर को जरा सा खिस-काकर देखा। कुन्जर ने कुमुद को हाथ जोड़कर सिर से बुलाने का संकेत किया। देखकर भी वह कुछ समय तक वही बैठी रही। जलती धूप मे कुन्जर वही खड़ा रहा।

यथेष्ठ से कुछ अधिक भोजन-सामग्री नरपति के सामने रखकर कुमुद ने पिता से कहा—'मैं अभी आती हूं।'

कभी-कभी सनक के साथ काम करने का कुमुद को अभ्यास पड़ गया था। उसका पिता इस गुण में किसी देवी व्यापार का लक्ष्य समझा करता था। इसलिये उसने कुमुद से कोई पूछताँछ नहीं की।

आँगन में प्रवेश करते ही कुमुद ने चारों ओर आँख डाली। गोमती वहाँ न थी, मन्दिर की बगलवाली छोटी-सी दलान में रामदयाल चादर से मुंह ढके पड़ा था। वहाँ और कोई न था।

कुन्जरसिंह ने मन्दिर के बाहर चलने का इशारा करते हुये दरवाजे की ओर कदम बडाया। कुमुद भीतर जाकर देवालय की चौखट पर जा बैठीं। कुन्जर लौटकर वही जा पहुंचा। नीचे बैठ गया। कुमुद भी चौखट से उतरकर नीचे बैठने को जरा हिली, परन्तु फिर जहाँ—की—तहाँ बैठी रही। उस स्थान से जहाँ रामदयाल लेटा था ओट थी।

'क्या है?' बहुत बारीक स्वर में निस्संकोच भाव से कुमुद ने पूछा।

'क्या कहूं बहुत दिनों से—बड़ी देर से कहना चाहता था।' कुन्जर बोला—'आप मेरी ढिठाई क्षमा करेंगी।'

'कहिये।' कुमुद ने कहा—'ऐसी क्या बात है जो आप अकेले में कहना चाहते हैं?'

प्रश्न की हिम—तुल्य ठण्डक से कुन्जर सिकुड़—सा गया।

बोला—'आप मुझे नही जानती है, न जानने की आवश्यकता है और न कभी जान सकेंगी, क्योंकि कभी फिर इस जीवन मे आपके दर्शन होंगे इसमें पूर्ण सन्देह है।'

कुमुद का होंठ कुछ कहने के लिये जरा-सा हिला, परन्तु बोली नहीं। उत्सुकता के साथ कुञ्जर की ओर देखने लगी।

उसने कहा—'मैं दलीपनगर का एक अभागा हूं। एक दिन—उस दिन, जब संक्रांति का स्नान करने दलीपनगर के महाराज पालर आये थे; मैंने मन्दिर में दर्शन किये थे। उस समय यह लड़की आपके साथ न थी।'

'मैं आपको जानती हूं।' आँखें बिना नीची किये हुये कुमुद ने कहा।

'मुझे ?' कुञ्जर ने आश्चर्य प्रकट किया—'मुझे आप जानती हैं।' फिर आश्चर्य संयत करके बोला—'हाँ किसी-किसी भक्त का कुछ स्मरण आपको रह सकता है, परन्तु मैं कौन हूं, यह आप न जानती होंगी।'

'जानती हूं अथवा न भी जानती होऊँ तो भी कोई हानि नहीं।' कुमुद ने अपनी साधारण मिठास के साथ कहा—'आप अपनी बात तो कहिये।'

कुमुद की उँगली में अपनी हीरे की अंगूठी देखते हुये कुञ्जरसिंह बोला—'इस अंगूठी ने मेरा नाम बतलाया होगा। एक दिन वह था और एक दिन आज है। आपकी कृपा बनी रहे।'

कुमुद ने अंगूठी वाले हाथ को जरा पीछे खींचकर कहा-'मुझे पिताजी को परोसने के लिये जाना है। आपने किसलिये बुलाया था ?'

'यहाँ कोई सङ्कट उपस्थित होने वाला है।' कुन्जरसिंह बोला—'षड़यन्त्र रचे जा रहे है। यह जो पुरुष कल यहाँ आया है बड़ा भङ्कर और नीच है। उस लड़की के साथ कुछ सलाह कर रहा था। आपकी रक्षा का कुछ उपाय होना चाहिये।'

नेत्र स्थिर करके कुमुद ने कहा—'मेरे लिये किसी बात की चिन्ता न करना चाहिये। दुर्गा जी की कृपा से मेरे ऊपर कोई संकट कभी नहीं आ सकता। यह लड़की मेरे गाँव की है। उस दिन जब पालर में युद्ध हुआ, इस लड़की का विवाह उस पुरुष के साथ होने जा रहा था, जो

अव दलीपनगर का राजा है । वह अपने पति के लिये चिन्तित रहा करती है और कोई वात नहीं है ।'

आने वाले सङ्कट के विस्तार को छोटा समझे जाने के कारण कुन्जर-सिंह अधिक आग्रह के स्वर में वोला—'मैंने दलीपनगर के सिंहासन की रक्षा में प्राणों के अतिरिक्त लगभग सभी कुछ त्यागा है। आशीर्वाद दिया जाय कि इन चरणों की रक्षा में उनका भी उत्सर्ग कर दूं ।'

किसी अन्य को दूसरे समय दिये गये एक वरदान का स्मरण करके कुमुद ने क़हा—'आपको ऐसी कोई चिन्ता न करनी चाहिये ।' कुमुद ने विश्वासपूर्ण स्वर मे बात कही परन्तु उसमें किसी तरह की अवहेलना न थी।

कुञ्जरसिंह ने हाथ जोड़कर कहा-'आशीर्वाद दीजिये कि इन चरणों के लिये ही जीवन धारण करू ।'

कुमुद के मुख पर लालिमा छा गई । नेत्रों में निस्संकोचता का वह भाव न रहा । एक ओर आँखें करके बोली—'आपकी बात मुझे विचित्र-सी जान पडती है । किसी तरह के कष्ट की कोई आशंका मुझे इस समय नही भास रही है । यदि कोई होगी, तो मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि रक्षा का उचित उपाय किया जायगा ।'

'मेरी यह अभिलाषा है कि उस उपाय में मै भी हाथ वटाऊँ ।'

'जब आवश्यकता होगी आपसे कहने में निषेध न होगा ।'

'मुझे मन्त्र-दीक्षा दे दी जाय, तो मै भी पूजार्चा में ही अपना सम्पूर्ण समय व्यतीत करू ।'

'आप क्षत्रिय है और में ब्राह्मण नही हूं ।'

'परन्तु आप देवी है और मै देवी का उपासक ।'

'आपको और तो कुछ नहीं कहना है ? मैं पिताजी के पास जाती हूं ।'

उत्तर की प्रतीक्षा विना किये ही कुमुद वहाँ से चली गई । जब तक वह रसोई घर मे नही पहुंच गई कुन्जरसिंह सोने को लजाने वाले उसके पैरों को देखता रहा । उसे ऐसा जान पड़ा जैसे उसकी नाड़ी में बिजली

कौंध गई हो। जब वहाँ से चला, तब उसकी आँखों में तारे-से छिटक रहे थे। उस समय उसने यह नहीं देखा कि दालान में रामदयाल अपने स्थान पर न था।

[५६]

उसी दिन रामदयाल ने अपनी गठरी-मुठरी बाँधकर जाने की तैयारी की।

नरपति से कहा—'कुछ दिनों के लिये बिदा माँगता हूं।'

'परन्तु लौटकर जल्द आना, दुर्गा का स्मरण करना।' नरपति ने अनुरोध किया।

कुञ्जरसिंह ने अपनी कोठरी से रामदयाल की बात सुनकर जरा चैन की साँस ली।

रामदयाल ने जाने के पहले गोमती को अकेले में ले जाकर बात-चीत की। बोला—'आप एक बार कुमुद के सामने कुञ्जरसिंह का तो नाम लीजियेगा ?'

'क्यों वह उसे पहचानती है क्या ?' गोमती ने पूछा।

'जान पहचान से भी कुछ अधिक गहरा रङ्ग है। मुझे भय है, शायद महाराज के खिलाफ वह भी कुञ्जरसिंह को कुछ मन्त्रणा दें।'

'महाराज के खिलाफ।' मैं इस बात से बहुत डरती हूं। उनके पास दुर्गा की शक्ति है। इसमें तो रामदयाल, महाराज का बड़ा अनिष्ट होगा।'

'जरा भी न होगा।' रामदयाल ढिठाई के साथ बोला—'मैंने आज कुञ्जरसिंह और कुमुद का सम्भाषण सुना है। दोनों पहले से एक दूसरे को जानते है। आप महाराज की हित-कामना और कुञ्जरसिंह के अहित-चिन्तन की बात कहें, तब आपको मालूम हो जायगा कि वास्तव में इन दोनों में क्या सम्बन्ध है और तब आपको विश्वास हो जायगा कि कुमुद देवी का अवतार-ववतार कुछ नहीं है।'

गोमती ने बात काटकर कहा—'ओह ! अधिक कुछ मत कहो, इस विषय पर मैं जाँच-पडताल में लग रही हूं।' फिर एक क्षण वाद वोली—'यह सम्भापण किस समय हुआ था ?'

उत्तर मिला—'आप जव रसोई वना रही थीं। ये हाथ और रसोई बनाने का वह कष्ट ! हे भगवान !'

गोमती ने कहा—'यह सव कुछ नही है रामदयाल। जव जैसा समय आवे, तव वैसा भुगत लेना चाहिये। तुम महाराज के पास जा रहे हो ?'

'हाँ अभी जा रहा हूं।'

'महाराज तो दलीपनगर मे ही होंगे ?'

'वहाँ पहुंचकर ठीक-ठीक मालूम होगा। उन्हें संसार भर के तो झंझट घेरे रहते है।'

'उनकी सेना तो वड़ी अच्छी होगी ? कालपी के नवाव का सामना अवकी वार खूव अच्छी तरह करेंगे।'

'इसमे सन्देह को कोई स्थान नही है।'

'महाराज का स्वभाव तो बहुत दयालु है ?'

'अपने लोगों पर बडी दया करते हैं वड़े वीर और दानी हैं।'

'तुम उनके पास सदा रहते हो ?'

'जव कभी दलीपनगर में होता हू, तव।'

'वह और किस-किस विषय में प्रीति रखते है ? अर्थात शास्त्र-चर्चा, विद्वानों का संग इत्यादि भी होता है ?'

'मैं स्वयं इन वातों को कम समझता हूं, परन्तु महाराज हैं बड़े रसिक।'

'रसिक !' आश्चर्य के साथ गोमती ने कहा—'रसिक से तुम्हारा क्या प्रयोजन ?'

रामदयाल ने चतुरता प्रकट न करते हुये उत्तर दिया—'जव कभी महीने पखवाड़े में एक आध घड़ी का अवकाश मिल जाता है, कुछ गाना वाना सुन लेते है और कुछ नहीं।'

गोमती बोली—'हाँ, राजा है।'

फिर एक क्षण बाद पूछा—'कुमुद और उस व्यक्ति में, जिसे तुमने बतलाया कि कुञ्जरसिंह है, कोई विशेष बातचीत हुई ?'

उसने उत्तर दिया—'ऐसे किसी विशेष वाक्य को सम्पूर्ण प्रसङ्ग से निकालकर बतलाने से मेरी बात को पूरी पुष्टि न होगी परन्तु सारे बार्तालाप का प्रयोजन स्नेह या प्रेम को व्यक्त करने वाला अवश्य था।'

गोमती ने अवहेलना के साथ कहा—'ऊहँ, मुझे क्या करना है ? देखा जायगा। रामदयाल, तुम महाराज से यह मत कहना कि मैं अपनी रसोई हाथ से बनाती हूं।'

रामदयाल बोला—'आपने अच्छा किया, जो मना कर दिया, नहीं तो अवश्य कह देता। महाराज को अब तक अवश्य कुछ खबर लेनी थी, परन्तु उन्हें मालूम न था कि आप यहाँ हैं।,

'अब भी।' गोमती ने कहा—'वह मेरी चिंता न करें। पहले अपने राज्य को सम्भाल लें। जब तक शांति स्थापित न हो ले और वह बेखटके हो जायें; तब इधर का ध्यान करें और कभी-कभी गाना बजाना अवश्य सुन लिया करें।'

रामदयाल बोला—'सो तो मैं उनके स्वभाव को खूब जानता हूँ। वह अभी न आवेंगे।'

रामदयाल जाने को उद्यत हुआ। गोमती ने कहा—'रामदयाल, तुम भूल मत जाना। जल्दी-से जल्दी यहाँ की खबर लेना। एक बात का स्मरण रखना कि महाराज यहाँ छिप-लुककर न आवें। शत्रु बहुत पास है। पता लगाने पर भारी अनिष्ट होगा।'

रामदयाल जुहार करके चला गया।

[५७]

रानियो के विद्रोह का पता राजा देवीसिंह को शीघ्र लग गया। जनार्दन को बहुत खेद और क्षोभ हुआ। खोज लगाने पर उसे मालूम हो

गया कि रानियाँ रामनगर की गढ़ी में पहुंच गई है। रामनगर का पत-राखन दलीपनगर का जागीदार न था और अपेक्षाकृत भांडेर के अधिक निकट होने के कारण उसके ऊपर कुछ जोर नही चल सकता था। एक निश्चय करके जनार्दन राजा के पास गया।

राजा ने कहा—'तुम्हारा कहना न माना, इसलिये यह एक नई समस्या और कष्ट देने को खड़ी हो गई।' और मुस्कराये।

जनार्दन ने देखा शब्द जिस कष्ट को व्यक्त करने के लिये कहे गये थे, वह उसकी मुस्कराहट में न जाने कहाँ विलीन हो गये।

जनार्दन उसके स्वभाव से परिचित हो गया था। बोला—'अब जैसे बनेगा, वैसे इस समस्या को भी देखना है। एक उपाय सोचा है।'

'वह क्या ?' राजा ने सतर्क होकर पूछा।

मन्त्री ने उत्तर दिया—'मैं एक विश्वस्त दूत दिल्ली को रवाना करता हूँ। वह सैयदों की चिट्ठी कालपी के नवाब के नाम लायेगा।'

राजा बोले—'उस चिट्ठी का असर एक वर्ष पीछे दिखलाई पड़ेगा।' कौन पूछता है, उस अन्धेरे गड्ढे में कि उस चिट्ठी का क्या होना चाहिये।'

'वह ऐसी चिट्ठी न होगी।' जनार्दन ने कहा—'कालपी के नवाब की सेना के लिये उस चिट्ठी का काफी महत्व होगा अर्थात् नवाब अलीमर्दान को दिल्ली से बुलावा आवेगा।'

'दूत कौन है आपका ?' राजा ने पूछा।

'हकीमजी।' मन्त्री ने उत्तर दिया—'वह स्वयं सैयद हैं और राजनीति में भी निपुण है।'

'और वह हमारे राज्य से कुछ विरक्त-से भी रहते हैं।' राजा ने कहा।

'नहीं महाराज।' जनार्दन बोला—'आपके उदार और विश्वास-पूर्ण वर्ताव के कारण वह बहुत संतुष्ट हैं। मुझसे भी मित्रता का कुछ

नाता मानते है। उनके बाल-बच्चे यहीं है और वह कृतज्ञ-हृदय पुरुष हैं। दलीपनगर दिल्ली के मुगल-सम्राटों का सहायक रहता चला आया है। हकीमजी की बात मानी जायगी और अलीमर्दान को अपना हठ छोड़ना पड़ेगा। इधर-उधर कही थोड़े दिन के लिये चला जाय फिर रानियों के विद्रोह का दमन बहुत सहज हो जायगा। अवस्था शीघ्र कुछ ऐसी आती जा रही है कि थोड़े दिनों बाद हमारा कोई कुछ न बिगाड़ सकेगा।'

राजा ने कहा—'मुठभेड़ बच जाय, तो अच्छा है, नही तो हमें एक जोर का हमला कालपी के नवाब पर भाँडेर में शायद करना पड़ेगा। विलम्ब होने से रानियाँ बाहर कुछ सरदारों को अपनी ओर कर लेंगी और हमारे यहाँ के भी कुछ मनमुटाव रखने वाले जागीरदार उमड़ पड़ेंगे।'

'उधर कुञ्जरसिंह भी अभी बने हुये है।' जनार्दन बोला—'उनकी ओर से बहुत कम खटका है। किसी बात पर बहुत दिन जमे रहना उनके स्वभाव मे नही है। आजकल वह विराटा की ओर है। उन्होंने अलीमर्दान के साथ सन्धि कर ली, तब अवश्य अवस्था कुछ कष्ट साध्य हो जायगी। उनका छोटी रानी के साथ मेल शायद हो जाय, परन्तु अलीमर्दान के साथ न होगा। मैने उनकी गति की परख के लिये जासूस छोड़ रक्खे है। ठीक बात मालूम होने पर निवेदन करूंगा। तब तक मै हकीमजी को दिल्ली भेजकर अलीमर्दान का प्रबन्ध करता हूं।'

जनार्दन के इस निर्णय के अनुसार हकीम को दिल्ली भेजा गया।

[५८]

भाँडेर का पुराना नाम लोग भद्रावती बतलाते है। यह पहूज नदी के पश्चिमीय किनारे पर बसा हुआ है। खण्डहरो पर खण्डहर हो गये है। किसी समय बड़ा भारी नगर रहा होगा। अब मसजिदों और सोन तलैया के मन्दिर के सिवा और खास इमारत नही बची है। पहूज के पूर्वीय किनारे पर जङ्गल से दबा और भरको से कटा हुआ एक विशाल प्राचीन नगर है। नदी के दोनों ओर भरको, मैदानो, टीलो और पहाड़ियों

के विशृङ्खल क्रम हैं। पहूज छोटी-सी, परन्तु पानी वाली नदी है और वड़ी सुहावनी है। भाँडेर से दो-ढाई कोस दक्षिण-पूर्व की ओर जहाँ से कुछ अन्तर पर लहराती हुई पहूज नदी उत्तर-पश्चिम की ओर आई है-सालोन भरीली की पहाड़ियाँ है। इनके बीच मे पत्थर का एक विशाल तथा वहुत प्राचीन मन्दिर है। मन्दिर में महादेव जी की मूर्ति प्रतिष्ठित है। यहाँ से विराटा पश्चिम की ओर करीब छः कोस है। यहीं अलीम-र्दान अपनी सेना लिये पड़ा था।

एक दिन रामदयाल अन्धेरे में अलीमर्दान की छावनी में आया। जरा दिक्कत के वाद अलीमर्दान के डेरे पर पहुंचा। कालेखाँ उसके पास मौजूद था।

रामदयाल को अलीमर्दान ने पहचान लिया। पूछा—'तुम यहाँ कैसे आ गये ? सुना था, कैद में हो।'

'कैद मे अवश्य था परन्तु छूट कर आ गया हूं। महारानी भी कैद कर ली गई थी, परन्तु वह भी स्वतन्त्र हो गई हैं।'

'अव वह कहाँ हैं ?'

'रामनगर में राव पतराखन की गढ़ी मे।'

अलीमर्दान ने आश्चर्य प्रकट किया—'उन जैसी वीर स्त्री शायद ही कही हो। कैसी जवाँमर्द और दिलेर है ! मुझे उनके राखीवन्द भाई होने का अभिमान है।'

रामदयाल वोला—'प्रण निभाने का ठीक समय आ गया है। दलीप-नगर पर चढ़ाई करने के लिये प्रार्थना करने को यहाँ भेजा गया हूं।'

अलीमर्दान ने कहा—'मैं दिल्ली के समाचारों के लिये ठहरा हुआ हूं। इस लड़ाई मे उलझ जाने के वाद यदि दिल्ली का ऐसा समाचार मिला, जिससे किसी दूसरी जगह जाने का निश्चय करना पड़ा तो बुरा होगा।'

'परन्तु रामदयाल ने विनती की—'आप हम लोगों को मँझधार में नही छोड़ सकते। महारानी आपके भरोसे क़ैद से स्वतन्त्र हुई है। बड़ी रानी ने भी अबकी बार उनका साथ दिया है।'

'तब तो राज्य के कुछ अधिक सरदार उनके साथ होंगे।' अलीमर्दान ने सम्मति प्रकट की—'सरदार महारानी के साथ हैं या उन्होंने साथ देने का वचन दिया है?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'वचन दिया है। अवसर आते ही रणस्थल पहुंच जायेंगे।'

'कुन्जरसिंह कहां हैं?'

'उनके विषय में भी, निवेदन करने के लिये आया हूं।'

यह कहकर रामदयाल ने ऊपर की ओर एक क्षण के लिये देखकर सिर नीचा कर लिया। कालेखाँ के प्रति इस संकेत को समझकर अलीमर्दान ने कहा—'तुम्हें जो कुछ कहना हो, बेधड़क होकर कहो।'

एक बार कालेखाँ और फिर अलीमर्दान की ओर देखकर रामदयाल बोला—'मै आपको अच्छी तरह जानता हूं। आप कुन्जरसिंह से भलीभाँति परिचित है। वह इस समय विराटा की गढ़ी मे है। राजा देवीसिंह से शायद अकेले ही लड़ने की चिन्ता कर रहे है।'

अलीमर्दान ने कहा—'विराटा का सबदलसिंह क्या कुन्जरसिंह का तरफ़दार है?'

'नहीं सरकार, उन्होंने कोई वचन नहीं दिया है।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'सच्ची बात कहूंगा। विराटा के राजा को अभी पता भी नही है कि कुन्जरसिह गढ़ी में है।'

'यह कैसे?' अलीमर्दान ने अचम्भा किया।

रामदयाल बोला—'गढ़ी में देवी का मन्दिर है। पालर की वही पुजारिन लड़की उस मंदिर में छुपी हुई है और वही पर कुंजरसिंह है।'

'ऐं!' कालेखाँ ने कहा।

'है!' अलीमर्दान को ताज्जुब हुआ।

'हाँ सरकार ।' रामदयाल बोला—'मैं अपनी आँख से देख आया हूं ।'

अलीमर्दान ने कुछ सोचकर कहा—'मै कुछ दिनों से पता लगा रहा था, परन्तु मुझे सफलता नही मिली ।'

कालेखाँ बोला—'अब तो हुजूर को पक्का पता लग गया । कोई शक नही रहा ।'

'यह सब ठीक है ।' अलीमर्दान ने कहा—'परन्तु मैं मन्दिर या मंदिर की पुजारिन किसी के साथ कोई ज्यादती नहीं करना चाहता ।'

कालेखाँ ने आग्रह किया—'मन्दिर या मूर्ति के साथ ज्यादती करने का हुजूर ने कभी इरादा जाहिर नही किया, परन्तु मेरी विनती है कि वह पुजारिन देवी या मन्दिर तो है नही ।'

'नही कालेखाँ ।' अलीमर्दान ने दृढ़ता के साथ कहा—'हिन्दू लोग उस पर विश्वास करते है । वह अवतार हो या न हो मैं हिन्दुओं के जी दुखाने वाले किसी काम को न करूँगा ।'

रामदयाल हाथ जोड़कर बोला—'दीनबन्धु वह न तो अवतार है और न कुछ और । मै अपनी आँखो से सब बातें अच्छी तरह देख आया हू । उसका बाप हद दर्जे का लालची है और वह स्वयं कुञ्जरसिह के पंजे मे शीघ्र आने वाली है ।'

'क्या ?' अलीमर्दान ने आश्चर्य-सूचक प्रश्न किया ।

'हाँ सरकार ।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'मैने अपने कानों कुञ्जरसिह की बातचीत सुनी है । अभी वह उनके हाथों नही चढ़ी है, परन्तु औरत है, उसका कुछ ठीक है नही, कब कुन्जरसिह के साथ कहाँ भाग जाय ।'

'हुजूर को रामदयाल की शाख का यकीन करना पड़ेगा ।' कालेखाँ ने कहा ।

अलीमर्दान थोड़ी देर तक चुप रहा । सन्नाटा छाया रहा ।

रामदयाल ने स्तब्धता भङ्ग की । बोला—'सरकार मेरे साथ वेश बदलकर चले तो अपनी आँखो सब देख ले ।'

अलीमर्दान ने कालेखाँ की ओर गुप्त रीति से देखा। एक क्षण बाद बोला—'मुझे महारानी साहब से बातचीत करने के लिये एक दिन जाना है। वेश बदलकर विराटा भी हो आऊँगा। परन्तु मैं यह चाहता हूं कि रामदयाल, महारानी के पास का जाना अभी किसी को मालूम न हो। मैं कालेखाँ को भी साथ ले चलूँगा।'

[५९]

कुञ्जरसिंह को दलीपनगर का मुकुट प्राप्त करने की पूरी आशा थी, परन्तु वह सोचता था कि देवीसिंह बिना अधिकार के सत्ता धारण किये हुये है, इसलिये जी में कड़ी ठेस-सी लगी रहती थी। इसके सिवा देवीसिंह से पराजय का जब वह कारण ढूँढ़ता था, तब उसका मन यही उत्तर देता था कि यदि रानी ने गड़बड़ न की होती तो पराजय न होती। परन्तु यदि दलीपनगर का राज्य हाथ आ जाता ? अपनी आशाओं या दुराग्रहों के अनुकूल ही कुञ्जरसिंह ने अपने तर्क और युक्ति के सूत काते।

कुञ्जरसिंह के पास न सेना थी, न सरदार थे और न था उसके पास धन, परन्तु उसके पास निराशाओं की आशा थी। देवीसिंह और जनार्दन के प्रति हृदय में थी कुढन और रक्त में शूरता, जो असम्भव की प्राप्ति के लिये भी उद्योग करने की कभी कभी प्रेरणा कर देती थी।

उसने विराटा का पड़ोस स्वच्छन्द गढ़पतियों को एकत्र करने के लिये ढ़ूँड़ा था। पूर्व उदाहरण से उसे उत्साह मिला था। परन्तु विराटा में आने पर उसने अपने मन को टटोला तो देखा कि वहाँ अब अपने प्रयोजग पर आरूढ़ करने वाली वह निरन्तर लगन नहीं है जो पहले कभी थी। रामदयाल के चले जाने पर उसे कुमुद से फिर एक बार बातचीत करने की अभिलाषा हुई। कोई विशेष विषय न था, कोई अर्थमूलक प्रश्न भी न था, परन्तु बातचीत करने की लालसा प्रबल थी। कुमुद नहीं मिली। प्रयत्न करने पर भी वह उससे न मिल पाया।

तब कुञ्जर अपने दूसरे ध्येय की प्राप्ति या खोज में विराटा से निकल पड़ा। मुसावली से अपना घोड़ा लेकर और शीघ्र लौटाने का वचन देकर वह अपने मित्रों की टोह मे चल दिया।

उधर रामदयाल अलीमर्दान और कालेखाँ को छद्म-वेश में विराटा लिवा लाया। वहां से अलीमर्दान को शीघ्र जाना पड़ा। जीवन में पहले कभी उसने हिन्दुओं के रीति-रिवाज का अभ्यास न किया था, इसलिये बदली हुई वेश-भूषा का निर्वाह करना उसे लगभग असम्भव प्रतीत हुआ। कालेखाँ को अपने बदले हुये वेप से घृणा थी और वह उसके निर्वाह करने का उपाय बहुत लापरवाही और उद्दीपन से कर रहा था। अली-मर्दान इसलिये इच्छा न होते हुये भी शीघ्र लौटा और रामदयाल के साथ रामनगर चला गया। अभ्यास न होने के कारण उन दोनों को नया वेश भारी आफत मालूम हो रहा था, इसलिये पूर्व-निश्चय के प्रतिकूल उन दोनो ने रामनगर पहुंचते-पहुंचते वह वेष करीब-करीब आधा त्याग दिया।

राव पतराखन ने गढ़ी मे प्रवेश के पश्चात उन दोनो के विषय में रामदयाल से पूछा, उसने उत्तर दिया—'महारानी के सरदार है। वेश बदले हुये है। कुछ सलाह करके अभी भाँडेर की ओर कालपी के नवाब से बात करने के लिये लौट जायेंगे। मैं नवाब साहब के पास हो आया हूं। सहायता का वचन पक्का हो गया है।'

इससे पतराखन को बहुत शांति नही मिली। बोला—'सलाह सम्मति यदि शीघ्र स्थिर हो जाय, तो बड़ा सुभीता रहे। लड़ने-भिड़ने का काम पड़े, तब मेरे सिर को आगे देखना, परन्तु अपरिचित आदमियों को इतने बेखटके अपने घर में देखकर मुझे परेशानी होती है।

रामदयाल ने कहा—'घबराइये नही, अब और कोई अपरिचित यहाँ न आयेगा। विराटा के राजा ने सहायता का वचन नहीं दिया है, इस-लिये शीघ्र वहाँ से धावा होगा और हम लोग उस गढ़ी में चले जायेंगे। तब तक तो आपको हमारे आतिथ्य का कष्ट सहन करना ही पड़ेगा।'

राव पतराखन तुरन्त नरम पड़ गया। बोला-'नहीं मेरा यह मतलब न था। आप लोगों का घर है। जब तक जी चाहे, रहें। मैंने केवल अपरिचित लोगों के विषय में कहा था। समय बुरा है, नही तो कोई बात न थी। आवश्यकता पड़ने पर विराटा के ऊपर चढ़ाई आप यहीं से बैठे-बैठे कर सकते है।'

रामदयाल रानियों के पास चला गया। वह अलीमर्दान और कालेखाँ को पहले ही एक ओर बिठला आया था।

राव पतराखन उस दिन विराटा के ध्वस्त होने की कल्पना पर अपने मन को भुलाता रहा।

कभी-कभी जी में सन्देह उठता था—'क्या कालपी का फौजदार सचमुच रानियों की सहायता करेगा।'

[६०]

रामदयाल राव पतराखन से बातचीत करने के उपरान्त रानियों के पास गया।

छोटी रानी से बोला—'नवाब साहब आये है।'

छोटी रानी ने पूछा—'सेना लेकर या अकेले ही?'

रामदयाल ने जवाब दिया—'अपने सेनापति के साथ अकेले आये है। आपका आशीर्वाद लेकर इसी समय भाँडेर चले जायेंगे।'

'अभी क्या सीधे भाँडेर से आ रहे है?' बड़ी रानी ने प्रश्न किया।

'नही महाराज।' उसने बिना कुछ सोचे-समझे उत्तर दिया-विराटा होकर आये है।'

छोटी रानी बोलीं—'विराटा के राजा से कोई बातचीत हो आई है?'

रामदयाल ने कहा—'वहाँ वह देवी का दर्शन करने गये थे।'

यह बात कहने के बाद रामदयाल मन में पछताया।

बड़ी रानी बोली—'दर्शन करने गये थे! वहाँ मन्दिर के भीतर कैसे जाने पाये होगे?'

रामदयाल ने बात बनाई-'उन्होंने दर्शन करने की उत्कट अभिलाषा प्रकट की, तो मै उन्हें वेश बदलवाकर लिवा गया। चढ़ौती चढ़ाकर वह तुरन्त वहाँ से चले आये।'

बड़ी रानी ने कहा-'विराटा की वह देव-कन्या वहाँ है?'

रामदयाल झूठ न बोल सका-'हाँ महाराज, वह वही है।' फिर तुरन्त एक क्षण बाद उसने कहा-'परन्तु जैसा कुञ्जरसिंह राजा और देवीसिंह राजा ने झूठमूठ उड़ा रक्खा, नवाब वैसा आदमी नही है। वह हमारे लोगों की तरह ही देवी-देवताओं को मानता है।'

बड़ी रानी चुप हो गईं।

छोटी रानी ने कहा-'विराटा के राजा से बातचीत हुई या नही?'

'अवसर नही मिला महाराज।' रामदयाल ने उत्तर दिया-'उन्हें भांडेर लौटने की जल्दी पड़ रही है। यदि विराटा का राजा हमारा साथ देने से नाहीं भी करेगा, तो इस में हमारी कुछ हानि नही हो सकती। अपना बल बहुत अधिक है! मैं नवाब की पूरी सेना देखकर चकित हो गया हूं।'

छोटी रानी ने कहा-'नवाब को बुला ला। जल्दी बातचीत करके लौट जायें और तुरन्त कार्य-क्रम का निर्णय करके दलीपनगर से उस डाकू को भगा दे।'

रामदयाल पर्दे का प्रबन्ध करके अलीमर्दान और कालेखाँ को लिवा लाया। वे दोनों अपने उसी अधूरे वेश में थे। दोनों रानियों ने ओट से उन दोनो को देखा। छोटी रानी को हँसी आई। बड़ी रानी के मन मे सन्देह जगा।

रामदयाल के मार्फत बातचीत होने लगी।

छोटी रानी-'अब क्या किया जाय? आप ही के भरोसे इतनी हिम्मत करके और कष्ट उठाकर दलीपनगर को छोड़ा।'

अलीमर्दान—'मैं तुरन्त हमला करने के लिये तैयार हूं। दिल्ली से एक सन्देशा आने वाला है। उसी की बाट देख रहा हूं। केवल आठ-दस दिन का विलम्ब है। तब तक आप अपने सरदार भी इकट्ठे कर लें।'

छोटी रानी—'यह हो रहा है। विराटा का राजा किस ओर रहेगा?'

अलीमर्दान—'वह यदि आपके पक्ष में न होगा, तो मैंने उसे चकनाचूर करने की ठान ली है।'

छोटी रानी—'आप पहले दलीपनगर या सिंहगढ़ पर आक्रमण करेंगे?'

अलीमर्दान—'दोनों ठिकानों पर एक साथ धावा बोला जायगा। आप क्या बात पसन्द करती है?'

छोटी रानी—'ठीक है। मैं स्वयं दलीपनगर पर चढ़ाई करूंगी। आप हमारी सेना के साथ रहें। अपने सेनापति को सिंहगढ़ की ओर भेजें।'

अलीमर्दान—'यही मैंने सोचा है। यदि कार्य-विधि में कोई तबदीली हुई, तो आपको मालूम हो जायगा।'

छोटी रानी—'अबकी बार तोपों की संख्या बढ़ा दी गई या नहीं?'

अलीमर्दान—'पहले से कहीं अधिक, कई गुनी।'

छोटी रानी—'और सैनिक?'

अलीमर्दान—'सैनिक भी बढ़ा दिये गये है।'

बड़ी रानी ने धीरे से छोटी रानी के कान में कहा—'बदले में नवाब क्या लेगे?'

'कुछ नहीं।' छोटी रानी ने कान ही में उत्तर दिया—'वह मेरे राखीबन्द भाई हैं।'

बड़ी रानी ने कहा—'पहले तय कर लेना चाहिये। पीछे पैर फैलावेंगे, तो बहुत गड़बड़ होगी।'

'क्या गड़बड़ होगी ?'—रानी ने पूछा।

बड़ी रानी ने उत्तर दिया—'दलीपनगर को अपने अधिकार में कर लेंगे।'

'कर लें।' छोटी रानी ने तीव्रता के साथ, परन्तु बहुत धीरे से कहा—'देवीसिंह डाकू से तो दलीपनगर का छुटकारा हो जायगा। चाहे प्रलय हो जाय, परन्तु देवीसिंह को दलीपनगर से निकालना और जनार्दन को प्राणदण्ड देना है।'

छोटी रानी ने अलीमर्दान को कहला भेजा—'बड़ी महारानी आशीर्वाद देती है कि आपको विजय-लाभ हो।'

अलीमर्दान ने चरण छूना कहा।

इसके बाद थोड़ा-सा खा-पीकर वे दोनों वहाँ से चले गये।

[६१]

रामनगर से लौटकर एक दिन कालेखाँ विराटा में सबदलसिंह के पास आया। राजा ने उसका आगत-स्वागत किया। जितनी देर वह ठहरा राजा देवीसिंह के विरुद्ध बातें कहता रहा, परन्तु जाते समय तक अपने आने का तात्पर्य नही बताया। सबदलसिंह ने सोचा, युद्धों का समय है, कुंजरसिंह की सहायता का वचन नहीं, तो भरोसा दे ही दिया है, नवाब भी शायद उसका पक्षपाती हो, न भी हो, तो शत्रु का शत्रु मित्र के समान होता है। यह कल्पना करके उसने निष्कर्ष निकाला कि देवीसिंह से जो आगामी युद्ध होने वाला है, उसमे नवाब की यथाशक्ति सहायता करने के लिये कहने को आया है। स्पष्ट न कहने पर भी भाव वही था। कालपी के साथ विराटा का करीब-करीब मातहती का संबंध था, इसलिये स्पष्ट कथन की जरूरत सबदलसिंह ने नहीं समझी। कालेखाँ से जाने के पहले वह बोला ? 'हमारे पास आदमी रामनगर के रावसाहब से अधिक नहीं है, परन्तु हृदय हमारा वैसा लोभी नहीं है। नवाब साहब के लिये हम लोग अपना सिर देने के लिये तैयार है।'

'यह तो उम्मीद ही है।' कालेखाँ ने कहा—'जिस समय जरूरत पड़ेगी, आपसे देवीसिंह को ललकारने के लिये कहा जायगा।'

'आपने बड़ी कृपा की, जो हमारी कुटी पर आये।' राजा ने विनय-पूर्वक कहा—'इतनी-सी बात के लिये कष्ट उठाने की जरूरत न थी।'

'पुराने रिश्तों को ताजा करने के लिये कभी-कभी मिलने की जरूरत पड़ती है।' कालेखाँ बोला—'एक और भी छोटा-सा काम था, परन्तु उसके बारे में अभी तक इसलिये अर्ज नहीं किया था कि और महत्व की बातों के कारण उसका ख्याल ही न रहा था। अब याद आ गई।'

विनीत सबदलसिंह ने और भी नम्र होकर पूछा—'मेरे लायक और जो कुछ आज्ञा हो कहिये।'

कालेखाँ ने एक-एक शब्द तौलकर कहा—'नहीं, ऐसी कोई बड़ी बात नहीं है। वह जो आपके यहाँ देवी जी के मन्दिर में पालर से एक लड़की भागकर आई है—'

कालेखाँ रुक गया। सबदलसिंह ने भयभीत होकर प्रश्न किया—'क्या उस बेचारी से कोई अपराध हो गया है? देखने मे तो बड़ी भोली-भाली दीन कन्या है।'

'अपराध नहीं बना है।' कालेखाँ ने नम्रता का आवरण दूर फेककर कहा—'उसके सौभाग्य में रानी बनना लिखा है, नवाब साहब को उसके सौन्दर्य के मारे खाना-पीना हराम है।'

सबदलसिंह का कलेजा धुक धुक करने लगा। कोई शब्द मुंह से न निकला।

कालेखाँ ने उसी स्वर में कहा—'आपके लिये कोई संकट की समस्या नहीं है। आपके धर्म पर कोई हस्तक्षेप नही किया जा रहा है। नवाब साहब आप लोगों के मूर्ति-पूजन और लाखों देवी-देवताओं के पूजन में कभी खलल नहीं डालते। वह लड़की आपके गाँव की भी नहीं है। आपको कुछ करना नही होगा। हम सब ठीक-ठीक कर लेंगे। यह हम

कुरान शरीफ की कसम पर आपको यकीन दिलाते है कि आपके मन्दिर या देवता का किसी तरह का अपमान न किया जायगा और वह लड़की नवाब साहब के महल मे रहते हुये भी शौक से अपनी पूजा-पत्री करती रह सकती है।'

सबदलसिंह बोला—'मैं इससे अपने लिये बड़ी भारी आफत देख रहा हूं। उस लड़की को लोग देवी का अवतार मानते हैं। और वह मेरी जाति की है। क्या करूं, कुछ समझ में नही आता।'

कालेखाँ ने कहा—'आपको कुछ करने की जरूरत नहीं। आप चुपचाप अपने घर में बैठे रहिये। हम दोनों आदमी यानी मै और नवाब साहब उसे एक दिन चुपके से आकर लिवा जायेंगे। वह हँसती-खेलती यहाँ से चली जायगी। ऐसा हो जाने देने में आपका फायदा है। लड़ाई मे आपको आदमी या रुपया-पैसा न देना पड़ेगा और मौका आने पर आपके पुराने दुश्मन रामनगर के राव को नष्ट करके वह गढ़ी भी आपको दिला दी जायगी।'

सबदलसिंह ने उस समय कोई और उपाय न सोचकर कहा—'हमें थोड़ा-सा समय दीजिये। भाई-बन्धों से बात करके बहुत शीघ्र कहला भेजूंगा।'

'कहला भेजियेगा।' कालेखाँ रुखाई के साथ बोला—'आपके या आपकी जागीर के साथ कोई जुल्म नही किया जा रहा है। यदि जरा-सी बात के लिये आपने नवाब साहब का अपमान किया, तो नाहक आप सब लोग तकलीफ पायेंगे।' फिर जाते-जाते उसने कहा—'यदि उस लड़की को आपने कही छिपा दिया या भाग जाने दिया तो अन्त में जो कुछ होगा, उसका दोष मेरे मत्थे न दीजियेगा।'

कालेखाँ यह धमकी देकर चला गया। सबदलसिंह बहुत खिन्न-मन होकर एक कोने में बैठे-बैठे सोच-विचार में डूबता-उतराता रहा। जब मन कुछ स्वस्थ हुआ तब जो-जो बातें कालेखाँ के साथ हुई थी, उनकी एक-एक करके, बार-बार कल्पना करके कहने लगा।

वह नम्र-प्रकृति का मनुष्य था, परन्तु जब ऐसी प्रकृति के मनुष्यों की नम्रता की अवहेलना की जाती है, या उनकी विनय को पद-दलित किया जाता है, तब उन्हें आग-सी लग जाती है। वह भी सम्भव असम्भव प्रयत्नों द्वारा प्रतिकार की बात सोचने लगा।

उसने सबसे पहले अपने चुने हुये भाई-बन्दों को इस पीडा-पूर्ण रहस्य के प्रकट करने का निश्चय किया।

उसने उसी दिन उन लोगों के साथ बातचीत की। नरपतिसिंह बहुत उत्तेजित और भयभीत था। आशा, विश्वास और सौगन्ध दिला-कर उसे कुछ शान्त किया। परन्तु इन दांगियों के निश्चय का कुछ समय तक किसी को पता न लगा। केवल यह देखा गया कि गढ़ी की मरम्मत शीघ्रता के साथ हो रही है और तोपें मौके के स्थानों पर लगाई जा रही है।

[६२]

'अभी दिल्ली दूर है।' एक पुरानी कहावत चली आती है परन्तु जनार्दन के प्रयत्न से हकीम आगा हैदर को दिल्ली की दूरी बहुत कम अखरी। वह खुशी-खुशी जल्दी लौट भी आया और उसे अपनी आशा-तीत सफलता पर गर्व था। उसने जनार्दन को दिल्ली के प्रधान मंत्री की चिट्ठी दी जिसके तीन चौथाई से अधिक भाग में आदाब और अलकाबों की धूम थी और थोड़ी-सी जगह में लिखा था कि आप और कालपी का नवाब बादशाह अलीमर्दान इकबालहु की दो आँखें है। किसी को भी कष्ट होने से उन्हे दुःख होगा, अलबत्ता इस समय नवाब अलीमर्दान की दिल्ली बहुत जरूरत है, इसलिये वह फौरन दिल्ली बुलाये जाने वाले है।

जनार्दन ने बड़े हर्ष के साथ यह चिट्ठी राजा देवीसिंह को सुनवाई उन्हें कोई हर्ष नही हुआ।

बोले-'यह सब अपार पाखण्ड मुझे धोखे में नही डाल सकता। पहले मारे सो ठाकुर, पीछे मारे सो फिसड्डी, मैं तो यह जानता हूं। बहुत

होगा, तो दिल्ली वाले अपने नवाब की मदद कर देंगे, बस। परन्तु मैं बुन्देलखण्ड में वह आग सुलगाऊँगा, जो चम्पत महाराज ने भी न सुलगाई होगी और फिर बहुत गिरती हालत में मराठों को तो बुलाया ही जा सकता है।'

'मैं नाहक युद्ध करने के पक्ष में नहीं हूं।' मुदित-हर्षित जनार्दन बोला–'मराठे सेंत-मेंत सहायता किसी की नहीं करते। उन्हें बुलाइयेगा तो वे यहाँ से कुछ-न-कुछ लेकर ही जायेंगे।'

'पण्डितजी।' देवीसिंह ने उत्तेजित होकर कहा—'मराठे अगर कुछ लेंगे, तो मैं उन्हें दे दूंगा, परन्तु जीते जी नवाबों और सूबेदारों को सिर नही झुकाऊँगा। क्या भूल गये कि अलीमर्दान विराटा के मन्दिर को नष्ट करने वाला है।'

'नही महाराज, मैं नही भूला हूं।' जनार्दन बोला—'परन्तु मेरा एक निवेदन है।'

'कहिये।' राजा ने कहा।

जनार्दन बोला-'थोड़े दिन युद्ध स्थगित रखिये। यदि नवाब दिल्ली चला गया, तो ठीक है और यदि न गया, तो रण-भेरी बजवा दीजिये।'

राजा बोले-'मैं ठहरा हूं, युद्ध न करूँगा, परन्तु तैयारी मे कोई कसर नहीं लगाऊँगा। मेरी इच्छा है कि वैरी के घर धावा करूँ। उसे यहाँ आने देना और पीछे सम्भाल करना बुरी नीति होगी। मैं लोचनसिंह दाऊजू को सिहगढ़ से बुलाकर ऐसे स्थान पर भेजना चाहता हूं जहाँ से वैरी के घर में घुसकर छापा डाल सकें—'

जनार्दन ने विरोध की इच्छा रखते हुये भी प्रतिवाद नहीं किया। केवल यह कहा-'सिहगढ़ बहुत महत्वपूर्ण स्थान है, वहाँ किसे भेजियेगा?'

'और सरदार है, जो अपने जौहर दिखलाने की अकांक्षा रखते

है।' राजा बोला—'अबकी बार आपकी भी रण-कुशलता की परीक्षा ली जायगी।'

जनार्दन ने सच्चे हर्ष के साथ कहा—'मैं दयावन्त लड़ना तो नहीं जानता, परन्तु लड़ाई से भागना भी नही जानता।'

राजा बोला—'आप दलीपनगर को अपने किसी विश्वसनीय सेवक या मित्र की निगरानी में छोड़ देना—अबकी बार हम सब लोग अपने समग्र बल से इस धर्म-द्रोही को ठीक करदें।'

कृतज्ञता-सूचक स्वर में जनार्दन बोला—'मेरा शरीर यदि अन्नदाता की सेवा में नष्ट हो जाय, तो इससे बढ़कर और किसी बात में मुझे सुख नही होगा।' फिर राजा से पूछा—'यदि आज्ञा हो, तो मैं स्वयं विराटा की ओर वास्तविक स्थिति की खोज कर आऊँ? बहुत शीघ्र लौटकर आ जाऊँगा। जासूस लोग बात का बिलकुल ठीक-ठीक पता नही लगा पा रहे है।'

'आपको यदि किसी ने पहचान कर पकड़ लिया तो।' राजा ने उत्तर दिया—'तो मैं यह समझूँगा कि दलीपनगर की आधी से अधिक हार हो गई और मेरा दायां हाथ टूट गया।'

'और अन्नदाता।' जनार्दन बोला—'संसार में दलीपनगर के नरेश के लिये लोग यह भी कहेगे कि न मालूम उनके पास अभी कितने और ऐसे स्वामिधर्मी आदमी होगे।' इस प्रच्छन्न आत्म-श्लाघा पर जनार्दन जरा लज्जित हुआ।

परन्तु राजा ने उसे कुछ और बोलने देने के पूर्व ही कहा—'मैं तुम्हारी इच्छा का अवरोध न करूँगा।'

जनार्दन बोला—'महाराज, यदि मैं अपने इस नये काम में सफल हुआ तो भविष्य में मेरे जासूस बहुत अच्छा काम करेंगे।'

[६३]

जिस दिन से कालेखाँ विराटा से गया, वहाँ के वातावरण में सन्नाटा सा छा गया। एक भ्रांति-सी फैली हुई थी, जिसके विषय में खुलकर

चर्चा करने मे भी लोगों का मन नही जमता था। आने वाले सङ्कट का साफ रूप बहुत कम लोगों की समझ में आ रहा था, परन्तु यह स्पष्ट था कि विराटा निरापद् स्थान नहीं है। खतरे के समय विराटा-निवासियों का ग्राम त्यागकर उस पार जंगल और भरकों में महीनों छिपे रहना कोई असाधारण स्थिति न थी। परन्तु इस समय तक विपद् के ठीक-ठीक रूप की कल्पना को आभास न मिला था, इसलिये घबराहट थी।

नरपतिसिंह को उसका यथासम्भव यथावत् रूप बतलाया गया था। उसे देवी का भरोसा था, परन्तु वह बाहर के भी किसी आश्रय के लिये उद्योग करने की जी में ठान चुका था।

कुमुद से उसने ध्वनि में और अस्पष्टताओं के आवरण मे ढककर बात कही। बोला—'दुर्गा ने ही पालर की रक्षा की थी। यहाँ पर भी वह रक्षा करेंगी। मैं एक दिन के लिये दलीपनगर जाऊँगा।' कुमुद से और कुछ न कहकर वह मूर्ति के सामने प्रार्थना करने लगा।

स्पष्ट तौर पर बतलाये बिना भी कुमुद ने बात समझ ली।

गोमती ने मन्दिर के अन्य आने-जाने वालों से जो विराटा में रहते थे, पूछा।

उन आने-जाने वालो को ठीक-ठीक कुछ नही मालूम था। एक बोला—'राजा देवीसिंह यहाँ आकर युद्ध करने वाले हैं, उधर अलीमर्दान की तोपे हमारी गढ़ी पर गोले बरसायेंगी।'

सबदलसिंह ने अपने चुने हुये भाई बन्दों को छोड़कर ठीक बात किसी को नही बतलाई थी। इस कारण गोलमाल फैला हुआ था। इस विषय को लेकर गोमती और कुमुद में बातचीत होने लगी। नरपतिसिंह जरा फासले पर प्रार्थना कर रहा था।

कुमुद ने कहा—'विपद् में धीरज रखना चाहिये। दुर्गा जी का भरोसा सबसे बड़ा बल है। दूसरे आश्रय छूंछे है।'

गोमती ने पूछा—'अलीमर्दान गढ़ी से क्यों लड़ेगा ?'

'उसकी मति फ़िर गई है, वह वावला है। वह मन्दिर के ऊपर उत्पात करना चाहता है।'

'तभी दलीपनगर के महाराज यहीं आकर युद्ध करना चाहते हैं।'

'तुम्हें कैसे मालूम ?'

'मैंने एक गाँव वाले से सुना है।'

'यह गलत है।'

गोमती ने हाथ जोड़कर कहा—'मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिये, ठीक बात क्या है, मैं जानना चाहती हूं। जो कुछ मुझसे बनेगा, मैं भी करूँगी।'

कुमुद ने आकाश की ओर नेत्र करके उत्तर दिया—'एक बादल उठने वाला है। मन्दिर के ऊपर उत्पल वर्षा होगी।'

'परन्तु उसका कुछ बिगड़ नहीं सकेगा। देवी का सार्वभौम राज्य है।'

'यह मै क्या कह सकती हूं 'कुमुद ने उत्तर दिया। फिर एक क्षण ठहर कर बोली—'वह शीघ्र ही अपने ऊपर दुर्गा के क्रोध को बुलावेगा।'

'और महाराज यहाँ आकर युद्ध करेंगे ? वह बड़े धर्म-परायण और दुर्गा के भक्त हैं।'

'करें, परन्तु मैं यह नहीं चाहती। इसमें अनर्थ होगा अनिष्ट होगा।'

गोमती घबराकर बोली—'सो क्या ? धर्म की रक्षा करने में अनर्थ और अनिष्ट कैसा ?'

कुमुद ने कहा—'मैं यहाँ खून-खराबी नही देखना चाहती। बेतवा का यह शुद्ध सलिल देखो, कैसी शुभ्र धारा है। दोनों ओर कैसा हरा-भरा जङ्गल है। चारों ओर कैसा आनन्दमय सुनसान है। कैसी एकांत शांति है। मनोहर एकान्तता की गोद में मुस्कराते हुए शिशु जैसा यह मन्दिर है, उसके ऊपर रक्त-स्राव ! कल्पना करने से कलेजा काँपता है।'

कष्ट की इस कल्पना से गोमती का एक रोयाँ भी न काँपा। अविचलित भाव से बोली—'दुर्गा अपने भक्तों के हृदय में बल और

उल्लास भरें। इस मनोहर स्थान की अवश्य रक्षा होगी। यदि महाराज आ गए तो रक्त-पात कम होगा, और न आए तो न जाने कितने लोग भेड़-बकरी की तरह यों ही काट डाले जायेंगे।'

इतने में नरपतिसिंह प्रार्थना करके उन लड़कियों के पास आ पहुंचा। वोला—'इस समय देवी के भक्तों में सबसे अधिक प्रवल राजा देवीसिंह जान पड़ते है। उन्हें दुर्गा का आदेश सुनाने के लिए जा रहा हूं। अव की वार उन्हें अपने सर्वस्व का वलिदान करके दुष्टों का दमन करना होगा।'

'यह आपसे किसने कहा कि आप राजा देवीसिंह के पास इस याचना के लिये जायें?' कुमुद ने सिर ऊँचा करके प्रश्न किया।

नरपतिसिंह के उत्तर देने के पूर्व ही गोमती वोली—'न तो इसमें किसी के कहने सुनने की कोई वात है और न यह याचना है। यह दुर्गा की आज्ञा है।'

'नहीं है।' कुमुद ने गम्भीर होकर कहा—'देवी की यह आज्ञा नहीं है। देवीसिंह इसके अधिकारी नही है। वह यदि रक्षा करने आयेगा, तो निश्चय जानो हानि होगी, लाभ न होगा।'

नरपतिसिंह सकपकाया।

गोमती दृढ़ता के साथ वोली—'इसमें देवी का अनिष्ट नही हो सकता। राजा का अमङ्गल हो, तो हो। परन्तु क्षत्रिय को अपने कर्त्तव्य पालन में मङ्गल-अमङ्गल का विचार नही करना पड़ता। उसे प्रयत्न करने-भर से सरोकार है। आप काकाजू, राजा के पास अवश्य जायें, उन्हें लिवा लायें और उनसे कहें कि—'

यहाँ गोमती अपने आवेश के द्रुतवेग के कारण स्वयं रुक गई, कुमुद की क्षणिक उत्तेजना शांत हो गई थी। वहुत मीठे स्वर में वोली—'गोमती, तुम्हे व्यर्थ ही कष्ट झेलना पड़ रहा है। मैं नवाव की आँखों मे मार डालने योग्य भले ही समझी जाऊँ, क्योकि दुर्गा की पूजा करती हूं, परन्तु तुमने किसी का क्या विगाड़ा है? तुम क्यों यहाँ वन के क्लेशों को नाहक भुगत रही हो? मेरी एक सम्मति है।'

'क्या आदेश है ?' गोमती ने भोलेपन के साथ, परन्तु काँपते हुये स्वर में पूछा ।

'तुम दलीपनगर के राजा के पास चली जाओ ।' कुमुद ने कहा ।

'क्यो ?' नरपति ने पूछा ।

'क्यों ?' क्षीण स्वर में गोमती ने प्रश्न किया ।

कुमुद ने उत्तर दिया—'तुम रानी हो । वह राजा है । तुम्हारे हाथ में उस रात का कङ्कण अब भी बंधा हुआ है । भांवर पड़ना-भर रह गई थी । वह दलीपनगर में हो जायगा । मुझे ऐसा जान पड़ता है कि आगामी युद्ध जो राजा और नवाब के बीच यहाँ होने वाला है, कुशल-पूर्वक समाप्त न होगा । इसलिये मैं चाहती हूं कि गोमती, तुम दलीप-नगर चली जाओ । देवी सर्वव्यापिनी है । हम लोग किसी जङ्गल में भजन करेंगे ।'

नरपति तुरन्त बोला—'चाहे जो कुछ हो, अबकी बार नवाब के साथ उनका रण मचेगा । राजा सबदलसिंह ने भी निश्चय कर लिया है । रण-निमन्त्रण देने राजा देवीसिंह के पास जा रहा हूं । मुझे यह कार्य सौंपा गया है । वहाँ से लौटकर हम लोग भले ही जङ्गल में चले जायेंगे, परन्तु अभी हाल में उसके लिये कोई काफी कारण नही समझ में आता । गोमती हमारे साथ चलना चाहे, तो हम बेखटके उसे महलों में पहुंचा देगे । मैं अकेला नहीं जाऊँगा और भी कई लोग जायेगे ।'

तिरस्कार-पूर्ण स्वर में गोमती ने कहा—'मैं स्वयं वहाँ जाऊँगी ? मेरी बोटी-बोटी चाहे कोई काट डाले, परन्तु मै ऐसे तो कदापि नहीं जाऊँगी । मै भी इनके साथ जङ्गल में भजन करने को तैयार हूं ।'

कुमुद ने कहा—'तब आप यों ही बहुत-सी खून-खराबी कराने के लिये क्यों दलीपनगर जाते है ? यदि नवाब इस बात को सुनेगा, तो और भी चिढ़ जायगा ।'

'बात तो बिलकुल ठीक है ।' नरपति बोला—'परन्तु राजा सबदल-सिंह ने निश्चय कर लिया है और मुझे अपने लोगों का अगुआ बनाया

है। यदि मै न जाऊँगा, तो और लोग अवश्य जायेंगे। न जाने से मेरी वडी निन्दा होगी। राजा देवीसिह सवदलसिंह के अन्य भाई-वन्दों द्वारा न्योता भी पाकर लड़ाई के लिये आवेंगे, परन्तु मुझे इसलिये चुना गया है कि वह आने में किसी प्रकार का विलम्व या संकोच न करें।'

गोमती ने जोश के साथ कहा—'आपको अवश्य जाना चाहिये।'

ऊपर की ओर देखकर कुमुद वोली—'अच्छी वात है, जाइये। जो कुछ होना होगा, वह विना हुये नही रुकेगा।'

नरपति वोला—'मै वहाँ गोमती की वात अवश्य कहूंगा।'

'आवश्यकता नहीं है।' गोमती वोली।

नरपति ने कहा—'केवल इतना कि तुम यहाँ कुशल-पूर्वक हो।'

[६४]

कुमुद की इच्छा न थी कि नरपति दलीपनगर के राजा को आमन्त्रित करने जाय, परन्तु वह उसे दृढ़ता और स्पष्टता के साथ न रोक सकी। शायद कुमुद को स्पष्टता या दृढ़ता उस समय कुछ भी पसन्द नही आई। भीतरी इच्छा के इस तरह अवरुद्ध रह जाने के कारण उसका मन चंचल हो उठा, किसी से वातचीत करने की इच्छा न हुई। मन मे आया कि इस स्थान को छोड़कर कही दूर चले जाँय। यह असंभव था। कुमुद उस स्थान को छोड़कर अपनी कोठरी मे चली गई और भीतर से उसने किवाड़ वन्द कर लिये। गोमती ने समझ लिया कि उसके लिये भीतर जाने के विषय में निमन्त्रण नही है।

गोमती अकेली मन्दिर की ड्योढ़ी मे बैठ गई। दलीपनगर और उसके राजा से घनिष्ठ सम्वन्ध रखने वाली घटनाओं की कल्पनाएँ मन मे उठने लगी। उन सव कल्पनाओ के ऊपर रह-रहकर उठने वाली अभिलाषा यह थी कि नरपति राजा से यह न कहे कि गोमती विराटा के वीहड़ मे अकेली पड़ी है, उसे लिवा लाओ। इसी समय रामदयाल मन्दिर मे आया।

उसे देखकर गोमती को हर्ष हुआ। मुस्कराती हुई उसके पास उठ आई। आतुरता और उत्सुकता के साथ उसने कुशल-मङ्गल का प्रश्न किया।

इस स्वागत से रामदयाल के मन के भीतर ही भीतर एक स्फूर्ति-सी एक उमङ्ग-सी उमड़ी। उसने कहा—'मैं तो आपके दर्शन मात्र से सुखी हो जाता हूं। आज यहाँ कुछ सन्नाटा सा जान पड़ता है।'

'नरपति काका महाराज के पास दलीपनगर अभी-अभी गये हैं।' गोमती बोली—'कालपी का नवाव इस नगर और मन्दिर को विध्वन्स करना चाहता है। उसके दमन के लिये रण-निमन्त्रण देने के लिये वह गये हैं। तुम्हें महाराज कवसे नहीं मिले ?'

'मुझे तो हाल ही में दर्शन हुये थे।'

'कुछ कहते थे ?'

'वहुत कुछ। यहाँ कोई पास मे नहीं है ?'

'नहीं है। बाहर चट्टान पर चलो। वहाँ विलकुल एकान्त है।'

दोनों मन्दिर के वाहर एक चट्टान पर चले गये। वड़े-वड़े ढोंके एक दूसरे से भिड़े हुये धारा की ओर ढले चले गये थे। वहाँ जाकर वे एक विशाल चट्टान से अटककर टँग गये थे। एक वड़े ढोके पर गोमती वैठ गई। पेड की छाया थी। वहाँ रामदयाल खड़े-खड़े बातचीत करने लगा बोला—'रण की वड़ी भयङ्कर तैयारी हो रही है। नवाव और उसके मित्रों से वह लोहा वजेगा, जैसा वहुत दिनों से न वजा होगा। विराटा वहुत शीघ्र वड़ी प्रचण्ड आँधी में पड़ने वाला है और कारण वड़ा साधारण-सा है।'

'साधारण-सा।' गोमती ने आश्चर्य प्रकट किया—तुम्हारा क्या अभिप्राय है !'

रामदयाल आवाज को धीमा करके बोला—'अलीमर्दान मन्दिर विध्वंस नहीं करना चाहता, कुन्जरसिंह की सहायता करना चाहता है और महाराज यहीं आकर कुन्जरसिंह को धर दवाना चाहते हैं।'

'कुञ्जरसिंह की सहायता ? यदि ऐसा है, तो मन्दिर को अपवित्र करने का संकल्प उसने क्यों किया है ?'

'मैने दलीपनगर में बड़े विश्वत-सूत्र से सुना है कि वह कुमुद के विषय मे कुछ विशेष दुष्प्रवृत्ति रखता है और उसे कुछ प्रयोजन नहीं। यदि वह मन्दिर-भंजक होता, तो पालर का मंदिर कदापि न छोड़ता।'

'यह काम कम निन्दनीय है ? मैं तो कुमुद की रक्षा के लिये तलवार हाथ मे लेकर अलीमर्दान से लड़ सकती हूं। क्या महाराज इसे छोटा कारण समझते है ? क्या वह नही जानते कि कुमुद लोक-पूज्य है और देवी का अवतार है।'

रामदयाल ने अदम्य दृढ़ता के साथ कहा—'लोकपूज्य तो वह जान पड़ती है। मैंने भी अपने स्वामी की हित-कामना से उस दिन श्रद्धांजलि चढ़ा दी थी। परन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि महाराज उसे देवी का अवतार नही मानते। वह उसकी रक्षा एक हिन्दू स्त्री के नाते करना चाहते है और उनका अभिप्राय कुञ्जरसिंह को सदा के लिये ठीक कर देना है। वह यहाँ आया करते है, ठहरते हैं, आश्रय पाते है और न जाने क्या-क्या नहीं होता है ? परन्तु आपको सब हाल मालूम नही है।'

गोमती इधर-उधर देखकर बोली—'और क्या हाल है रामदयाल ?'

उसने उत्तर दिया—'वैसे आप कभी मेरा विश्वास न करेंगी कोई बात कहूंगा तो आप रुष्ट हो जायेगी, कदाचित मुझे दण्ड देने का निश्चय करे। दो-एक दिन में आप स्वयं देख लेना। क्या आपने कभी कुञ्जरसिंह को कुमुद के साथ अकेले में वार्तालाप करते देखा है। मैं अधिक इस समय कुछ नही कहना चाहता।'

गोमती बेतवा की बहती हुई धार और उस पार के जङ्गल की नीलिमा की ओर देखने लगी। थोड़ी देर सोचने के बाद बोली—'मैने

बात करते तो देखा है परन्तु विशेष लक्ष्य नहीं किया है। मुझे लक्ष्य करके करना ही क्या ? कोई अवसर कभी अपने आप सामने आ जायगा, तो देखूँगी।'

'आपने क्या इस बात को नहीं परखा ?' रामदयाल ने प्रश्न किया 'कुमुद किसी न किसी रूप में हर समय कुन्जरसिंह का पक्ष किया करती है। यह बात बिना किसी कारण के है ?'

गोमती उत्तर न देते हुये बोली—'आज जब नरपति काकाजू ने महाराज को यहाँ बुलाने की बात कही, तो उन्होंने विरोध किया। कम-से-कम वह यह नहीं चाहती थी कि महाराज यहाँ आवें।'

'मेरी एक प्रार्थना है।' रामदयाल ने हाथ जोड़कर बहुत अनुनय के साथ कहा।

गोमती उस अनुनय के ढङ्ग से तुरन्त आकृष्ट होकर बोली—'क्या है, रामदयाल ? तुम इतने विह्वल क्यों हो रहे हो ?'

रामदयाल ने काँपते हुये स्वर में उत्तर दिया—'सरकार अब यहाँ न रहें।'

'क्यों ?' गोमती ने पूछा।

रामदयाल ने कहा—'कुन्जरसिंह यहाँ आकर अड्डा बनावेंगे। वह नवाब का न्योता देकर आग बरसावेंगे। महाराज का आना अवश्य होगा। कुन्जरसिंह और नवाब से उनकी लड़ाई होगी। आपका यहाँ क्या होगा ?'

'परन्तु मै दलीपनगर नही जा सकती।'

'मैं दलीपनगर जाने के लिये नही कहता और भी तो वहुत से आश्रय-स्थान है।'

'कहाँ ?'

'बहुत-से स्थान है। जब शांति स्थापित हो जाय, तब जहाँ इच्छा हो, वहाँ आपको पहुंचाया जा सकता है।'

'महाराज क्या कहेंगे ?'

'कुछ नहीं। वह या तो स्वयं आयेंगे या अपने सेनापति अथवा मंत्री को सेवा मे भेजेंगे और मैं तो उन्हीं की कृपा-पात्र हूं।'

'कुमुद को छोडकर चलना पड़ेगा ?'

'आपको उनके विषय में अपना विचार शीघ्र बदलना पड़ेगा। मैं इस समय कुछ न कहूंगा, आप खुद देख लेना। केवल इतना बतलाये देता हूं कि जहाँ कुन्जरसिंह जायेंगे वही कुमुद जायेगी।'

गोमती ने त्योरी बदली। परन्तु बोली कोमल कण्ठ से—'ऐसी अभद्र और अनहोनी बात मत कहो।'

रामदयाल ने बड़ी शिष्टता के साथ कहा—'नहीं, मैं तो कुछ भी नहीं कहता। कुछ भी नही कहा। कुछ नहीं कहूंगा।'

गोमती मुस्कराकर बोली—'नहीं-नही, यह नहीं चाहती कि तुम जिस बात को ठीक तरह से जानते हो और उसकी सत्यता में सन्देह करने के लिये कोई जगह न हो, उसे छिपा डालो। परन्तु तुम्हें यह अच्छी तरह ज्ञान रखना चाहिये कि किसके विषय मे क्या कह रहे हो।'

रामदयाल ने आँखें नीची करके कहा—'मुझे किसी के विषय में कुछ कहा-सुनी नही करनी है। मेरे तन-मन के स्वामी उधर महाराज है और इधर आप। मुझे और किसी से वास्ता ही क्या है। आप या महाराज इससे तो मुझे वंजित नही कर सकते और न वंचित रख सकते है।'

जैसे कोई हवा मे घूमते हुये बोले, उसी तरह गोमती ने कहा—'अभी तो यहाँ से कही दूसरे ठौर जाने की आवश्यकता नही मालूम होती रामदयाल, परन्तु स्थान का प्रबन्ध अवश्य किये रहो। अवसर आने पर चलेगे।'

[६५]

नरपतिसिंह यथा समय दलीपनगर पहुच गया। विराटा के राजा की चिट्ठी जनार्दन शर्मा के हाथ मे रख दी गई। नवाब के पड़ौस में ही

दलीपनगर के राजा की सहायता चाहने वाले व्यक्ति के पत्र पर उसे उत्साह मिला। उसने सोचा—'यदि सबदलसिंह साधारण सा ही सरदार है, तो भी अपना कुछ नही बिगड़ता, लाभ है।'

नरपतिसिंह से उसने पूछा—'आपकी बेटी आनन्द-पूर्वक है ?'

उत्तर मिला—दुर्गा की दया से सब आनन्द-ही आनन्द है। यह जो विघ्न का वादल उठ रहा है, इसे टालकर आप विराटा को बिलकुल निरापद कर दें।'

जनार्दन ने कहा—'सो तो होगा ही, परन्तु मैं कहता हूं कि आप लोग पालर ही में क्यों नहीं आ जाते ? पालर ओरछा-राज्य मे है और हमारे वाहु के पास है।'

'यह समय बड़ा सङ्कटमय है।' नरपति वोला—'केवल बीहड़ स्थान कुछ सुरक्षित समझा जा सकता है। जब युद्ध समाप्त हो जायगा, तब निस्संदेह हम लोग पालर लौटने के विषय में सोच सकते है।'

'परन्तु विराटा तो कदाचित् खून-खराबी का केन्द्र-स्थान हो जायगा। वह पालर से अधिक सुरक्षित तो नहीं है।'

'जो कुछ भी हो हम लोग अभी उस स्थान को नही छोड़ना चाहते। वहाँ हमारे भाई-वन्द काफी संख्या में है। जब वहाँ निर्वाह न दिखलाई पड़ेगा, तव या तो जहाँ आप वतलाते है, वही चले जायेंगे या किसी और स्थान को ढूँढ़ लेंगे।'

जनार्दन ने पूछा—'कुन्जरसिंह विराटा कब से नहीं आये ?'

'कुन्जरसिंह ?' नरपति ने आश्चर्य प्रकट किया।'कुन्जरसिंह वहाँ आकर क्या करेंगे ? अन्य लोग आये-गये है कुन्जरसिंह को मैने वहाँ कभी नही देखा।'

'और कौन लोग आये-गये है ?' जनार्दन ने प्रश्न किया।

उसने उत्तर दिया—'वहुत लोग आये-गये हैं, किस-किसका नाम गिनाऊँ।'

जनार्दन ने कहा—'उदाहरण के लिये कुञ्जरसिंह का सेनापति तथा रामदयाल इत्यादि।'

नरपति चौंका, बोला—'आपको कैसे मालूम ?'

जनार्दन ने अभिमान के साथ कहा—'यह मत पूछो। महाराज देवीसिंह आँखें मूँदकर राज्य नहीं करते।'

'यह ठीक है।' नरपति बोला—'परन्तु देवी के मन्दिर में किसी के आने की रोक-टोक नही है। यदि किसी ने आपको कुछ और बनाकर बतलाया है तो झूठ है।'

जनार्दन ने कहा—'आपकी चिट्ठी महाराज की सेवा में थोड़ी देर मे पेश कर दी जायगी। पालर की घटना के कारण ही हम लोग कालपी के नवाब के विरुद्ध है और वह विराटा के मन्दिर को विध्वंस करने के लिये फिर कुछ प्रयत्न करने वाला है। परन्तु हमारे लक्ष्य कुञ्जरसिंह अधिक है। उन्होने तमाम बखेड़ा खड़ा कर रक्खा है। रानियाँ भी तो उनका साथ देंगी ? आजकल रामनगर में है न ?'

नरपति को यह बात न मालूम थी। आश्चर्य के साथ बोला—'यह सब हम क्या जानें।'

जनार्दन ने एक क्षण विचार करके कहा—'हमारी सेना आप लोगो की सहायता के लिये आयेगी, आप अपने राजा को आश्वासन दे दें। हम महाराज की मुहर–लगी चिट्ठी आपको देंगे। कब तक हमारी सेना आपके यहाँ पहुंचेगी, यह कुछ समय पश्चात् मालूम हो जायगा।'

नरपति जरा आतुरता के साथ बोला—'मै महाराज से स्वयं मिलकर कुछ निवेदन करना चाहता हूं।'

'किसलिये ?' जनार्दन ने आँखे गड़ाकर पूछा।

नरपति ने उत्तर दिया—'वह उनके निज के सुख से सम्बन्ध रखने वाली बात है।'

[६६]

जनार्दन की इच्छा न थी कि नरपति उसे अपनी पूरी बात सुनाये बिना राजा से मिल ले। परन्तु नरपति के हठ के सामने जनार्दन की आनाकानी न चली। राजा से साक्षात्कार हुआ। राजा को आश्चर्य था कि मेरे निज के सुख से सम्बन्ध रखने वाली ऐसी कौन-सी कथा कहेगा।

अकेले में बातचीत हुई।

नरपति ने कहा—'उस दिन पालर में प्रलय हो गया होता, यदि महाराज ने रक्षा न की होती।'

'किस दिन ?' राजा ने विशेष रुचि प्रकट न करते हुये पूछा।

नरपति बोला—'उस दिन, जब पालर की लहरों पर देवी की मौज लहरा रही थी और मुसलमान लोग उन लहरों को छेड़ना चाहते थे।'

राजा जरा मुस्कराकर बोले—'मैं पालर के निकट कई लड़ाईयाँ लड़ चुका हूं, इसलिये स्मरण नहीं आता कि आप किस विशेष युद्ध की बात कहते हैं।'

नरपति ने कहा—'पालर मे देवी ने अवतार लिया है।'

'यह मैंने सुना है।'

'वह मेरे ही घर मे हुआ है।'

'पं० जनार्दन शर्मा ने बतलाया था। मै पहले से भी जानता हूं।'

'जय हो महाराज की ! उसी की रक्षा में महाराज ने उस दिन अपना उत्सर्ग तक कर दिया था।'

राजा ने जरा अरुचि के साथ कहा—'आप जो बात कहना चाहते हों, स्पष्ट कहिये।'

नरपति ने हाथ बाँधकर कहा—'उस दिन, जिस दिन पालर में बारात आई थी; उस दिन जिस दिन स्वर्गवासी महाराज को देवी की रक्षा के लिये अपनी रोग-शय्या छोड़नी पड़ी थी; उस दिन, जब बड़े गाँव से आकर श्रीमान् ने हम सब लोगों को सनाथ किया था।'

राजा मुस्कराये। बोले—'मुझे याद है वह दिन। मैं आपकी बस्ती में घायल होकर मार्ग में अचेत गिर पड़ा था। बहुत समय पश्चात् होश आया था।'

राजा यह कहकर नरपति के मन की बात जानने के लिये उसकी आँखों मे अपनी दृष्टि गड़ाने लगे।

नरपति उत्साहित होकर बोला—'यदि महाराज उस दिन घायल न हुये होते, तो उसी दिन एक क्षत्रिय के द्वार के वन्दनवारों पर केशर छिटक गई होती और वह क्षत्रिय-कन्या आज दलीपनगर की महारानी हुई होती।'

राजा को याद आ गई। परन्तु आश्चर्य प्रकट करके बोले—'वह तो एक ऐसी छोटी-सी घटना थी, कुछ ऐसी साधारण सी बात रही होगी कि अच्छी तरह याद नहीं आती। बहुत दिन हो गये है। तुम्हारा प्रयोजन इन सब बातों के कहने का क्या है, वह स्पष्ट प्रकार से कह क्यों नही डालते?'

नरपति ने गोमती के पिता का नाम लेते हुये कहा—'उनके घर महाराज की बरात आई थी। उस कन्या के हाथ पीले होने में कोई विलम्ब नही दिखलाई पड़ता था। ठीक उस घर के सामने महाराज अचेत हो गये थे। हम लोग औषधोपचार की चिन्ता मे थे और चाहते थे कि स्वस्थ हो जाने पर पाणिग्रहण हो जाय। परन्तु सवारी स्वर्गवासी महाराज के साथ दलीपनगर चली गई। उसके उपरान्त घटनाओं के संयोग से फिर इस चर्चा का समय ही न आया। वह क्षत्रिय–कन्या इस समय विराटा में दुर्गा के मन्दिर मे हम लोगो के साथ है। महाराज शीघ्र चलकर उसे महलों मे लिवा लायें और विवाह की रीति भी पूरी कर लें।'

'आजकल।' राजा ने जरा उत्तेजित होकर कहा—'मै युद्ध और प्रजा की रक्षा के साधनो की चिन्ता मे इतना अधिक उलझा रहता हूं कि ऐसी मामूली बातों का स्मरण रखना या स्मरण करना बड़ा कठिन है।'

नरपति आग्रहपूर्वक बोला—'मैं अन्नदाता को स्मरण कराने आया हूं।'

राजा ने धीमे स्वर में और जरा लज्जा के साथ पूछा—'आपको किसने भेजा है ?'

'विराटा के राजा ने।' नरपति ने नम्रता के भीतर छिपे हुये अभिमान के साथ कहा।

राजा ने पूंछा—'यह बात जो तुम अभी-अभी कह रहे थे, क्या इसे भी विराटा के राजा साहब ने कहलवाया है ?'

नरपति बोला—'नहीं यह तो मै स्वयं कह रहा था, महाराज। वाग्दत्त क्षत्रिय-कन्या कितने दिनों इस तरह जङ्गलों पहाड़ों में पड़ी रहेगी ?'

'वाग्दान किसने किया था ?' राजा ने पूछा।

नरपति बिना संकोच के बोला-'यह तो महाराज जानें, परन्तु इतना मैं जानता हूं कि वह महाराज की रानी है। केवल भाँवर की कसर है। यदि उस दिन युद्ध न हुआ होता, तो विवाह को कोई रोक नहीं सकता था और आज वह महलों में होती। क्या महाराज को कुछ भी स्मरण नहीं है ? शायद उस दिन के आघातों के कारण स्मृति-पटल से यह बात हट गई है ?'

राजा हिल-सा उठा, जैसे किसी ने काँटा चुभा दिया हो। सोचने लगा, एक क्षण बाद बोला-'मुझे इन बातों के सोचने का अवकाश ही नहीं रहा है। सिपाही आदमी हूं। सिवा रण और तलवार के और किसी बात का बहुत दिनों कोई ध्यान नही रह सकता है और जिस सम्बन्ध के विषय मे तुम कह रहे हो, वह राजाओं का राजाओं के साथ होता है और लोगों के सम्बन्ध करने को भी मनाही नहीं। यदि कोई पवित्र चरित्र कन्या जो शुद्ध कुल उत्पन्न हुई हो, माता पिता दरिद्र क्यों न रहे हों हमारे महलों में आना चाहे, तो रुकावट न डाली जायगी।

परन्तु इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि ऐसी-वैसी औरतें हमारे यहाँ नही धसने दी जाती।'

नरपति कुछ कहना चाहता था, परन्तु सन्न-सा रह गया, जैसे किसी ने गला पकड़ लिया हो।

राजा ने कहा—'मुझे याद पड़ता है कि एक ठाकुर उस नाम के पालर में रहते थे। उनकी कन्या का सम्बन्ध मेरे साथ स्थिर हुआ था, परन्तु इसका क्या प्रमाण है कि यह वही कन्या है?'

नरपति के सिर से एक बोझ-सा हट गया। प्रमाण प्रस्तुत करने के उत्साह और आग्रह से बोला—'मैं सौगन्ध के साथ कह सकता हूं, मेरे सामने वह उत्पन्न हुई थी। अठारह वर्ष से उसे खाते-खेलते देखा है। ऐसी रूपवती कन्या बहुत कम देखी-सुनी गई है। महाराज ने भी तो विवाह-सम्बन्ध कुछ देखकर ही किया होगा।'

राजा मानो लाज मे डूब गया। परन्तु एक क्षण में सम्भलकर दृढ़ता के साथ बोला—'मैं भोग-विलास के पक्ष में नहीं हूं। यह समय दलीप-नगर के लिये बड़ा कठिन जान पड़ता है। इस समय निरन्तर युद्ध करने की इच्छा मन में है, उसी में हम सब का त्राण है। जब अवकाश का समय आवेगा, तब इन बातों की ओर ध्यान दूंगा।'

फिर बेफिक्री की सच्ची मुस्कराहट के साथ कहा—'अर्थात यदि लड़ते-लड़ते उसके पहले ही किसी समय प्राण समाप्त न हो गया तो।'

इस मुस्कराहट के भीतर किसी भयङ्कर दृढ़ता की झलक थी। नर-पति उससे सहम गया। धीरे से बोला—'मेरी यह प्रार्थना नही है कि ज्यों ही अवकाश मिले, महलों की शोभा बढ़ाई जाय।' फिर किसी भाव से प्रेरित होकर कहने लगा—'इस समय विराटा पर संकट है। न मालूम कौन कहाँ भटकता फिरे, इसलिये अन्नदाता, मेरे इस कहने की ढिठाई को क्षमा करें। स्वयं न जा सकें, तो अपने किसी प्रधान कर्मचारी को

कुछ सेना के साथ भेज दें। डोले का प्रबंध विराटा में कर दिया जायगा। यहाँ शीघ्र बुलवा लिया जाय।'

'क्या उस लड़की ने वहुत आग्रह के साथ यह वात कहलवाई है?' राजा ने कुतर्क के स्वर में पूछा।

नरपति का सारा शरीर उत्तेजित हो गया। रुँधे हुये गले से बोला—'न महाराज। उसने तो निषेध किया था। मैंने ही अपनी ओर से प्रार्थना की है। वह वड़ी अभिमानी क्षत्रिय-बालिका है।'

राजा ने सांत्वना-सी देते हुये कहा—'नहीं-नहीं। मैं कोई रोक-टोक नहीं करता हूं। यदि उसकी इच्छा हो, तो वह चली आवे, तुम भेज दो। परन्तु यह समय भाँवर के लिये उपयुक्त नहीं है।'

नरपति ने सिर नीचा कर लिया।

राजा ने कहा—'अथवा अवकाश मिलने पर, अर्थात् जब युद्धों से निबट जाऊँगा और कही कोई विघ्न बाधा न रहेगी, तब मैं ही आकर देख लूँगा और जो कुछ उचित होगा, अवश्य करूँगा।'

इसके बाद विराटा से सम्बन्ध रखने वाली राजनीतिक चर्चा पर बातचीत होने लगी। राजा ने अन्त में नवाब के खिलाफ विराटा को सहायता देने और सेना लेकर आने का वचन देकर नरपति को बिदा किया।

[६७]

नरपति दलीपनगर से लौट आया। विराटा के राजा को उसने यह सन्तोष-जनक समाचार सुनाया कि बहुत शीघ्र राजा देवीसिंह की सेना सहायता के लिये आवेगी—अर्थात् आवश्यकता पड़ते ही।

परन्तु जिस समय नरपति अपने घर—'विराटा के द्वीप वाले मन्दिर में—आया, चेहरे पर उदासी थी।'

रामदयाल उस समय वहाँ न था। कुमुद और गोमती थीं।

मन्दिर की दालान में वैठकर नरपति ने कुमुद से कहा—'मन्दिर की रक्षा तो हो जायगी।'

कुमुद ने लापरवाही के साथ कहा—'इसमें मुझे कभी सन्देह नहीं रहा है। दुर्गा रक्षा करेंगी।'

'राजा देवीसिंह ने भी वचन दिया है।' प्रतिवाद न करते हुये नरपति बोला।

गोमती का मुख खिल उठा। गौरव के प्रकाश से आँखें चञ्चल हो उठीं।

गोमती ने कुमुद से धीरे से कहा—'तब यहाँ से कहीं और जाने की अटक न पड़ेगी।'

कुमुद निश्चिन्त से भाव से बोली—'अटक क्यों पड़ने लगी? और यदि पड़ी भी, तो यह नदी और अग्रवर्ती वन सब दुर्गा के है।'

गोमती को बुरा लगा नरपति से सरलता के साथ पूछा—'दलीप-नगर में तो बड़ी भारी सेना होगी काकाजू?'

'हाँ, है।' नरपति ने उत्तर दिया—'बड़ा नगर, बड़े लोग और बड़ी बातें।'

गोमती आँख के एक कोने से देखने लगी। कुमुद ने कहा—'राजा ने गोमती के विषय मे पूछा था।'

गोमती सिकुड़कर कुमुद के पीछे बैठ गई। नरपति ने उत्तर दिया—'राजा ने नही पूछा था। मैने स्वयं चर्चा उठाई थी।'

कुमुद ने कहा—'आपको ज्यादा कहना पड़ा था या उन्हें सब बातों का तुरन्त स्मरण हो आया था?'

नरपति ने कुछ उत्तर नही दिया। कुछ सोचने लगा। गोमती का हृदय धड़कने लगा। कुमुद बोली—'राज्य के कार्यो मे उलझे रहने के कारण कदाचित् कुछ देर मे स्मरण हुआ होगा राजा ने क्या कहलवा भेजा है?'

नरपति राजपूत के कर्त्तव्यो और कैण्डो से अपरिचित था उत्तर दिया—'मुझे तो क्रोध आ गया था। पराई जगह होने के कारण

संकोच-वश कुछ नहीं कह सका, परन्तु कलेजा राजा की बातों से धड़कने लगा था। वह सब जाने दो। इस समय तो हम लोगों को इतने पर ही सन्तोष कर लेना चाहिये कि राजा इस स्थान की रक्षा करने के लिये एक-न-एक दिन-और शीघ्र ही अवश्य आवेंगे।'

परन्तु कुमुद ने पूरी बात को उघाड़ने का निश्चय कर लिया था, इसलिये बोली—'क्या राजा होते ही वह यह भूल गये कि उस दिन पालर में उनकी बरात गई थी, वन्दनवार सजाये गये थे, स्त्रियों ने कलश रक्खे थे, मण्डप बनाया गया था और गोमती के शरीर पर तेल चढ़ाया गया था? आपने क्या उन्हें स्मरण दिलाया?'

'मैंने इन सब बातों की याद दिलाई थी।' नरपति ने जवाब दिया—'परन्तु उन्होने कोई ऐसी बात नही की, जिससे मन में उमङ्ग उत्पन्न होती। वह तो सब कुछ भूल से गये है।'

गोमती पसीने मे तर हो गई। सिर में चक्कर-सा आने लगा।

'उन्होने क्या कहा था?' कुमुद ने पूछा।

नरपति ने उत्तर दिया—'राज-काज की उलझनों में स्मरण नहीं रह सकता। यदि वह आना चाहे और वही हो जिसके साथ पालर में सम्बन्ध होने वाला था, तो कोई रोक-टोक न की जायगी। मैं स्वयं न आ सकूँगा। सेना लेकर जब विराटा की रक्षा के लिये आऊँगा, तब जैसा कुछ उचित समझा जायगा करूंगा।'

नरपति के मन पर राजा की तत्सम्बन्धी वार्ता सुनकर जो भाव अंकित हुआ, उसे उसने अपने शब्दों में राजा की भाषा का रूप देकर प्रकट किया।

कुमुद बोली—'वह इतनी जल्दी भूल गये! राजपद और राजमद क्या मनुष्य को सब-कुछ भूल जाने के लिये विवश कर देते है! जैसे क्षत्रिय वह है, उनसे कम कुलीन क्या यह दीन क्षत्रिय-बालिका है?'

'वह तो कहते थे।' नरपति ने तुरन्त उत्तर दिया—'कि राजाओं का सम्बन्ध राजाओं में होता है।'

गोमती चीख उठी। चीख मारकर कुमुद से लिपट गई। नरपति ने देखा, पसीने में डूब-सी गई और शायद अचेत हो गई। पंखा ढूंढ़ने के लिये अपनी कोठरी में चला गया।

कुमुद ने गोमती को धीरे से अपनी गोद की ओर खींचा। वह अचेत न थी, परन्तु उसके मन और शरीर को भारी कष्ट हो रहा था।

कुमुद का जी पिघल उठा। बोली—'गोमती, इतनी-सी बात से ऐसी घबरा गई! इतनी अधीर मत होओ। न मालूम महाराज ने क्या कहा है और काकाजू ने क्या समझा है। वह सेना लेकर थोड़े दिनों में यहाँ आ ही रहे है। यहाँ सब बात यथावत् प्रकट हो जायगी। मुझे आशा है, राजा तुम्हें अपनायेंगे।'

गोमती कुछ कहना चाहती थी परन्तु उसका गला बिलकुल सूख गया था, इसलिये एक शब्द भी मुँह से न निकला।

इतने मे नरपति पंखा लेकर आ गया। कुमुद ने कहा—'आप भोजन करें, मै तब तक हवा करूँगी।'

'न, यह न होगा।' नरपति बोला—'देवी इस लड़की को पंखा झलेंगी! मैं झले देता हूं।'

कुमुद ने कहा—'अकेले में उससे कुछ कहना भी है।'

पंखा वही रखकर नरपति कोठरी में चला गया।

पंखा झलते हुये कुमुद बोली—'शांति और धैर्य के साथ उनके ससैन्य आने की बाट जोहनी ही पड़ेगी। वह मन्दिर मे अवश्य आवेंगे। मैं यहाँ पर रहूं या कही चली जाऊँ, तुम बनी रहना। वह तुम्हें यहाँ अवश्य मिलेंगे। निराश मत होओ।'

पंखे की हवा से शरीर की भड़क शांत हुई। कुमुद को पंखा झलते देखकर गोमती को बोलने का विशेष प्रयत्न करना पड़ा।

सिसकते हुये धीरे से बोली-'मुझे यहाँ छोड़कर कही न जा सकोगी। मेरे मन में अब और कोई विशेष इच्छा नहीं है। जब तक प्राण न जायें, तब तक चरणो मे ही रखना।'

कुमुद की पूर्व रुखाई तो पहले ही चली गई थी, अब उसके मन में दया उमड़ आई। कहा—'जब तक राजा तुम्हें स्वयं लेने नहीं आते, तब तक तुम्हें वहाँ अपने आप जाने के लिये कोई न कहेगा। परन्तु तुम्हें यह न सोचना चाहिये कि उन्होंने किसी विशेष निठुराई के वश होकर इस तरह की बात कही है।'

गोमती चुप रही।

कुमुद एक क्षण सोचकर बोली—'यदि हम लोगो को यहाँ से किसी दूसरे स्थान पर जाना पड़ा, तो तुम अवश्य हमारे साथ रहना। हमें आशा है, राजाससैन्य आयेंगे, परन्तु यह आशा बिलकुल नही है कि उनके आने तक हम लोग यहाँ ठहरे रहेंगे। उनके आने की खबर मिलने के पहले नवाब अपनी सेना इस स्थान पर भेजने की चेष्टा करेगा। हम लोगों को शायद बहुत शीघ्र ही यह स्थान छोड़ना पड़ेगा।'

गोमती ने साथ ही रहने का दृढ़ निश्चय प्रकट किया।

[६८]

दलीपनगर का राज्य उन दिनों भँवर में फंसा हुआ-सा जान पड़ता था। राजा देवीसिंह का अधिकार अवश्य हो गया था, परन्तु उसकी सत्ता सबों ने नही मानी थी। कोई-कोई खुल्लम-खुल्ला विरोध कर देते थे, बहुतों के भीतर-भीतर प्रतिकूलता की लहरें उठ रही थी। जनार्दन शर्मा, हकीमजी और लोचनसिंह-सदृश लोग नये राजा के दृढ़ पक्षपाती थे, परन्तु अनेक प्रमुख लोग विपरीत भाव का प्रदर्शन न करते हुये भी कोई ऐसा काम नही कर रहे थे, जिससे स्पष्ट तौर पर यह विश्वास होता कि वे देवीसिंह के सहायक है। माल-विभाग और सेना को देवी-

सिंह बहुत ध्यान के साथ सुधार रहे थे, परन्तु वर्षो की बिगड़ी हुई संस्थाओ का ठिकाना लगाना कुछ विलम्ब का काम होता है।

उधर कुन्जरसिंह बिगड़े-दिल सरदारों को अपनी ओर जुटाने में दत्त चित था। रानियों की ओर से भी परिश्रम जारी था। जो लोग देवी-सिंह के विरुद्ध थे, वे यह जानते थे कि रानियों को कालपी के फौजदार की सहायता मिल रही है। उन्हें यह भी मालूम था कि यह सहायता कुन्जरसिंह के लिये अप्राप्य है, परन्तु वे लोग यह विश्वास करते थे कि नवाब कुन्जरसिंह के साथ पुरुष होने के कारण मैत्री की सन्धि ज्यादा जल्दी करेगा। इसलिये उन्होंने सहायता का वचन तो रानियों को दे दिया, परन्तु मन के भीतर कुन्जरसिंह के लिये फाटक बिलकुल बन्द नही किये। यह कहा कि नवाब को आपके साथ होते देखकर हम लोग आपके साथ हो जायेंगे। परन्तु यह वचन भी नही दिया।

कुञ्जरसिह पर इसका बहुत कष्ट-दायक प्रभाव पड़ा। वह कुछ दिन आशा और निराशा के बीच मे भटकता हुआ अन्त मे बहुत थोड़ी-सी आशा मन मे लिये हुये विराटा लौट आया। उस समय नरपति को दलीपनगर से लौटे हुये दो-एक दिन हो चुके थे।

सन्ध्या के पूर्व ही कुन्जरसिंह मन्दिर में आ गया। उसे देखते ही गोमती अपनी कोठरी मे चली गई। कुमुद ने देखा, कुन्जर का चेहरा बहुत उतरा हुआ है।

धीरे-धीरे पास जाकर जरा गम्भीर भाव से कुमुद ने कहा— 'आप थके माँदे मालूम होते-हैं। क्या दूर से आ रहे है ?'

'हाँ, दूर से आ रहा हूं।' कुन्जरसिंह ने थके हुये स्वर में जवाब दिया। 'आशा नही कि अब की बार विराटा छोड़ने पर फिर कभी लौटकर आऊँगा।'

दुःख का कोई प्रदर्शन न करके कुमुद ने सहज कोमल स्वर में कहा- 'जब तक आप यहाँ है इस दालान मे डेरा डाले।'

दालान में अपना सामान रखकर कुञ्जरसिंह बोला—'सुनता हूं कुछ दिनों में विराटा का यह गढ़ और मन्दिर दलीपनगर के राजा देवीसिंह के शिविर बन जायेंगे ।'

'उस दिन के लिये हम लोग कदाचित यहाँ नही वने रहेंगे ।' कुमुद ने धीरे से कहा ।

कुञ्जरसिंह को नरपतिसिंह का ख्याल आया। पूछा—'काकाजू कहाँ है ?'

'किसी काम से उस पार गाँव गये हैं । आते ही होंगे । आपको नही मिले ? आप तो गाँव में ही होकर आये है ?' कुमुद ने उत्तर दिया ।

कुञ्जरसिह ने जरा उत्तेजित स्वर मे कहा—'अव यह गांव देवीसिंह को अपने यहा बुला रहा है । मैं और देवीसिंह एक स्थान पर नहीं रह सकते । इसलिये अलग होकर आया हूं । यदि गाँव से ही किसी से बतबड़याव हो पड़ता, तो यहाँ तक दर्शनो के निमित्त न आ पाता ।'

कुमुद ने पूछा—'राजा देवीसिंह कालपी के नवाब का दमन करने के लिये इस ओर आवेंगे इसमें आपको क्या आक्षेप है ?'

कुञ्ज़रसिंह ने उत्साह के साथ उत्तर दिया—'यह मेरे बड़े सौभाग्य की वात है कि कम-से-कम आपके हृदय मे तो मेरे लिये थोड़ी-सी सहानुभूति है । वैसे इस अपार संसार मे मेरे कितने हितू है ?'

कुमुद ने द्वार की ओर देखकर कहा—'अब तक काकाजू नही आये । न जाने कहाँ देर लगा दी है ।'

कुञ्जर ने इस मंतव्य के विषय मे कुछ न कहकर, अपनी ही चर्चा जारी रक्खी—'कालपी का नवाव मेरा शत्रु है मै उसके विरुद्ध सदा खड्ग उठाये रहने को तैयार हूं । परन्तु मैं यह कैसे भूल सकता हूं कि देवीसिंह अनाधिकार चेष्टा से, अन्याय से; छल-कपट से मेरी गद्दी पर जा बैठा है ? देवीसिंह का प्रतिकार मेरे लिये उतना ही आवश्यक है, जितना कालपी के नवाव का—'

बात काटकर कुमुद बोली—'मै जरा बाहर से देखती हूं कि पिताजी आ रहे है या नही और उन्हें कितनी देर है। अभी सूर्यास्त नहीं हुआ है दूर तक का आदमी दिखलाई पड़ सकता है।'

कुमुद बारीकी से गोमती की कोठरी की ओर निगाह दौड़ाती हुई दरवाजे के बाहर हो गई।

कुञ्जरसिंह भी पीछे-पीछे गया, परन्तु उसने यह न देख पाया कि गोमती भी अपनी कोठरी छोडकर चुपचाप पीछे-पीछे हो ली है।

बाहर जाकर कुमुद ने देखा कि नरपति के लौट आने का कोई लक्षण नही। बाहर ठिठक गई। पूर्व की ओर के वन की रेखा को परखने लगी इतने मे कुञ्जरसिंह वहाँ आ गया। हाथ जोड़कर बोला—'मै देवीसिह का विरोधी हू, इसमे यदि आपको कोई बात खटकती हो, तो आज से सम्पूर्ण विरुद्ध भाव को हृदय के भीतर से धोकर वहा सकता हूं परन्तु यदि मैं आपको यह विश्वास करा दूं कि कपट और अन्याय से देवीसिंह मेरे राज्य का अधिकारी हुआ है तब भी आप क्या उसका साथ देने की आज्ञा देगी ? यदि ऐसी अवस्था मे भी अपना हक छोड़ देने का आदेश होगा, तो वह आज्ञा भी शिरोधार्य होगी।'

कुमुद ने आग्रह के साथ कहा—'हाथ मत जोड़िये। यह अच्छा नही मालूम होता। आप राजकुमार है।'

कुञ्जर अधिकतम आग्रह के साथ बोला—'राजकुमार नहीं हू। कम से-कम आपकी समझ मे कुछ भी नही हूं, केवल सेवक हूं, भक्त हूं।

कुमुद ने कहा—'जब तक काकाजू नही आते, चलिये, उस चट्टान पर बैठकर आपसे लड़ाइयो की कुछ चर्चा सुनूं हम लोगों को यहाँ संसार का और कोई वृतांत सुनने को नही मिलता। काकाजू हाल मे दलीपनगर गये थे।'

'परन्तु अन्तिम बात के मुंह से निकलते ही कुमुद ने अपना होंठ काट लिया। वह इस बात को कहना नही चाहती थी, न-मालूम कैसे निकल पड़ी।'

जिस चट्टान पर बैठने की कुमुद ने इच्छा प्रकट की थी, वह पास ही थी। कुञ्जर उसके नीचे की ओर वाली ढाल पर जा बैठा और कुमुद उसकी टेक पर। दोनों की पीठ मन्दिर के द्वार की ओर की थी।

कुञ्जर ने पूछा—'काकाजू दलीपनगर किस लिये गये थे?'

'आपको तो मालूम ही होगा।' कुमुद ने उत्तर दिया—'मेरी इच्छा न थी कि वह जाते, परन्तु यहाँ के राजा ने उन्हें हठ करके भेजा। इस समय विराटा को सहायता की बड़ी आवश्यकता है।'

'इसमें हर्ज ही क्या हुआ?' कुञ्जरसिंह ने कहा—'विराटा इस समय संकट में है। मुझ-सरीखे लोग यदि उसकी सहायता नहीं कर सकते, तो जो उसकी सहायता कर सकते हैं, उनके पास तो निमन्त्रण जायगा ही परन्तु यदि आपकी कृपा हुई, तो देवीसिंह के विना मैं अकेला ही बहुत कुछ करके दिखलाऊँगा।'

कुमुद ने उत्तर नहीं दिया।

कुञ्जर बोला—'आगामी युद्ध में, ऐसा जान पड़ता है, विराटा का राजा देवीसिंह का साथ देगा। ऐसी अवस्था में मेरा यहाँ आना अब असम्भव होगा। क्या विराटा का राजा किसी प्रकार मेरी ओर हो सकता है?'

कुमुद के उत्तर देने के पहले तुरन्त कुञ्जर ने कहा—'यह असम्भव है। सबदलसिंह मानते है कि मैं कालपी की सेना का मुकाबला करने में उनकी अच्छी सहायता नहीं कर सकता हूं। वह क्यों मेरा साथ देने लगे? और फिर उन्होंने स्वयं देवीसिंह को बुलाया है।'

नि.स्वास परित्याग कर कुञ्जरसिंह बोला—'अब देवीसिंह के राज्य की अखण्डता में कोई सन्देह नहीं, अर्थात् यदि वह कालपी के नवाब को पराजित कर सका।'

फिर तुरन्त आतुरता के साथ उसने कुमुद के पैरों की ओर हाथ बढ़ाते हुये कहा—'यदि मैं इन चरणों की रक्षा में अपना सब कुछ

विसर्जन कर सकूँ, इसी सामने वाली धार में, इस भयंकर दह में यदि किसी दिन मुझे वह प्रयत्न करते हुये विलीन हो जाना पड़े, तो यही समझूँगा कि दलीपनगर का क्या सारे संसार का राज्य मिल गया। क्या मुझे इतने की—केवल इतने-भर की— आज्ञा मिल जायगी ?' दलीपनगर का कोई भी राज्य करे, संसार किसी के भी "अधिकार में चला जाये, परन्तु यदि मुझे इन चरणों में रहने दिया जाय, तो मुझे सब कुछ मिल गया।'

कुमुद चुप थी। बेतवा के पूर्वीय किनारे को जल–राशि छूती हुई चली जा रही थी। अस्ताचलगामी सूर्य की कोमल सुवर्ण-रश्मियाँ बेतवा की धार पर उछल-उछलकर हँस-सी रही थी। उस पार के वन–वृक्षों की चोटियों के सिरों ने दूरवर्ती पर्वत की उपत्यका तक श्यामलता को एक समरस्थली-सी बना दी थी। उस सुन्दर सुनसान मे कुञ्जरसिंह के शब्द बज्र-से गये।

कुमुद ने कहा—'हम लोगों का कुछ ठीक नही, कब तक यहाँ रहें, कब यहाँ से चले जायें और कहाँ जा रुकें।'

'इसमें मेरे लिये कोई बाधा नही।' कुञ्जरसिंह उमङ्ग के साथ बोला—'आप यहाँ न रहें, यह मेरी पहली प्रार्थना है। दूसरी प्रार्थना यह है कि आप जहाँ भी जाये, मुझे साथ रहने की अनुमति दें। बुरा समय आ रहा है। यदि साथ में एक सैनिक रहेगा, तो हानि न होगी।'

कुमुद ने बहती हुई धार की ओर देखते हुये कहा—'दुर्गा के सैनिकों को कभी कष्ट नही हो सकता। जब कभी मनुष्य को दुःख होता है, अपने ही भ्रम के कारण होता है। यदि मन में भ्रम न रहे, तो उसे किसी का भय न रहे।'

'धर्म का यह ऊँचा तत्व किसे मान्य न होगा?' कुञ्जरसिंह ने कहा—'फिर भी एक दिन दृढ अत्यंत दृढ़ भक्त की यह विनती तो स्वीकार करनी ही पड़ेगी।'

कुमुद चुप रही।

कुञ्जरसिंह किसी भाव के प्रवाह में बहता हुआ-सा बोला—'यदि आपने निषेध किया, तो मैं आज्ञा का उल्लंघन करूंगा, यदि आपने अनुमति न दी, तो मैं अपने हठ पर अटल रहूंगा—मैं छाया की तरह फिरूंगा। पक्षियों की तरह मड़राऊँगा। चट्टानों की तली में, पेड़ों के नीचे, खोहों में, पानी पर, किसी-न-किसी प्रकार बना रहूंगा। आपको भ्रकुटी-भङ्ग का अवसर न दूंगा परन्तु निकट बना रहूंगा। साथ रक्खूंगा केवल अपना खड्ग। समय आने पर दुर्गा के चरणों में अपना मस्तक अर्पण कर दूंगा।'

'राजकुमार!' काँपते हुये गले से कुमुद ने कहा।

'आज्ञा?' पुलकित होकर कुन्जर बोला।

कुमुद ने उसी स्वर में कहा-'आपको इतना बडा त्याग नही करना चाहिये।'

'कितना बड़ा? कौन-सा?' कुन्ज़र धारा-प्रवाह के साथ कहता चला गया—'नवाब से लड़ना धर्म है। धर्म की रक्षा करना कर्तव्य है। कर्तव्य पालन करना धर्म है। आपकी आज्ञा का पालन करना धर्म, कर्तव्य और सर्वस्व है। यदि इन चरणों की कृपा बनी रहे, तो मैं संसार-भर की एकत्र सामर्थ्य को तुच्छ तृण के समान समझूं, मुझे कुछ न मिले, संसार भर मुझे तिरस्कृत, वहिस्कृत कर दे, परन्तु यदि चरणों की कृपा बनी रहे, तो, मै समझूं कि देवीसिंह मेरा चाकर है, नवाब मेरा गुलाम है और संसार भर मेरी प्रजा है।'

कुमुद ने मुस्कराकर, परन्तु दृढ़ता के साथ इस प्रवाह का निवारण करते हुये कहा—'धीरे से, धीरे से। इतने जोश की बात करने की आवश्यकता नही।'

कुन्जर धीरे से परन्तु उसी जोश के साथ बोला—'तब अनुमति दीजिये, आज वरदान देना होगा।'

कुमुद ने लम्बी साँस ली।

कुञ्जरसिंह ने कहा—'आपका शायद यह विचार है कि मैं नीच हूं और नीच को वरदान नहीं दिया जा सकता। परन्तु मैं कहता हूं कि वसन्त छोटे और बडे सब प्रकार के वृक्षों को हरियाली देता है, धराशायी घास के तिनकों में भी नन्हें-नन्हें सुन्दर फूल लगा देता है और पवन किसी स्थान को भी अपनी कृपा से वंचित नहीं रखता।'

कुमुद बोली—'आप यदि देवीसिंह से लड़ेंगे, तो कालपी के नवाब का पक्ष सबल हो जायगा।'

'मैं देवीसिंह से नही लड़ूंगा।'

'क्यों?'

'आपकी इच्छा नही जान पड़ती। मैं देवीसिंह से सन्धि कर लूंगा। अपना सारा हक त्याग दूंगा।'

'मैं यह नहीं चाहती, और न यह कहती ही हूं।'

इसके बाद कुछ पल तक सन्नाटा रहा। कुन्जर ने कहा—'वास्तव में अब मेरे जी में कोई बड़ी महत्वाकांक्षा शेष नहीं है। यदि कोई परम अभिलाषा है, तो चरणों की सेवा की है।'

यह कहकर कुन्जरसिंह ने कुमुद के पैरों को छू लिया। कुमुद ने पीछे पैर हटाने चाहे, परन्तु न हटा सकी। बोली-'आपने क्या किया?'

कुन्जरसिंह ने कहा—'आप मेरी पूज्य हैं। मेरी सम्पूर्ण श्रद्धा की केन्द्र है। मैंने कोई अनोखा कार्य नही किया।'

कुमुद काँपती हुई आवाज में बोली—'आप ऐसा फिर कभी न करना। मैं कोई अवतार नहीं हूं। साधारण स्त्री हूं। हाँ, दुर्गा माता की सच्चे जी से पूजा किया करती हूं। आप मुझे अवतार न समझें।'

'और आप मुझे।' कुन्जर ने कहा—'नीच व्यक्ति न समझें।'

तुरन्त कुमुद बोली—'आप क्यो यह बार-बार कहते है? मैं सब बातें सुन-समझकर ही आपको राजकुमार कह कर सम्बोधित करती हूं

और करती रहूंगी। अर्थात् जब कभी आप हम लोगों को मिल जाया करेंगे।'

बड़ी दृढ़ता के साथ कुञ्जर ने कहा—'मैंने आज से देवीसिंह का विरोध छोड़ा। चरणों में ही सदा रहने का निश्चय किया—'

'न-न।' कुमुद जल्दी से बोली—'इस तरह का प्रण मत करिये। आप देवीसिंह का सामना अवश्य करें। अपने हक के लिये लड़ें, परन्तु कालपी के नवाब से जब वह निबट लें।'

कुञ्जर ने कहा—'इसके सोचने के लिये अभी बहुत समय है, परन्तु यह बात तय है कि चरणों में से हटाया नहीं जाऊँगा।'

कुमुद बोली—'यह स्थान कैसा सुन्दर है। टापू के दोनों ओर से बेतवा की धार चली जा रही है। लम्बी, चौड़ी, ढालू और सम-स्थल चट्टानों और पठारियों से जब पानी टकराता है, तब किसी बाजे के बजने सा कोलाहल होता है। चतुर्दिक वन-बीहड में ऐसी निस्पन्दता छाई हुई है कि विश्वास होता है कि पर्वत, वन और नदी-वेष्ठित इस टापू को दुर्गा ने विशेष रूप से चाहा है। मेरी इच्छा नहीं है कि यह स्थान छोड़ूं—परन्तु कदाचित् विवश होकर छोड़ना पडे।'

'यहाँ बने रहने में कोई हानि नहीं।' कुञ्जर ने कहा—'देवीसिंह इस टापू में अपनी छावनी डालकर अपने को कैद नहीं करावेगा। उसकी छावनी मुसावली की तरफ कहीं पड़ेगी। यदि वह आसानी से यहाँ तक आ पाया, तो मैं यहाँ किसी चट्टान की छाया में खड्ग सम्भाले हुये पड़ा रहूंगा।'

कुमुद बोली—'अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। कदाचित् अटक पड़ी तो सामने वाले वन में चली जाऊँगी।'

कुञ्जरसिंह हाथ जोड़कर कुछ कहना चाहता था कि कुमुद ने निवारण करके कहा—'फिर वही अत्याचार! आप यदि हम लोगों के निकट रहना चाहें तो यह सब कभी मत करना।'

कुञ्जरसिंह की नसों में बिजली-दौड़ गई। उसने प्रमत्त नेत्रों से कुमुद की ओर देखा। आँख मिलते ही कुमुद का चेहरा लाल हो गया। परन्तु दृष्टि बचाकर बोली—'काकाजू आ ही रहे होंगे। सन्ध्या हो रही है। दिया-बत्ती और आरती का प्रबन्ध करना है। मैं जाती हूं।'

कुमुद चट्टान की टेक पर खड़ी हो गई। ऐसा जान पड़ा, मानो कमलों का समूह उपस्थित हो गया हो—जैसे प्रकाश—पुन्ज खड़ा कर दिया गया हो। पैरों के पैंजनों पर सूर्य की स्वर्ण-रेखायें फिसल रही थी। पीली धोती मन्द पवन के धीमे झकोरे से दुर्गा की पताका की तरह धीरे-धीरे लहरा रही थी। उन्नत भाल मोतियों की तरह भास-मान था। बड़े-बड़े नेत्रों काले नेत्रों की बरौनियाँ भौहों के पास पहुंच गई थी। आँखो से झरती हुई प्रभा ललाट पर से चढ़ती हुई उस निर्जन स्थान को अलोकित-सा करने लगी। आधे खुले हुये सिर पर से स्वर्ण को लजाने वाली बालों की एक लट गर्दन के पास जरा चंचल हो रही थी। उस विस्तृत विशाल वन और नदी की उस ऊँची चट्टान के सिरे पर खडी हुई कुमुद को देखकर कुन्जर का रोम-रोम कुछ कहने के लिये उत्सुक हुआ।

वे चट्टान और पठारियाँ, वह दुर्गम और नीली धार वाली बेतवा, वह शांत भयावना सुनसान, वह हृदय को चंचल कर देने वाली एकांतता और चट्टान की टेक पर खड़ी हुई अतुल सौंदर्य की वह सरल मूर्ति !

कुन्जर ने मन में कहा—'अवश्य देवी है। विश्व को सुन्दर और प्रेममय बनाने वाली दुर्गा है।'

कुन्जर को अपनी ओर आँख गड़ाकर ताकते हुये देखकर कुमुद के चेहरे पर और गहरी लाली छा गई। उस समय सूर्य की कुछ किरणें ही बाकी रह गई थी। वे उस लालिमा को और भी उद्दीप्त कर गईं।

कुन्जर को ऐसा आभास हुआ, मानो सम्पूर्ण विश्व के पुष्पों ने अपनी ताजगी उस लालिमा को दे दी हो। हृदय उमड़ पड़ा। विश्व

भर को अपने में भर लेने के लिये लालायित हो उठा और किसी अपरिचित, किसी निस्सीम, किसी अनिश्चित बलिदान के लिये दृढ़ता अनुभव करने लगा।

कुमुद ने धीरे से कहा—नाव में बैठे हुये काकाजू भी आ रहे है। मैंने कहा था न कि वह आते ही होंगे।' परन्तु कुमुद ने कुञ्जर की ओर देखा नही।

कुञ्जर उन्मत्त-सा होकर बोला—'एक बार, केवल एक बार चरणों को अपने मस्तक से छुला लेने दीजिये और हृदय से।'

कुमुद के मुख-मण्डल पर फिर गहरी लाली दौड़ आई। भृकुटि-भङ्ग करने की उसने चेष्टा की, परन्तु विफल हुई। मुस्कराहट ने होठों को बरबस पकड़ लिया। बोली—'यदि आपने यह प्रयास किया तो मैं इसी टोर से कूद पड़ूंगी, फिर चाहे चोट भले ही लग जाय।'

'नहीं, मैंने इस संकल्प का त्याग कर दिया। आप इसी ओर से उतर आवें।'

कुमुद विना कोई शब्द किये धीरे से उतर आई। नीचे आते ही उसने देखा, गोमती चट्टान के पास से तेजी से भागती हुई मन्दिर में घुस गई कुञ्जर ने नहीं देखा।

दरवाजे की ओर जाती हुई कुमुद से धीरे से बोला—'मैं अपने मन्दिर में अपनी देवी की आरती करूँगा।'

कुमुद चली गई।

[६६]

दिया-बत्ती और आरती हो चुकने के बाद गोमती को ऐसा जान पड़ा; जैसे कुमुद उससे कुछ बातचीत करना चाहती हो। वह भी उत्सुक नहीं जान पड़ती थी।

उस दिन कोठरी में कुछ गरमी मालूम होती थी, इसलिये वे दोनों मन्दिर की छत पर चली गई। कोठरियों, देवालय और दालान सब पर छतें थी। बहुत आदमी आराम के साथ उन पर लेट सकते थे।

रात्रि अन्धकारमय थी। वेतवा के प्रवाह की चहल-पहल स्पष्ट सुनाई पड़ती थी। जव कभी कोई वड़ी मछली उछलकर एक स्थान से दूसरे स्थान को दौड़ती थी, तव साफ सुनाई पड़ता था। वीच-वीच में किसी भ्रम से, किसी भय से टिटहरी चिल्ला पड़ती थी, वैसे सुनसान था। आकाश में विखरे हुये तारे और कही-कहीं उनकी झुरमुटे-प्रकाश के एक मात्र साधन थे। केवल पानी पर कुछ टिमटिमाहट दिखलाई पड़ती थी।

वे दोनों लड़कियाँ उस तिमिरावृत छत पर वैठ गई। गोमती का कलेजा धक-धक कर रहा था।

कुमुद वोली—'तुमने कुछ उपाय सोचा ?'

'कौन-सा ?' गोमती ने पूछा।

कुमुद ने कहा—'यही ठहरकर घटनाओं के चक्र और उनसे छुटक पड़ने वाले किसी अवसर की प्रतीक्षा में इसी स्थान पर वने रहना चाहिये अथवा उस पार उस गहन वन मे, जिसकी एक रेखा भी इस समय लक्ष्य नही हो सकती, चल देना चाहिये।'

'आपसे वडकर इस विपय पर सम्मति स्थिर करने वाला और कौन है ? जहाँ चलोगी, वही मैं पैर वड़ा दूंगी।'

'मैं समझती हूं, हम लोग अभी यही बने रहें।'

'ठीक है।'

'दलीपनगर के महाराज के आने की वाट तो देखनी ही पड़ेगी।'

गोमती ने कुछ नही कहा।

कुमुद वोली—'काकाजू ने जो कुछ उस दिन कहा था, उससे अपने मन को इतना दुखी मत बनाओ। मैं तुमसे पहले भी कह चुकी हूं, राजा काकाजू को पहले से जानते थे। उनके उस प्रस्ताव पर सहसा कैसे स्वीकृति दे देते ?'

गोमती ने कहा—'क्या बतलाऊँ' आजकल ऐसी-ऐसी अनहोनी बातें हो रही है कि मेरा चित्त बिल्कुल ठिकाने नही है जी चाहता है, इसी दह मे देह त्याग कर दूं। न-मालूम किस भ्रम और किस आशा के वश इस समय जीवन धारण किये हूं।'

कुमुद बोली—'राजा तुम्हें किसी-न-किसी दिन अवश्य मिलेंगे परन्तु तुम्हें इतना मान नहीं करना चाहिये। यदि वह न आ सके, तो तुम्हें उनके पास स्वयं पहुच जाने में संकोच न करना चाहिये।'

'ऐसा कही सम्भव है? कोई ऐसा करता है?' गोमती ने पूछा।

कुमुद ने उत्तर दिया—'क्यों नही? जहाँ पुरुष आगे पैर बढ़ाता है, वहाँ स्त्री नही बढ़ाती, परन्तु जहाँ पुरुष आगे नहीं बढ़ाता, वहाँ स्त्री को अग्रसर होने में क्यों संकोच होना चाहिये?'

गोमती ने हँसकर कहा—'ढिठाई क्षमा हो। यह तो बतलाइये कि इस पथ की बातो को कहाँ से सीखा?'

कुमुद ने बुरा नहीं माना। बोली—'इन बातों को बिना सिखलाये ही जान लेना स्त्रियों का जन्म सिद्ध अधिकार है। मैं जानती हूं, तुम्हें राज्य का लोभ नही है। शायद तुमने राजा को अच्छी तरह देखा भी नही है, फिर क्यों इतना अपनापन प्रकट करती हो?'

गोमती भी स्पष्ट बातचीत करने के लिये उस रात तैयार थी। कुमुद का मन भी स्पष्टता की ओर बढ़ रहा था।

गोमती ने कहा—'इसका उत्तर मै क्या दे सकती हूं? कुछ कहती, परन्तु कहते डर लगता है। आप में देवी का अंश है।'

'रहने दो।' कुमुद जरा उत्तेजित होकर बोली—'हममें, तुममें वह अंश वर्तमान है। जब मनुष्य की देह धारण की है, तब उसके गुण दोष से हम लोग नहीं बच सकते। कहो, क्या कहना है?'

गोमती ने धीरे से प्रश्न किया—'आपके हृदय में विश्व प्रेम के सिवा और किसी वस्तु के लिये भी स्थान है या नही?'

कुमुद ने हँसकर उत्तर दिया–'विश्व में सब आये और इसमें तो कोई सन्देह ही नही कि विश्व को प्यार करती हूं।'

गोमती कुछ सोचने लगी। देर तक सोचती रही। कुमुद उस सुन-सान अन्धेरे में दृष्टि गड़ाने लगी। अन्त में आँगन में कुछ खटका सुनकर बोली–'अभी लोग सोये नही।' फिर आँगन की ओर देखकर कहा—'काकाजू तो सो गये है।'

गोमती बोली—'वह जो आज संध्या के पहले कहीं से आये थे, आँगन में टहल रहे है।'

'हाँ वही।' कुमुद ने धीरे से कहा। फिर एक क्षण बाद सहसा पूछा—'रामदयाल कई दिन से नहीं दिखलाई पड़े ?'

'आपने नाम कैसे जाना ?' आश्चर्य के साथ गोमती ने पूछा। फिर धीरे से बोली–'आजकल सब कोई सब किसी के नाम जानते हैं।'

'सो बात नहीं है।' कुमुद ने मीठे स्वर में कहा–'तुम्ही ने तो एक बार कहा था कि वह महाराज का भृत्य है।'

गोमती ने स्वीकार किया।

कुमुद बोली–'काकाजू से न मालूम क्या राजा ने कहा था और क्या उन्होंने सुना था। इसके सिवा इस तरह की बातों से काकाजू का प्रयोजन नही रहता है। मेरी सम्मति है, तुम रामदयाल के द्वारा सब बातें अच्छी तरह समझ बूझ लो। व्यर्थ ही राजा को दोषी मत ठहराओ।'

कुमुद के शब्दो और कण्ठ के लोच से सहानुभूति का प्रवाह–सा उमड़ रहा था। गोमती ने उसकी सच्चाई को अनुभव किया।

जिस बात को गोमती बड़ी देर से भीतर ही रोके हुये थी, उसने अब कहा–'जीजी, एक बात पूछूं ?'

'अवश्य।'

'आप कभी विवाह करोगी ?'

कुमुद हँसने लगी। गोमती उत्साहित हुई। बोली - 'यदि आज इस प्रश्न का उत्तर न दें, तो फिर कभी दीजियेगा, मैं जानना चाहती हूं। बहुत दिनों से यह बात मन मे उठ रही है।'

'क्यों?' कब से कुमुद ने पूछा।

'इसका कारण नहीं बतला सकती।' गोमती ने उत्तर दिया।

कुमुद हँसकर बोली—'तुम्हारे इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर इसलिये नही दिया जा सकता कि इस तरह के प्रसङ्ग की कभी कल्पना ही नही की।'

[७०]

उस दिन नरपति के मुंह से राजा देवीसिंह की कही हुई बात को सुनकर गोमती को बड़ा विषाद हुआ था। परन्तु आशा ने धीरे-धीरे मन को फिर चेतन किया। शायद महाराज ने यह न कहा हो। कुछ कहा और नरपति काकाजू ने सुना कुछ और हो, अथवा यही कुछ कहा हो कि राज्य के काम-धंधों के मारे कैसे इतनी जल्दी स्मरण हो आता? परन्तु उन्होने यह क्यों कहा कि वही है या कोई और परन्तु वह सहसा मान भी कैसे लेते कि वही हूं? मान लो, वह यहाँ तक दौड़े आते, तो किसी विश्वास पर या यों ही? राजा है; संसार-भर के बखेड़ों को देखना-भालना पड़ता है। सतर्क रहने का अभ्यास पड़ गया है, उसी अभ्यास-वश यदि वे सब बातें कही हों, तो क्या आश्चर्य? परन्तु सेना राज्य और प्रजा की ओर इतना सघन आकर्षक है कि वह मुझे भूल जायें? - अभी बहुत दिन भी तो नहीं हुये है, मैने कङ्कण को अभी तक खोला भी नही है। इतने दिनो में क्या किसी समय एकान्त का एक क्षण भी न मिला होगा? क्या सो जाने के पहले शय्या पर एक करवट भी कभी न बदली होगी? क्या एक पल के लिये भी उस समय पालर की कोई कल्पना-रेखा न खिचती होगी।

बहुत कष्ट के बाद भी एक समय अवश्य ऐसा आता है कि मन कुछ स्थिरता प्राप्त कर लेता है। उस दिन के कष्ट के उपरान्त गोमती का

मन भी कुछ हल्का हुआ। उस दिन कुञ्जरसिंह जब अकेले में कुमुद के साथ सम्भाषण कर रहा था, गोमती का मन बहुत व्यथा में था। उसके मन को किसी नवीन समस्या की किसी ताजी उलझन की, किसी नई घटना की अपेक्षा थी। उस वार्तालाप को अकेले मे छिप कर सुनने की इच्छा इसीलिये उत्पन्न हुई। परन्तु चट्टान के पीछे से लौटकर मन्दिर मे आ जाने पर उसे विशेष सन्तोष नहीं हुआ। उसे कुछ ऐसा आभास हुआ कि कुञ्जरसिंह का अनुरोध केवल भक्त की विनयका न था, किन्तु उसमें कुछ और भी गहराई थी। रामदयाल ने उसे इस सम्बन्ध में अपनी एक कल्पना बतलाई थी। उस पर गोमती को विश्वास न हुआ, परन्तु ऐसा कोई स्पष्ट वाक्य गोमती ने नहीं सुना था, जिससे वह इस निष्कर्ष को निकालती कि यह निस्सन्देह प्रेम-वार्ता है। केवल झन्कार उसके हृदय में रह-रहकर उठती थी -- चरणों को सिर से, हृदय से लगा लूं!

गोमती से ऐसी बात किसी ने कभी न कही थी। इसीलिये मन की आंशिक स्थिरता में उसे ख्याल हुआ कि महाराज एकांत समय में कभी कुछ स्मरण करते होंगे या नहीं?

करते होंगे, तब हृदय को और चाहिये ही क्या? अभी नहीं मिलते? न मिले। कभी तो मिलेंगे। तब पूछ लिया जायगा कि क्या-क्या बात अकेले मे सोचा करते थे? किस-किस बात को लेकर रात-की-रात बेनीद चली जाती थी? उस कल्पना को लेकर क्यों इतना छटपटाया करते थे? और यदि स्मरण न करते होंगे तो?

यही बड़ा भारी अनिष्ट था। जैसे-जैसे किसी कष्ट के प्रथम आक्रमण के पश्चात् समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे उसकी पीड़ा कम होती जाती है और उसके साथ नई-नई और कदाचित् असम्भव आशाओं का उदय भी होता चला जाता है।

गोमती ने आशा की कि किसी दिन मेरी भी पूजा की जावेगी। यदि न हुई, तो बिना पूजा के कदापि समर्पण न किया जायगा। राजा

देवीसिंह भूले नहीं है, भुलाने का बहाना मात्र किया है। किसी दिन वह हँसते या रोते हुये इस बात को स्वीकार करेंगे। यदि ऐसी घड़ी न आई, तो देवीसिंह तो क्या, संसार-भर की भी विभूति यदि मनुष्य का अवतार धारण करके समर्पण की प्राप्ति की अभ्यर्थना करती हुई सामने आवेगी तो ठुकरा दी जायगी।

इसीलिये गोमती ने निश्चय किया कि मन को संभालना चाहिये और हो सके, तो दृढ़ रखना चाहिये। देखें, इस संसार में कौन क्या करता है। दूसरे को बिना देखे अपनी अवस्था के परिचय का सुख-दुख पूरी तरह प्राप्त न होगा। गोमती के हृदय से पहले एक हूक जब-तब उठ बैठती थी, अब अधिक उठने लगी। पालर के उस दिन के बन्दनवार बार-बार स्मरण आते थे। सन्ध्या का समय था। पालकी में महाराज नायकसिंह लौटे जा रहे थे। बन्दनवारों के सामने ही पालकी जा खड़ी हुई थी। किसी ने पालकी के काठ को आकर छुआ। कुछ कहा। फिर धड़ाम से गिर पड़ा। क्या कहा था ? यही न कि ये बन्दनवार मेरे ही लिये सजाये गये है। इन्ही वन्दनवारों के पीछे किवाड़ की ओट से देखा था। कङ्कन बँधी हुई कलाई किवाड़ के एक भाग को पकड़े हुये थी। क्या जान–बूझकर भूल जायेंगे ?

और यदि भूल गये हों, तो ? राजा प्रायः भूलें किया करते है। देखने पर शायद याद आ जाय। तो क्या मै केवल विलास की सामग्री हूं। क्या आकृति देखकर ही याद आवेगी ? पहले कभी साक्षात्कार न हुआ था। सौन्दर्य और लावण्य क्या पूर्व-परिचय की त्रुटि और विस्मृति की पूर्ति करेगा ?

तब भी बहुत कुछ आशा है। आदर हो। भक्ति हो। श्रद्धा हो। आराधना भी क्यों न हो ? उन्हें करनी पड़ेगी।

गोमती आशा, निराशा, मान और अभिमान मे गोते खाने लगी।

[७१]

एक दिन रामदयाल सवेरे ही आया। कुञ्जरसिंह विराटा के टापू में था। उस समय मन्दिर में केवल नरपति मिला और कोई न था। रामदयाल को नरपति देवीसिंह का आदमी समझता था इसलिये उसने उसके आने पर हर्ष प्रकट किया। बोला—'कहो भाई, क्या समाचार है ?'

'समाचार साधारण है।' उत्तर मिला—'दलीपनगर में जोरों के साथ तैयारियाँ हो रही है।'

'यह समाचार साधारण नहीं, बहुत आशा-पूर्ण है।'

'यहाँ टापू में आज सन्नाटा कैसा छाया हुआ है ?'

'स्नान ध्यान हो रहे है।'

'और लोग भी तो होंगे ?'

'रहने दो। तुम्हें उनसे क्या ? मन्दिर मे तो सभी प्रकार के लोग आया-जाया करते है।'

रामदयाल ने बात बदलकर कहा—'आप इस बीच में दलीपनगर भी हो आये और मुझे कुछ न मालूम पड़ा। यदि पहले से मालूम होता तो कदाचित् मैं किसी सेवा मे पड़ जाता।'

नरपति प्रसन्न होकर बोला—'जल्दी में गया और जल्दी में ही आया। दलीपनगर में ज्यादा देर ठहरने की नौबत ही नही आई, कार्य बन गया। मैं लौट पड़ा।'

'हमारे राजा।' रामदयाल ने कहा—'टाला-टूली नही करते। जिसके लिये जो कुछ करना होता है, शीघ्र कर देते है। अपको तो पक्का वचन दे दिया है।'

'वह बड़े जोर से अपनी सेना की तैयारी इसीलिये तो कर रहे हैं। बड़े पुरुपार्थी है, बड़े ब्रह्मचारी है। सूरमाओं की धुन के सिवा और कोई

ध्यान ही नही । वह लड़की, जिसे आपने यहाँ देखा होगा, उनकी रानी होने की अधिकारिणी है केवल भाँवर नहीं पड़ पाई है।' नरपति ने मन्तव्य प्रकट किया। उस सिलसिले में दिमाग दूसरी तरफ घूमा। नरपति कहता गया—'उस दिन जब पालर में लड़ाई हुई थी, जरा-सी ही देर हो गई, नहीं तो दाम्पत्य सम्बन्ध पक्का हो जाता। रह गया, सो रह गया। अब तो उस लड़की को वह पहचानते ही नहीं। कहते थे, कौन कहाँ की ! इत्यादि-इत्यादि।'

रामदयाल चौंका। उसने पूछा-'इसका भी जिक्र आया था ?'

नरपति ने उत्तर दिया-'खूब, मैंने कहा था। गोमती ने तो मना कर दिया था, परन्तु मेरा जी नही माना।'

रामदयाल ने अपने आश्चर्य को दबा दिया। बोला-'इसका कारण है। मैं जानता हूं परन्तु मुझे आपसे कहने की जरूरत नहीं है।'

[७२]

रामदयाल गोमती को ढूँढ़ने मे और गोमती को रामदयाल के ढूंढ़ने में कष्ट या विलम्ब नही हुआ। वार्तालाप के लिये उपयुक्त समय और स्थान के लिये भी विशेष प्रयास नही करना पड़ा।

गोमती की आकृति गम्भीर थी। रामदयाल के मुख पर किसी भय या चिन्ता की छाप लग रही थी।

कुशल-मङ्गल के बाद दोनो कुछ क्षण चुपचाप रहे।

अन्त मे गोमती ने बारीक, पैने और कुछ काटते हुये से स्वर में पूछा-'तुम्हारे महाराज तो आजकल सैन्य-संग्रह और चढ़ाई की तैयारी के सिवा और सोचते ही क्या होगे ?'

रामदयाल ने नीचा सिर किये हुये घायल आदमी की तरह उत्तर दिया-'उस धुन के सिवा और कोई धुन ही नही है। आजकल तो और किसी बात के लिये जरा भी अवकाश नही मिलता। परन्तु—'

'परन्तु क्या रामदयाल ?' गोमती ने धड़कते हुये कलेजे से, परन्तु उपेक्षा की मुद्रा धारण करके कहा—'तुमने तो नही मेरी ओर से कुछ कहा था ?'

'आपकी-ओर से तो नही।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'अपनी ही ओर से कहा था। वोले, इस समय राजनीति और रण-नीति के अतिरिक्त और कोई चर्चा न करो।'

जरा चिढ़कर गोमती वोली—'तुमने नाहक मेरी वात छेड़ी रामदयाल।'

'क्या करूँ, मन नही माना।' गद्गद्-सा होकर रामदयाल ने कहा- 'आपको दुखी देखकर छाती फटती है। आपको सुखी देखकर यदि तुरन्त मर जाऊँ तो मेरे वरावर पुण्य वाला किसी को न समझा जाय।'

गोमती को उस गद्गद् कण्ठ ने तुरन्त आकृष्ट किया। स्त्री की सहज साधारण सावधानी को गोमती दूर रखकर वोली-'मैं राज-पाट की भिखारिन नहीं हूं। महाराज सुख के साथ संसार में रहें, मेरे लिये इतना ही वहुत है।'

रामदयाल ने उत्तेजित होकर कहा—'परन्तु मेरे सन्तोप के लिये इतना कम से कम आवश्यक है कि आप आनन्द-पूर्वक रहें। मैं साधारण मनुष्य हूं, परन्तु मेरे हृदय को यह कहने का अधिकार है।'

गोमती ने उत्सुकता की अधीरता के वश होकर कहा—'यह निश्चय जानो रामदयाल, मै स्वयं दलीपनगर नही जाऊँगी। निरादर के सिंहासन से इस जङ्गल का जीवन सहस्त्र गुना अच्छा। यहाँ मेरे लिये सव कुछ है।'

रामदयाल वोला—'यह ठीक है, परन्तु आपको यहाँ वहुत दिनों नही रहना चाहिये। कुछ दिनो वाद यहाँ लोहे और अग्नि की वर्षा होगी। यद्यपि आप निर्भय है, तो भी व्यर्थ ही विपद् को सिर पर वुलाना ठीक नही मालूम पड़ता। यही, किसी जङ्गल के किसी सुरक्षित

स्थान में आप रह जावें, सेवा के लिये मुझ-सदृश्य भृत्यों की कमी न रहेगी।'

'मैं किसी भी सङ्कटमय स्थान में जा सकती हूं। कुमुद भी देर-सवेर यहाँ से जायेंगी। उन्ही के सङ्ग रह जाऊँगी।' फिर तुरन्त हँसकर बोली—'अर्थात् यदि उन्होंने निभा लिया, तो।'

रामदयाल ने नीचे से ही एक आँख को ऊँचा करके पूछा—'मुझे विश्वास है; कुन्जरसिंह उनका पीछा न छोड़ेंगे। ऐसी दशा में आपका उनके संग रहना कैसे सम्भव होगा ?'

कुछ सोचकर गोमती बोली—'यह एक समस्या अवश्य है।' फिर कुछ क्षण चुप रहकर उसने पूछा—'अब तो तुम महाराज के साथ ही रहोगे ?'

'कुछ आवश्यक नही है।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'मैं चरणों की सेवा में ही रहूंगा।'

इससे कुछ मिलती-जुलती बातचीत गोमती ने किसी चट्टान के पीछे छिपकर हाल ही में सुनी थी। उसके स्मरण मे देर नही लग सकती थी, शायद मन में पहले से मौजूद थी। गोमती का अनमना मन यकायक कहीं चला गया। हँसकर बोली—'परसों मैंने जो बातचीत सुनी है, उससे तुम्हारी उस दिन की बात पर विश्वास करने को जी चाहता है।'

'यहाँ कुन्जरसिंह आये हुये है ?'

'हाँ।'

'तब मैं सम्पूर्ण बात सुनने का अधिकारी हूं। अवश्य सुनाइये। पूरा हाल सुनने के लिये जी चंचल हो रहा है।'

गोमती ने उत्तर दिया—'किसी एक वाक्य को सम्पूर्ण सम्भाषण में से खीच निकालकर यह नही बतलाया जा सकता कि तुम्हारे सन्देह की पुष्टि में यह प्रमाण है; परन्तु कुछ-कुछ भान मुझे भी होने लगा है।'

हँसते हुये बड़े अनुरोध, बड़े आग्रह और बहुत मचलते हुये रामदयाल ने कहा —'मैं तो पूरी बात सुनूंगा। सारा भाव जानकर रहूंगा।'

कुछ सङ्कोच के साथ गोमती बोली—'जितना याद होगा, बतला दूंगी।'

'मैं पूछता जाऊँगा, आप बतलाती जाना।' रामदयाल ने पूर्ववत् भाव के साथ प्रस्ताव किया।

गोमती बोली—'मैं कोठरी में थी। कुञ्जरसिंह से उन्होंने कुछ बात करने की इच्छा प्रकट की।' फिर एक क्षण सोचकर कहा—'परंतु रामदयाल, हो सकता है, कुञ्जरसिंह किसी वरदान की याचना ही के लिये वैसे भक्तिपूर्ण वचनों से सम्बोधन कर रहे हों।'

जोश के साथ रामदयाल बोला—'महारानी का यह भ्रम है। वरदान की याचना हो सकती है, परन्तु दूसरे तरह के वरदान की। मुझे कुछ बातें सुनाई जावें, तो मैं निश्चय के साथ बतला दूंगा। मैं छुटपन से राजाओं और रानियों के बीच में रहा हू। मुझसे किसी ने किसी भाँति की आड़-मर्यादा नही मानी है। संसार का पूरा अनुभव मुझे है। आप भ्रम में न पड़ें, कहें।'

कुमुद बातचीत करने के लिये बड़ी सतर्कता के साथ बाहर गई और बड़ी बारीकी के साथ इधर-उधर दृष्टि डालती रही। 'हो सकता है, नरपति काकाजू के आगमन की प्रतीक्षा करती हों।' गोमती ने मुस्कराकर कहा।

रामदयाल बोला—'मेरा अनुभव मुझे बतलाता है कि जब दो व्यक्ति मिलना चाहते है, तब सहसा इसी तरह चौकन्ना होना पड़ता है।'

गोमती ने कहा—'फिर एक चट्टान पर वह जा बैठीं। इधर-उधर देखती रही। देर तक बातचीत करने के बाद भीतर चली गईं, परन्तु उनके वहाँ से चल देने के पहले ही मैं वहाँ से चली आई थी।'

'आप जहाँ थी, वहाँ से देख सुन तो सब सकती थीं ?' रामदयाल ने प्रश्न किया।

गोमती ने कहा—'हाँ ।'

'क्या ऐसा नहीं होता था कि कभी-कभी बात की उठान का उत्साह और जोर के साथ होता हो, परन्तु अन्त बहुत ही साधारण ?'

'इसी तरह तो प्रायः सम्पूर्ण बार्तालाप हुआ था ।'

'कुमुद की बोली में रुखाई थी ?'

'बिलकुल नही ।'

'कुञ्जर ने अधिक जोर किस बात पर दिया था ?'

'इस पर कि मैं अब तो सदा आपके निकट ही रहूंगा ।'

'वह स्वीकार नहीं कर रही होगी ?'

'स्पष्ट अस्वीकृति नही की ।'

'यह ढङ्ग तो असल में होता है ।'

गोमती कुछ सोचने लगी ।

रामदयाल ने कहा—'मैं विश्वास दिलाता हूं, कुमुद के हृदय पर कुञ्जर का प्रभाव हो गया है। उसने कोई घनिष्ठता-सूचक बात नही की थी ?'

'स्मरण नही है ।'

रामदयाल ने नीचे आँखें किये हुए पूछा—'कुमुद कुञ्जर से आँखें जोड़कर बात कर पाती थी या नही ?'

गोमती ने उत्तर दिया—'मैने स्पष्ट लक्ष्य नही किया ।'

रामदयाल बोला—'कनखियों देखती थी ?'

'हाँ, कुछ ऐसे ही ।'

रामदयाल ने बेतवा की धारा की ओर देखते हुये कहा—'अच्छा, यह तो निश्चय-पूर्वक आपको याद होगा कि जब कुञ्जरसिंह खूब अच्छी तरह कुमुद की ओर देखना चाहते होगे, तभी उनका मुंह दूसरी ओर फिर जाता होगा ?'

गोमती ने पूछा-'रामदयाल, तुम्हें ये सब बातें किसने बतलाईं ?'

उसने जवाव दिया—'सरकार, हम लोग सदा महलों में ही रहते है, कम-से-कम मेरा समय रानियों की सेवा मे जाता है। अधिकांश समय प्रेम-चर्चा में वीतता है। अपनी-अपनी वीती लोग सुनाया करते हैं। मेरी आयु जरूर थोड़ी है, परन्तु संसार के अनुभव वूढ़ों से अधिक हैं। महाराज नायकसिंह मुझे दिन-रात में किसी समय अपने पास से अलग नही करते थे। जव आज्ञा होगी, उनके मनोरंजक किस्से सुनाऊँगा। परन्तु पहले मैं भी तो पूरी-पूरी वात सुन लूं।'

किसी उत्सुकता किसी दूरवर्ती घटना-चक्र के कुतूहल ने गोमती को हिला-सा दिया। धीरे से बोली—'वतलाती जाती हूं।'

रामदयाल वार्तालाप में अग्रसर होता चला जा रहा था। पूछा—'एक-आध वार वातचीत करने में कुञ्जर का गला कांपा था?'

'इसका भी ठीक-ठीक ध्यान नहीं है।'

रामदयाल ने कहा—'जव भीतर से हृदय उमड़ता है, भाव की वाढ़ आती है और वात पूरी कह पाने का अवसर नहीं मिलता, तव यही दशा होती है।' रामदयाल ने इसके वाद अपना गला साफ किया।

गोमती हँसकर वोली—'रामदयाल, तुम्हारा गला क्यों कांप रहा है?'

उसने मुस्कराकर कहा—'आप केवल मेरे प्रश्नों का उत्तर देती जायें। अभी आपको प्रश्न करने का अधिकार नही है।' फिर वोला—'वात करते-करते कभी कुञ्जर यकायक रुक जाता होगा। देर तक कुछ सोचता रहता होगा। फिर यकायक कोई असङ्गत वात कह देता होगा। यही दशा कुमुद की रही होगी।'

'हाँ परन्तु ऐसा क्यों हुआ होगा?' गोमती ने सङ्कोच के साथ प्रश्न किया।

रामदयाल वोला—'जव एक हृदय का दूसरे हृदय की ओर सम्वाद जाने को होता है, तव सबसे पहले आँखें कुछ कहती है। दिखलाई

पड़ता है, परन्तु आंख मिलाकर देखते ही नहीं बनता। हजारों निरर्थक-सी बातें होती है रुक-रुककर। विना प्रवाह के जैसे कोई गला दवाये देता हो। मालूम होता है जो बात कहनी है, उस पर खूब विचार किया जा रहा है, परन्तु वास्तव में विचार होता किसी विषय पर भी नहीं है।'

'शायद।' एक ओर देखते हुये गोमती ने कहा।

रामदयाल बोला—'एक हृदय की दूसरे हृदय के साथ जब मुठभेड़ होती है, तब कुछ इसी तरह का भूचाल–सा आता है।'

गोमती ने इस पर कोई मन्तव्य प्रकट नही किया।

रामदयाल ने कहा–'इस दशा में एक बड़ी अनोखी बात होती है।'

गोमती ने बड़ी उपेक्षा दिखाते हुये पूछा–'क्या ?'

रामदयाल ने उस उपेक्षा की तली में देखा, काफी कौतूहल वर्तमान है। उसने बतलाया-'एक पक्ष तो यह समझता है कि मैं प्यार करते-करते खपा जा रहा हूं और दूसरा मेरी बात भी नही पूछता, उधर दूसरा पक्ष—'

रामदयाल रुक गया। गोमती ने उपेक्षा के भाव को त्यागकर कहा-'दूसरा पक्ष क्या ?'

वह बोला—'उधर दूसरा पक्ष कदाचित् यह सोचता है कि मैं करूँ तो क्या करूँ ? हृदय का दान देने को जो यह उतारू है, सो वास्तव में ऐसा ही है या नही ? यदि ऐसा ही है, तो मैं अपने हृदय का दान किस भाँति करूँ। अन्त में कदाचित् यह निश्चय होता है कि हृदय का गुप्त दान करूँ—कोई न जाने यहाँ तक कि लेने वाले से भी यह दान छिपा रहे।'

गोमती हँसने लगी।

रामदयाल हाथ जोड़कर सर्राटे के साथ बोला—'आप हँसती हैं, क्योंकि इस तरह की समस्याएँ आपके देव-तुल्य मन के सामने आकर खड़ी नही हुईं। परन्तु सच मानिये, जहाँ एक बार हृदय को किसी ने हिलाया कि इस कथन का तथ्य सच्चा जचने लगता है। प्यार के सामने कोई विघ्न-बाधा और सङ्कट नही टिकने पाते। ऊँच-नीच का भेद-भाव मिट जाता है। व्यथा के बाँध और रोड़े ढोंके बह-बहकर तिरोहित हो जाते हैं। बड़ा आदमी छोटे को और छोटे बड़े को प्यार करने से नहीं रुक सकता। उसे कोई वस्तु ऐसा करने में नहीं रोक पाती। प्रेम के सामने छोटे बड़े और ऊँच-नीच का अन्तर नष्ट हो जाता है। महलों मे जो मैं सदा देख करता हूं, उससे मैं इस निश्चय पर पहुंचा हूं कि छोटा व्यक्ति बडे को अधिक सच्चाई और अधिक गहराई के साथ चाह सकता है। बडा जब थोड़ा-बहुत छोटे को प्यार करता है, तब यह समझता है कि मैं एहसान कर रहा हूं।'

गोमती ने इतना वाचाल रामदयाल को पहले कभी न देखा था। जरा आश्चर्य किया। बोली—'तुम्हारा क्या अभिप्राय है रामदयाल ?'

बिना किसी भकभकाहट या संकोच के उसने उत्तर दिया—'मुझे इस समय यकायक ताव आ गया था। मैं स्वामिभक्त सेवक हूं। महाराज के सुख-दुख में बराबर साथ रहता हूं, परन्तु मेरी सहानुभूति उनके साथ नही है।'

'क्यों ?'

'इसलिये कि बार-बार कहने पर भी उन्हें स्मरण नहीं आता। आमोद प्रमोद के समय किसी भी स्मृति की हूक उनके कलेजे में नहीं उठती। मुझे तो कभी-कभी उन पर क्रोध भी आ जाता है।'

गोमती अपने को रोक न सकी। पूछने लगी—'तुम्हारे सामने कभी बात पडी मेरी ?'

तुरन्त रामदयाल ने उत्तर दिया—'मैंने तो कई बार कहा, परन्तु न मालूम क्या धुन समाई है। मनुष्य का बड़े पद पर पहुंच जाना दूसरों, विशेषकर आश्रितों के लिये बड़ा कष्ट पूर्ण होता है।'

गोमती का चेहरा पीला पड़ गया।

वहुत पास जाकर रामदयाल बोला—'अरे वाह! मेरी रानी यह क्या? तुम्हें ऐसा दुःख न करना चाहिये। राजप्रसाद के सुखों की कल्पना में अपने को इतना नहीं डुबोना चाहिये कि स्वल्प-सी निराशा के उदय होते ही मन का यह हाल हो जाय। मुझे विश्वास है, महाराज इस समय भूले हुये है, तो किसी समय स्मरण भी करेंगे।'

रामदयाल की आँखों में आँसू आ गये।

गोमती भी उन आँसुओं को देखकर थोड़ी देर रोई।

रामदयाल ने कहा—'यह कम से कम मेरे लिये असह्य है। और यदि रोईं, तो मेरा कलेजा टूक-टूक हो जायगा।'

गोमती दृढ़ता के साथ बोली—'अब नही रोऊँगी रामदयाल।' फिर स्थिर होकर एक क्षण बाद उसने कहा—'तुम्हें यह कैसे विश्वास हो गया कि महलों के सुखों की लालसा में लिप्त हूं? मैं ऐसे महलों को पैरों से ठुकराती हूं, जहाँ सम्मान के साथ प्रवेश न हो।'

रामदयाल ने कहा—'मैं यह नहीं कहता। वहाँ पहुंचने पर सम्मान तो अवश्य होगा; परन्तु उसमें हमारे महाराज का कोई एहसान नहीं। ऐश्वर्य, रूप और महत्व अपना जो आदर बरबस करवा लेता है, वही आपका भी होगा उस महल में क्या, कहीं भी। परन्तु चन्द्रमा का प्रकाश नगरों में उतना अच्छा मालूम नहीं होता, जितना जङ्गलों में।' फिर एक क्षण ठहरकर रामदयाल बोला—'मैं आपको यहाँ अकेला नहीं रहने दूंगा और न मैं महाराज की सेवा में अब जाऊँगा। जङ्गलों में आपके पास मर जाना अच्छा। महलों में रहना असह्य है।'

गोमती ने देखा, वात करते-करते रामदयाल का गला भर-भर आता है। वोली—'वहुत सम्भव है, कुञ्जरसिंह भी साथ रहें, क्योंकि

मैं कुमुद का साथ नहीं छोड़ना चाहती और वह कुमुद के निकट रहेगा। ऐसी हालत में तुम्हारी कैसे निभेगी ?'

बड़ी लम्बी सांस लेकर रामदयाल ने उत्तर दिया—'यदि आपके मन में हो तो मैं बाबा का वेश धारण करके बना रहूंगा, कोई न पहिचान पावेगा और यदि आपके मन में न होगा, तो मेरा संसार में और कोई नही है। इसी दह में अपनी देह डुबो दूंगा।'

गोमती बोली—'मुझे कोई आपत्ति नही है। बने रहना तुम्हारा बहुत सहारा रहेगा।'

रामदयाल गोमती के घुटने छूकर बोला—'जन्म भर दूर न कर सकोगी। सदा पास रहूंगा। यदि अनन्त काल तक भी बाबा वेश धारण करना पड़ा तो, किये रहूंगा। मैं आपके कृपा कटाक्ष के लिये संसार भर की विपत्तियाँ झेलने की सामर्थ्य रखता हूं।'

गोमती के पीले चेहरे पर मुस्कराहट आई। बोली—'रामदयाल कुछ इसी तरह की बात कुमुद से कुन्जरसिंह भी कह रहे थे।'

रामदयाल झेंप गया, परन्तु नीची आँखें किये हुये ही बोला—'मालूम नहीं, कुन्जरसिंह के असली भाव को कुमुद ने समझ पाया या नही।'

'उसका असली भाव क्या रहा होगा ?' गोमती ने अलसाते स्वर में कुछ लापरवाही के साथ पूछा।

रामदयाल ने जवाब दिया—'असली भाव, यदि कुन्जर सच बोल रहे थे, तो रहा होगा कि लो या न लो, कुचल दो या ठुकरा दो, परन्तु मेरा हृदय तुम्हारे लिये मेरी हथेली पर है।'

गोमती खड़ी हो गई। बोली—'बहुत थकावट मालूम होती है। जाड़ा-सा लग रहा है। अब चलो।'

[७३]

राजा देवीसिंह ने तीन ओर से अलीमर्दान के ऊपर आक्रमण करने का निश्चय किया। सिंहगढ से लोचनसिंह, दलीपनगर से पालर होते

हुये स्वयं, और बड़ेगाँव से जनार्दन शर्मा दस्ते ले चले, इस योजना पर कार्य करना निर्धारित हुआ। यह निश्चय किया गया था कि लोचनसिंह नवाब को भांडेर मे कुछ समय तक अटकाये रक्खे, तब तक राजा पालर से आकर रानियों को परास्त कर देंगे और भांडेर पहुंचकर लोचनसिंह की सहायता करके नवाब का अड्डा समाप्त कर देंगे तथा जनार्दन का दस्ता जरूरत पड़ने पर कुमुद पहुंचाने के लिये बड़ेगाँव से भाँडेर की ओर राजा के पीछे पीछे बढ़ेगा।

रामनगर में रानियों को पालर वाली सेना के आने की सूचना मिली। उनके पास भी कुछ सरदार और सैनिक इकट्ठे हो गये थे। रामनगर गढ़ हाथ मे था, परन्तु पड़ोस में विराटा का कटक भी था। रामनगर के राव पतराखन को विराटा के सबदलसिंह के प्रति सुहृद भाव बनाये रखने के लिये विशेष कारण न था। इस समय यह काफी तौर पर प्रकट हो गया था कि सबदलसिंह ने नवाब के मुकाबले के लिये राजा देवीसिंह को निमन्त्रण किया है। पतराखन को मालूम था कि रानियों के पक्ष में नवाब है, परन्तु नवाब ने विराटा पर चढ़ाई करने का अभी तक कोई लक्षण नहीं दिखलाया था। रामनगर में रानियों और पतराखन की स्थिति अभी तक सुरक्षित समझी जा सकती थी, जब तक विराटा और पालर की ओर से आई हुई सेनाओं का सहयोग नहीं हुआ था। पतराखन को अपनी गढ़ी पर इतना मोह न था, जितना उसमें रक्खी हुई संचित सम्पत्ति और गाढ़े समय में काम आने वाले अपने थोड़े से, परन्तु निर्भीक योद्धाओ की समस्या जरा कराल रूप में सामने खड़ी देखकर उसने रामदयाल को बुलाया। वसी दिन विराटा से लौटकर आया था। उसने रानियों से सलाह करने के लिये मिलने की इच्छा प्रकट की। रामदयाल उसे रनिवास में ले गया। पर्दे से होकर रानियों से प्रत्यक्ष बातचीत होने लगी। किसी बीच वाले की जरूरत नहीं पड़ी।

छोटी रानी ने कहा—'पर्दे से काम नहीं चल सकता रावसाहब। अटक पड़ने पर तो मुझे तलवार हाथ मे लेकर रण-क्षेत्र मे जाना पड़ेगा।

पतराखन के जी में लडने के लिये बहुत उत्साह न था, तो भी तेजी दिखलाते हुये उसने कहा—'ठीक है महाराज और वह दिन–शीघ्र आने वाला है। देवीसिंह अपनी सेना लेकर आ रहे है। बहुत सम्भव है कल तक हम लोग यही घिर जायें या विराटा की गढ़ी से तोप हमारे ऊपर गोले उगलने लगे।'

छोटी रानी ने कहा—'तब हमे तुरन्त अपनी सेना पहले से ही भेजकर कही पालर के पास ही लड़ाई करनी चाहिये और जैसे बने, विराटा की गढ़ी अपने हाथ में कर लेनी चाहिये।'

पतराखन बोला—'मुझे दोनों प्रस्ताव पसन्द हैं, परन्तु आदमी मेरे पास इतने नही कि इन प्रस्तावों में से एक को भी सफलता पूर्वक कार्य में परिणित कर सकूं। बिना नवाब की सहायता के कुछ न होगा। मालूम नहीं, उन्होंने अभी तक विराटा को क्यों अपने अधिकार मे नही लिया।'

बड़ी रानी ने कहा—'विराटा को हमें स्वयं अपने अधिकार मे कर लेना चाहिये, नहीं तो नवाब कदाचित् वहाँ के मन्दिर को तुड़वा डालेगा।'

छोटी रानी ने कहा—'यह असम्भव है।'

पतराखन ने कहा—'असम्भव तो कुछ भी नहीं है, परन्तु वह ऐसा करेगा नहीं। सबदल ने उनके साथ जैसा बर्ताव किया है, उससे यह प्रकट होता है कि नवाब मन्दिर को छोड़कर गांव भर को तो अवश्य ही तहस-नहस कर देगा।'

रामदयाल बोला—'गाँव को खाक करने से क्या मतलब? नवाब तो उस दाँगी की छोकरी का डोला चाहते है, जिसे मूर्खो ने अवतार मान रक्खा है।'

बड़ी रानी ने पूछा—'कौन को?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'मैं स्वयं उसे देख आया हू। वह नित्य देवी से कुन्जरसिंह की सफलता के लिये प्रर्थना किया करती है और

कुञ्जरसिंह नित्य यह सोचा करते है कि अन्नदाता और देवीसिंह को परास्त करके दलीपनगर के राजसिंहासन पर बैठ जाऊँ और कुमुद को अपनी रानी वना लूं। महाराज, अपनी आँखों सब हाल देख आया हूं। मैंने अपने को वहाँ राजा देवीसिंह का नौकर प्रसिद्ध कर रक्खा है।'

'राजा देवीसिंह !' छोटी रानी ने अत्यन्त घृणा के साथ कहा-'चाहे कुछ हो जाय, देवीसिंह राजा न रहने पावेगा।'

पतराखन अधैर्य के साथ बोला-'जो कुछ करना हो, जल्दी करिये। मेरी राय है कि रामदयाल को नवाब के जताने के लिये तुरन्त भेजिये, अपने सरदारों और सैनिकों को दो भागों में वाँटकर एक को देवीसिंह से लड़ने के लिये पहुंचाइये और दूसरे को विराटा के ऊपर धावा करने के लिये भेजिये। एक ओर से आपकी टुकड़ी विराटा पर धावा करें। और दूसरी ओर से मेरी टुकड़ी। मैं उस पार जाकर उधर से धावा करूँगा और विराटा वालों को निकल भागने का अवसर दूंगा।'

रामनगर की गढ़ी से विराटा की गढ़ी स्पष्ट दिखलाई पड़ रही थी करीब एक कोस की दूरी पर पानी मे खड़े हुये एक स्तम्भ-सदृश सी प्रतीत होती थी।

वड़ी रानी ने कहा—'विराटा की उस कन्या का क्या होगा? क्या उसे मुसलमानो द्वारा मर्दित होते हुये देखा जायगा?'

रामदयाल ने तुरन्त उत्तर दिया-'उसी लोभ के वश असल में नवाब हमारा साथ देने को यहाँ आवेगा। दलीपनगर का एक चौथाई राज्य भी उसे चाहिये, परन्तु उस लड़की के बिना वह तीन चौथाई हिस्से पर भी लड़ने को इन दिनों राजी न होगा। फिर भी मैं विश्वास दिलाता हूं कि मैंने ऐसा प्रबन्ध किया है कि उस लोभ से नवाब हमारी सहायता के लिये आवे और यथासम्भव उसे पावे नही।'

वड़ी रानी ने पूछा—'यह कैसे होगा?'

उसने उत्तर दिया—'यह ऐसे कि विराटा मे कुञ्जरसिंह विद्यमान है। वह उस लड़की को विना अपनी रानी वनाये दम नही लेंगे, चाहे

दलीपनगर का या दलीपनगर की एक हाथ भूमि का भी राज्य मिले या न मिले। विराटा के अधिकृत होने के पहले ही मुझे पूर्ण आशा है वह लड़की कुन्जरसिंह के साथ किसी सुरक्षित स्थान मे भाग जायगी। मैं पानी के मार्ग से नाव में होकर विराटा आया-जाया करूँगा और सब समाचार दिया करूँगा आर्थात् जब तक विराटा अपने अधिकार में नहीं आया।'

बड़ी रानी इस वेतुके उत्तर से सन्तुष्ट नही हुई। कुछ पूछना चाहती थी कि छोटी रानी बीच में पड़ गईं। बोली–'ऐसी छोटी–छोटी बातों पर इस समय ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। रामदयाल जो कह रहा है, वह ठीक है। तुरन्त नवाब को ससैन्य बुलाना चाहिये। राम–दयाल, तुम इसी समय घोड़े पर सवार होकर सरपट जाओ। मैं चाहती हूं कि सवेरा होने के पहले ही हमारी और नवाब की सेनायें देवीसिंह को कुचलने और विराटा को ढाह देने के काम में नियुक्त हो जायें।'

रामदयाल ने स्वीकार किया।

पतराखन ने कहा—'मै उस पार जाकर अपनी योजना को काम में लाता हूं।'

रामदयाल भाँडेर की ओर गया और पतराखन गढ़ी को अपने सिपाहियों और सम्पत्ति से खाली करके उस पार सुरक्षित जङ्गल में चला गया। परन्तु तोप वहीं छोड़ गया।

[७४]

रामदयाल बहुत तेजी के साथ भाँडेर गया और दिन-ही-दिन में नवाब के सामने जा पहुंचा। दिल्ली से एक बहुत जरूरी फरमान आया था कि तुरन्त सम्पूर्ण सेना लेकर दिल्ली आ जाओ। इस फरमान को आये हुए कई दिन हो गये थे। अलीमर्दान को राजा देवीसिंह की तैयारियों की खबर लग चुकी थी, इसलिये और शायद किसी और कारणवश भी अलीमर्दान स्वयं तो दिल्ली की ओर रवाना नहीं हुआ,

परन्तु उसने अपनी सेना के एक काफी भाग के साथ कालेखाँ को दिल्ली की ओर भेज दिया। वह भाँडेर में ही बना रहा। राजा देवीसिंह को कुछ समय तक रोके रहने के लिये उसने एक चाल चली; दलीपनगर को सन्धि का प्रस्ताव भेजा। कहलवाया कि दो निकटवर्ती राज्यों में मेल रहना चाहिये। लड़ाई की तैयारी वन्द कर दो, नही तो अनिवार्य-संकट में पड़ जाओगे। राजा इसका उत्तर नहीं देना चाहता था, परन्तु जनार्दन नहीं माना। उसने एक वड़ी मीठी चिट्ठी लिखवाई, जिसके लंम्वे वाक्यों का सार यह था कि यहाँ भी तुरन्त लड़ डालने की किसी की अभिलाषा नही है। इस सन्धि प्रस्ताव और उसकी अर्द्ध-स्वीकृति पर दोनों को सन्देह था।

देवीसिंह रानियों से लड़ने जा रहा था। जानता था कि अलीमर्दान उत्तर से सहायता के लिये आयेगा, तव इस सन्धि की रद्दी के टुकड़े से भी वढ़कर प्रतिष्ठा न होगी। अलीमर्दान को विश्वास था दलीपनगर मेरे चकमे में आ गया है।

रामदयाल को ऐसी हड़वड़ी में आता देखकर अलीमर्दान को आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि वह समय ऐसा था कि अचेती और अनजानी उलझनें अकस्मात् उपस्थित हो जाया करती थी।

एकान्त पाने पर रामदयाल ने कहा—'हुजूर' मामला वहुत टेढ़ा है। राजा देवीसिंह की सेना रामनगर पर चढ़ी चली आ रही है।'

'कव ?' अलीमर्दान ने पूछा।

'आज पालर के करीव थी।' उसने उत्तर दिया—'कल संध्या तक रामनगर और विराटा पर दखल हो जाने का भय है।'

'मेरी आधी सेना तो कालेखाँ के साथ दिल्ली चली गई है।'

'परन्तु जो कुछ सरकार के पास है, वह सरकार के शत्रुओं के दाँत खट्टे करने के लिये वहुत है।'

'तुम लोगों के पास कितनी है सेना ?'

रामदयाल ने अपनी सेना का कूता अलीमर्दान को वतलाया।

अलीमर्दान ने कहा—'तब तक इतनी सेना से लड़ो। काफी है। कुछ समय बाद हमारी कुमुक पहुंच जायगी।'

रामदयाल घबराकर बोला—'तब तक हम लोग शायद बिलकुल पिस-कट जाये। विराटा से सबदल और कुञ्जरसिंह हम लोगो को संतप्त करेगे, उधर से देवीसिंह हमे भून डालेंगे, रामनगर के रावसाहब अपनी सेना लेकर उस पार जङ्गलों में चले गये है। यदि उन्होंने विराटा पर आक्रमण न किया, तो हम लोग ऐसे गये, जैसे पिंजड़े में बन्द चिड़ियों को बिल्ली मरोड़ देती है।'

'बेतवा-किनारे के किलेदारों को।' अलीमर्दान ने कहा—'मैं खूब जानता हूं। ऐसे बदमाश और दगाबाज है कि कुछ ठिकाना नही। कई बार सोचा, मगर मौका नही मिला। अबकी बार मौका मिलते ही पहले इन वन-बिलावों को मटियामेट करूँगा।'

कुछ उत्साहित होकर रामदयाल बोला—'वह मौका हुजूर न-जाने कब आने देगे। सरकार सोचें, कैसी विकट समस्या हम सब लोगों के लिये है। हमें मिटाने के बाद निश्चय ही देवीसिंह आपको छेड़ेगा। फिर क्यों उसे इस समय छोड़ा जाय?'

अलीमर्दान ने सोचकर कहा—'विराटा में है कुन्जरसिंह?'

'हाँ, सरकार।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'और कमर कसकर हुजूर से लड़ने के लिये तैयार है। सबदलसिंह बागी हो गया। लड़ेगा। उसने देवीसिंह को इस ओर आपसे और रानी साहब से लड़ने के लिये बुलाया है उसी के साथ कुन्जरसिंह हो गया है।'

स्वप्न-सा देखते हुये अलीमर्दान ने कहा—'बागी तो कुल बेतवा का किनारा ही है, अकेला सबदल क्या। पर अबकी बार उसके किले को जमीन मे मिला देना है।'

फिर मुस्काराकर बोला—'केवल तुम्हारे मन्दिर को छोड़ दूँगा। तुम जानते हो कि मन्दिरों से मुझे दुश्मनी नही है।'

जिस बात के कहने के लिये रामदयाल उकता-सा रहा था। अवसर मिलने पर प्रकट किया—'मन्दिरों को तो हुजूर ने कभी छुआ नही है। उसी मन्दिर में पालर वाली वह दाँगी की जवान लड़की भी है। वह पद्मिनी जाति की स्त्री है।'

नवाब ने अधिक मुस्कराहट के साथ पूछा—'अभी तक वहाँ से भागी नहीं? मै समझता था, चली गई होगी। बड़ी दिक्कत तो यह है कि बहुत से हिन्दू उसे देवी का अवतार मानते है।'

रामदयाल बोला—'तब हुजूर को पूरी बात का पता नहीं है। वह मन्दिर में इस समय तो है, परन्तु कुछ ठीक नहीं, कब कुन्जरसिंह के साथ भाग जाय।'

नवाब जरा चौंका। कहने लगा—'क्या यह बात है? रामदयाल, तुम सच कह रहे हो? यदि बात सच है, तो क्या हिन्दुओं का यह सिर्फ ढकोसला ही है?'

रामदयाल ने जवाब दिया—'बिलकुल। मै ने अपनी आँखों से उन लोगों को देखा है और कान से उनका प्रेम-सम्भाषण सुना है।'

अलीमर्दान थोड़ी देर तक कुछ सोचता रहा।

रामदयाल से पूछा—'कुन्जरसिंह का देवीसिंह के साथ मेल हो गया है?'

उसने उत्तर दिया मेल तो मैंने नही सुना और न होने की कोई सम्भावना है। कुन्जरसिंह को तब तक और विराटा की गढ़ी में रहा समझिये, जब तक कुमुद उसके साथ नहीं भागी है। पीछे फिर चाहे देवीसिंह से या किसी से लड़े या न लड़े।'

थोड़ी देर के लिये अलीमर्दान फिर सोच-विचार में पड़ गया।

कुछ देर मे बोला—'तुम्हारी यह इच्छा है कि मै विराटा की तरफ तुरन्त कूच करूँ।'

जोड़कर रामदयाल ने उत्तर दिया—'हुजूर मेरी क्या, आपकी राखीबन्द बहिन रानी साहब की भी प्रार्थना है।'

अलीमर्दान ने वड़ी चेतनता के साथ कहा—'अभी तैयारी होती है। तुम चलो आता हूं। कुञ्जरसिंह को भी सजा देनी है और उस अहमक सबदल को भी सवक सिखलाना है। दो-तीन दिन में ही यह सव काम निवट जायगा। मैं पहले विराटा को देखूंगा।'

रामदयाल चलने लगा।

चलने-चलते उससे अलीमर्दान वोला—'मेरे आने तक इतना प्रवन्ध जरूर हो जाय जिसमे विराटा का कोई भी व्यक्ति वाहर न निकल जाने पावे।'

रामदयाल ने चालाकी से, आँख का कोना वारीकी के साथ दवाकर कहा—'हो गया है। यदि कोई कसर होगी, तो मिटा दी जायगी। आप बिलकुल विश्वास रक्खें।'

अलीमर्दान हँसकर वोला—'इनाम पाओगे—ऐसा कि तुमने स्वप्न में भी कल्पना न की होगी।'

रामदयाल प्रणाम करके चलने लगा।

नवाव ने कहा—'पहले हम रामनगर नही आयेंगे। जव तक हम न आ जायें मुकावला करते रहना।'

अलीमर्दान ने अपने सव सरदारों को इकट्ठा करके सम्पूर्ण सेना को जल्दी-से-जल्दी तैयारी किया। भाँडेर में थोड़ी-सी सेना छोड़कर वाकी सेना लेकर वह पहर रात गये चल पड़ा। सालौन भरौंली में, जो भाँडेर के करीब ४-५ मील पर है, सेना को थोड़ा-सा विश्राम करने के लिये रोक लिया। प्रातःकाल होने के पहले विराटा पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया गया था।

[७५]

जिस रात अलीमर्दान की सेना ने सालौन भरौंली में डेरा डाला, उस रात विराटा के राजा ने अपने भाई बन्दों को इकट्ठा करके लड़ाई की तैयारी की। वाहर निकल कर नवाव की सेना से सफलता-पूर्वक

लड़ना विराटा की सेना के लिये बहुत कठिन था, परन्तु उसे अपने जंगलों, पहाड़ों और 'माई वेतवा' की धार का बड़ा भरोसा था और फिर यह कोई पहली ही लड़ाई नहीं थी।

मुख्य-मुख्य लोगों की बैठक हुई। सबको विश्वास था कि देवीसिंह समय पर सहायता देंगे। सब जानते थे कि देवीसिंह पालर की ओर से आ रहे हैं, परन्तु सबकी शंका थी कि यदि नवाब की सेना बीच में आ पड़ी, तो राजा की सेना का इस ओर आना बहुत कठिन हो जायगा और यदि नवाब ने एक दस्ता विराटा को नष्ट करने के लिये भेज दिया और उसी समय रामनगर से आक्रमण हो गया तो भयंकर समस्या उपस्थित हो जायगी।

इन सब बातों पर विचार हुआ। अधिकांश लोगों में लड़ाई का उत्साह था। सबदलसिंह संयत भाषा में बोल रहा था, परन्तु दृढ़ता-पूर्ण निश्चय से भरा हुआ था।

अन्त में कुमुद के विराटा में बने रहने के विषय में प्रश्न उपस्थित हुआ। अधिकांश लोगों की धारणा हुई कि कुमुद को किसी दूसरे स्थान पर भेज देना चाहिये। सबदलसिंह अपने निश्चय से न डिगा। उसने कहा—'मैं फिर कही कहूंगा कि उनके यहाँ बने रहने में ही हम लोगों की कुशल है। उन्हें वहाँ से हटाओ, तब मूर्ति को हटाओ, मन्दिर को हटाओ।'

अन्त मे निश्चय हुआ, जैसा ऐसे अवसरों पर निश्चय हुआ करता है, अभी कुमुद यही बनी रहें, परन्तु कुअवसर आते ही तुरन्त उस पार किसी सुरक्षित स्थान में पहुंचा दी जायें।

कुन्जरसिंह वही था—'सभा में नहीं, सभा से दूर मन्दिर में। परन्तु उसका विराटा में होना सबदलसिंह को मालूम हो गया था और लोगों ने इच्छा प्रकट की कि कुन्जरसिंह को हटा दिया जाय।

नरपति बोला—'परन्तु वह कहते है कि हम दुर्गा की रक्षा करते-करते अपना प्राण देंगे, हमे किसी के राजपाट मे कुछ सरोकार नहीं। उन्होंने शपथ-पूर्वक कहा है कि हम देवीसिंह के साथ नही लड़ेंगे।'

सवदल ने कहा—'यह तो ठीक है, परन्तु जब देवीसिंह को मालूम होगा कि कुञ्जरसिंह हमारे यहाँ आश्रय पाये हुये है, तब हमारी बात पर से उनका विश्वास उठ जायगा और वह अपना हाथ हमसे खीच लेंगे।'

नरपति बोला—'तब जैसा आप चाहें, करें, परन्तु वह अपनी शरण में है और यह स्मरण रखना चाहिये कि राजकुमार है। किसी के भी सब दिन एक-से नही रहते। उन्होने शपथ ली है कि हमें किसी के राज-पाट से कोई सरोकार नही।'

सवदल ने अपनी सम्मति बदलते हुये कहा—'वह हमारे और देवी-सिंह राजा, दोनों के समान शत्रु से लड़ने में सहायक होगे। सुना है, तोप अच्छी चलावेंगे। कोई हर्ज नही।'

लोगों में इस बात पर बहस हुई कि कहीं नवाब से मिल न जायें। नरपति बोला—'यह असम्भव है। मैं उन्हें बहुत दिन से जानता हूं। वह पालर में नवाब की सेना से लड़े थे। बड़े विकट योद्धा है—'

'परन्तु यह।' सवदल ने कहा—'नवाब के साथ मिलकर देवीसिंह के खिलाफ भी लड़ चुके है।' सवदल के मन मे फिर सन्देह जाग्रत हुआ।

नरपति सोच में पड़ गया। वह सिंहगढ़ की सब बातें न जानता था। कुछ क्षण बाद बोला—'कुमुद देवी विश्वास दिलाती हैं कि कुन्जर-सिंह कभी दगा न करेंगे। छल उन्हें छू नहीं गया है। वह तोप चलाने का काम बहुत अच्छा जानते है।'

अन्त में यह तय हुआ कि कुञ्जरसिंह को गढ़ से न हटाया जाय, परन्तु कोई विशेष महत्व का कार्य उन्हें न दिया जाय।

[७६]

अलीमर्दान की सेना ने विराटा को और दलीपनगर की सेना ने रामनगर को अपना लक्ष्य बनाया। लोचनसिंह भाँडेर पर धावा करना चाहता था, परन्तु देवीसिंह की स्पष्ट आज्ञा थी कि भाँडेर पर आक्रमण करके कठिनाइयों को न बढ़ाया जाय। यह प्रपंच लोचनसिंह की समझ मे अच्छी तरह न आता था कि भाँडेर की सेना हमारे ऊपर तो आक्रमण करे और हम शत्रु के राज्य के बाहर से उसका विरोध करें, परन्तु उसके घर में घुसकर मार न करें। इसका समाधान लोचनसिंह को इस प्रकार मिला कि दिल्ली का बादशाह इस भाँति की लड़ाई को आत्म-रक्षा समझकर तरह दे देगा परन्तु शाही सूबे में घुसकर मार-काट करने को चुनौती का रूप दे डालेगा। इस कल्पना को वह आत्म-प्रवंचना कहता था, परन्तु राजा की आज्ञा होने के कारण वह उसका प्रतिकार न कर सकता था। निदान उसे भी अपना ध्यान विराटा-रामनगर की ही ओर दौड़ाना पड़ा।

उधर अलीमर्दान ने सालौन भरौंली से शीघ्र कूच कर दिया। तोपें वह बहुत कम साथ ला सका था। विराटा मे प्रवेश करने की पूरी चेष्टा की, परन्तु मुसावली के पास दलीपनगर के कई दस्तों के साथ मुठभेड़ हो गई। सन्धि के पूर्व पत्र-व्यवहार की किसी पक्ष को चिन्ता न रही। इस मुठभेड़ मे दोनों दलो को अनचाहे स्थानो पर मोर्चाबन्दी करनी पड़ी। अलीमर्दान की सेना धनुप के आकार मे नदी किनारे-किनारे रामनगर के नीचे तक भरकों में फैल गई। दलीपनगर की सेना रामनगर और विराटा को हस्तगत करने के प्रयत्न मे इस मोर्चेबन्दी का प्रतिकार करने में प्रथम से ही विवश हुई। न तो अलीमर्दान रामनगर की टुकड़ी से मिल पाता था और न दलीपनगर की सेना विराटा में पहुंच पाती थी। रामनगर के गढ़ से विराटा और देवीसिंह के मोर्चों पर गोला-बारी की जा रही थी, परन्तु इतनी शिथिलता और अनजान-

पने के साथ कि वह बहुत कम हानि पहुंचा रही थी। उधर विराटा की सेना को अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण अधिक सुभीता था, परन्तु अलीमर्दान की रोकथाम के सिवा वहाँ के भी गोलन्दाज और अधिक कुछ नहीं कर पा रहे थे। परन्तु दलीपनगर की तोपें रामनगर की गढ़ी को ढीला कर देने में कोई कसर नहीं लगा रही थी।

जब कभी एक दल दूसरे पर खुल्लमखुल्ला टूटकर या उस गढ़ को हथियाने की कोशिश करता था, तभी भीषण मार-काट हो पड़ती थी और आक्रमण करने वाले दल को पीछे हटना पड़ता था।

इस तरह लड़ते-लड़ते कई दिन हो गये। देवीसिंह को चिन्ता हुई। मन्त्रणा के लिये एक दिन राजा, जनार्दन, लोचनसिंह और कुछ और सरदार बैठे।

जनार्दन ने कहा—'यदि अलीमर्दान के पास और कुमुक आ गई या बादशाह ने हम लोगों को बागी समझकर दिल्ली से कोई बड़ा दस्ता भेज दिया, तो बड़ी कठिनाई होगी। युद्ध खिंच गया है, कौन जाने क्या होगा।'

लोचनसिंह बोला—'होगा क्या, आप अपने घर में बैठकर जप-तप करना, हम अपनी निबट लेंगे।'

'इन बातों से काम न चलेगा, लोचनसिंह।' राजा ने कहा—'इस समय हम यह निश्चय कर रहे हैं कि शीघ्र क्या करना चाहिये।'

लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'मेरी समझ में तो यह आता है कि इधर-उधर की हाथापाई छोड़कर भांडेर पर जोर का हल्ला बोल दिया जाय, तो अलीमर्दान को लेने के देने पड़ जायेंगे।'

'यह तो नहीं हो सकता।' जनार्दन ने कहा।

'राजनीति इस समय ऐसा करने से रोकती है।' देवीसिंह बोला।

'राजनीति अर्थात् शर्मा जी महाराज जब जैसा हम लोगों को बतलावें।' लोचनसिंह ने कहा।

राजा देवीसिंह ने नियन्त्रण करने के ढङ्ग पर कहा- 'नही, मैं इसे ठीक समझता हूं, चामुंडराय। भाँडेर हमारी दृष्टिकोंण से इस समय परे है।'

'तब या तो इसी तरह-युद्ध को लस्टम-पस्टम चलने दीजिये या घर लौट चलिये।' लोचनसिंह बोला।

लोचनसिंह की इस गम्भीर सम्मति पर कुछ क्षण तक किसी ने कुछ न कहा।

लोचनसिंह तुरन्त बोला—'मुझे महाराज जो आजा दे उसके लिये तैयार हूं, परन्तु केवल राजनीति-विशारदों से लडाई के दाँव-पेंच सीखने का उत्साह मेरे भीतर नही है। उस सेना का भार, जिसका संचालन शर्माजी कर रहे हैं किसी और को दीजिये तब—'

राजा ने कहा—'तुम्हें आपे से बाहर हो जाने की बहुत आदत पड़ गई है।'

'अब बोलूं तो जीभ काट लीजियेगा। कहिये, तो यहाँ से अपने डेरे पर चला जाऊँ। लोचनसिंह ने बिना क्रोध के कहा।

कुछ देर के लिये सन्नाटा छा गया। ऐसा जान पडा, मानो लोचन-सिंह के अलक्ष्य आतंक को आस-पास के वायु-मण्डल ने भी सीख लिया हो।

राजा देवीसिंह ने स्नेह और दृढ़ता के ढङ्ग से कहा,—'चामुंडराय कल तुम्हारी शूरता और बिलक्षण स्फुर्ति की फिर परीक्षा है

लोचनसिंह बोला—'क्या आज्ञा है।'

'कल रामनगर की गढ़ी में हम लोग प्रवेश कर लें।' राजा ने कहा। शब्दों की झंकार सब लोगों के कानों में समा गई।

लोचनसिंह की आँखों से चिनगारी-सी छूटी, बोला—'आज्ञा का पालन होगा, परन्तु दो शर्तें हैं।'

राजा ने कहा—तुमने चामुंडराय कभी आज तक वीरता-प्रदर्शन मे शर्तें नही लगाईं। आज नई बात कैसे ? परन्तु खैर, मैं वचन देता हूं रामनगर की गढ़ी और आस-पास का इलाका तुम्हारा होगा।'

लोचनसिंह हँसा, ऐसा कि पहले शायद ही कभी इस तरह हंसते देखा गया हो। फिर गम्भीर होकर अवहेलना के साथ बोला—'रामनगर की गढ़ी और मेरे पास जो कुछ है, वह सब मैं उसे दे दूंगा, जो अलीमर्दान की फौज को चीरकर विराटा मे कल पहुंच जाय। महाराज मेरी इस भाँति की शर्तें नही है।'

'फिर क्या ?' जनार्दन ने सकपकाकर और खुशामद की दृष्टि से पूछा।

पहली तो यह' लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'कि सैन्य संचालन का काम आपके हाथ मे न रहे और दूसरी यह कि मैं यदि मारा जाऊँ, तो मेरी लाश की मिट्टी बिगड़ने न पावे, उसकी खोज करके शास्त्र के अनुसार दाह किया जाय। नदी में न फेंका जाय और न किसी गड्ढे में डाला जाय।'

'स्वीकृति है।' राजा ने प्रसन्न होकर कहा—'जनार्दन मेरे साथ रहेगे। मै अब इनके दस्ते का संचालन करूँगा। परन्तु जागीर देने के मेरी शर्त भी मान्य रहेगी।'

लोचनसिंह उत्तेजित होकर बोला—'तब मैंने जो कुछ कहा है, वह भी मान्य रहेगा, क्योंकि रामनगर के विजय करने के बाद यों भी मैं ही उसका स्वामी होऊँगा। केवल राजा न होने के कारण ही उसे आपके हाथों अर्पण करके फिर ले लेना कोई बड़े महत्व की बात न होगी।'

राजा ने कुछ नही कहा। बात उड़ाने के लिये केवल हँस दिया।

जनार्दन के जी में कुछ खटक गया था। परन्तु वह भी बरबस मुस्कराने लगा। उस मुस्कराहट ने लोचनसिंह को किंचित भी कुण्ठित नही किया। जनार्दन अपनी दुर्दशा छिपाने के लिये छटपटाने लगा।

उपयुक्त अवसर पाकर वोला—'मैं इनकी लाश को तलाश करके शास्त्रोक्त अन्त्येष्टि क्रिया करने का प्रण करता हूं। इन्हें वास्तव में और कुछ चाहिये भी नही।'

रामनगर पर करारा धावा करने की वात तय हुई।

[७७]

विराटा की रक्षा दृढ़ता के साथ हो रही थी। दाँगियों ने अपने स्थान को बचाने के लिये प्राणों की होड़ लगा रक्खी थी। गढ़ी के भीतर आदमी वहुत अधिक न थे। तोपें भी थोड़ी ही थीं। तोपों के चलाने वाले भी चतुर न थे। परन्तु उन लोगों में मर-मिटने की लगन थी और विश्वास था कि देवी उनकी सहायता पर हैं।

नदी के पश्चिम तटवर्ती भरकों से अलीमर्दान की सेना विराटा की गढ़ी पर आक्रमण करती थी, परन्तु वेतवा की धार उसे विफल-मनोरथ कर देती थी, असल में देवीसिंह की सेना की चपेट के कारण अलीमर्दान को विराटा के पीस डालने का अवकाश न मिल पाता था, नही तो विराटा के थोड़े से बहादुर दांगी वहुत देर तक नहीं टिक सकते थे।

विराटा-युद्ध में कुञ्जरसिंह को अव तक कोई स्थान न मिल सका था। सवदलसिंह की यह धारणा थी कि कुञ्जरसिंह को हरावल में या कहीं पर भी कोई मुख्य पद देने से देवीसिंह का विमुख हो जाना संभव है ऐसी दशा में उसे मन्दिर की रक्षा के काम पर नियुक्त कर दिया। कुञ्जरसिंह को विराटा से निकल भागना असम्भव था। सबदलसिंह को विश्वास था कि उसे वहाँ केवल बने रहने देने में देवीसिंह अप्रसन्न न होंगे।

कुञ्जरसिंह हथियार लिये हुये मन्दिर मे वना रहता था। जब कभी पड़े-पड़े मन ऊब उठता था तब मन्दिर की प्राचीर के पास से वेतवा की धारा को टकटकी लगाकर देखने लगता था। कुमुद, गोमती और नरपति रात-दिन मन्दिर के उत्तर वाले खण्ड के निचले स्थान में नीचे की एक खोह मे बने रहते थे। प्रातःकाल दुर्गा-पूजन के निमित्त

थोड़ी देर के लिये मन्दिर में आते थे। कुमुद से बातचीत करने का और कोई अवसर न मिलता था, अथवा कुन्जर बात करने के लिये उपयुक्त अवसर न ढूंढ़ पाता था।

एक दिन कुन्जर ने रामदयाल को मन्दिर के पास अचानक देखा। चकित हो गया। खासा कड़ा पहरा होते हुये भी कैसे प्रवेश पा गया? उसकी पहली इच्छा यही हुई कि तलवार के वार से समाप्त कर दें, परन्तु रामदयाल मुस्कराता हुआ उसी की ओर बढ़ा। कुन्जरसिंह अपनी इच्छा पूरी करने में हिचक गया।

रामदयाल ने कहा—'राजा मुझे, शायद अपना शत्रु समझते हैं। सम्भव है, राजा की कल्पना सही हो।'

कुन्जरसिंह इस बेधड़क मन्तव्य पर क्षुब्ध हो गया और किंकर्तव्य-विमूढ़।

रामदयाल ने और पास आकर कहा—'परन्तु आप और मैं समान भाव से इस गढ़ी की रक्षा के आकांक्षी हैं। मैं अब महारानी की सेवा में नहीं हूं। राजा देवीसिंह का सन्देशा लाया हूं।'

'रानी को किस दलदल में फंसाकर चले आये हो?' कुन्जरसिंह ने कठोरता के साथ प्रश्न किया।

मैने किसी को दलदल में नही फंसाया है।' रामदयाल ने ठण्डक के साथ उत्तर दिया—'मैं खुद उनके पीछे बहुत बरबाद हुआ हूं। बहुत मारा मारा फिरा हूं। उनका मुझ पर भी विश्वास नही रहा, तब निकाल दिया। मैं राजा देवीसिंह की शरण मे गया। उन्होंने क्षमा-प्रदान करके अपना लिया है और यहाँ भेजा है। राजा देवीसिंह के नाते से आप भले ही मुझे अपना वैरी समझें, परन्तु आपके वैर के योग्य नही हूं।'

कुन्जर ने एक क्षण सोचा। रामदयाल की बात पर उसे जरा भी विश्वास न हुआ, परन्तु उसे मार डालने की इच्छा में अनेक विघ्न दिखलाई दिये।

पूछा—'क्या सन्देशा लाये हो ?'

उत्तर मिला—'यदि क्षमा किया जाऊँ, तो मैं यह कहना चाहता हूं कि मेरा सन्देशा वहाँ के राजा सबदलसिंह के लिये ही है।'

कुञ्जरसिंह का जी जल गया। बोला—'तब चलो उनके पास। मैं साथ चलता हूं।'

'किसी को भेजकर उन्हें यहीं बुलवा लीजिये। सबके सामने जाने से सन्देश के रहस्य के खुलकर फैल जाने का भय है।' रामदयाल ने कहा।

पास ही एक तोप लगी हुई थी। गोलन्दाज और कई सैनिक वहाँ नियुक्त थे। जरूरी काम के नाम से कुञ्जर ने एक सैनिक को बुलाकर कहा—'यह मनुष्य शत्रु या मित्र पक्ष का है, अभी निश्चय नहीं हो सकता किस श्रेणी में इसे समझा जाय। राजा से कुछ बात करना चाहता है। उन्हे तुरन्त यहाँ भेज दो। मैं इस पर तब तक पहरा लगाये हूं।

रामदयाल गमनोद्यत सिपाही से बोला—'राजा से कह देना कि मैं यहीं पर वध कर दिया जाऊँ, यदि शत्रु-पक्ष का निकलूँ या यदि मेरी बात उपयोगी सिद्ध न हो।'

थोड़ी देर मे वह सैनिक सबदलसिंह को लेकर आ गया। राजा ने उतावली मे पूछा—'क्या बात है।'

वह बोला—'क्या मैं राजा कुञ्जरसिंह के सामने कह सकता हूं ? राजा देवीसिंह का सन्देशा है।'

कुञ्जरसिंह ने झुंझलाकर बीच में कहा—'मैं अब विराटा का शुभाकांक्षी हूं, अब जो विराटा के मित्र है, वे मेरे मित्र है और जो उसके शत्रु हैं, वे मेरे शत्रु।'

सबदलसिंह बोला—'तुम अपना संवाद सुनाओ।'

रामदयाल ने कहा—'कल बड़े जोर का आक्रमण आपकी गढ़ी पर होगा—अलीमर्दान की सेना का। उसका ध्यान बटाने के लिये हमारे

महाराज रामनगर पर वड़े जोर का हल्ला बोलेंगे। आप तोपों की बाढ़ का पक्का बन्दोवस्त रक्खें।'

'और ?' सबदलसिंह ने पूछा।'

'और।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'और सम्वाद उन्होंने अपनी भविष्य रानी के लिये भेजा।'

सबदलसिंह ने गोमती के साथ होने वाले देवीसिंह के सम्वन्ध की चर्चा सुन रक्खी थी। फिर भी प्रश्न-सूचक दृष्टि से वह रामदयाल की ओर और फिर तुरन्त कुञ्जरसिंह की ओर देखने लगा।

रामदयाल ने असन्दिग्ध भाव से कहा—'यदि आज्ञा हो तो उनसे ही कह दूँ और विश्वास न हो, तो आपको बतला दूँ।'

सवदलसिंह वोला—'नही, वह सम्वाद मेरे कानों के योग्य नही हो सकता। तुम अकेले में कह सकते हो। परन्तु दो दिन तक तुम इस स्थान को छोड़ न सकोगे।'

रामदयाल मुस्कराकर वोला—'मेरे लिये महाराज की आज्ञा भी यही है। अगले दो दिन बड़ी कठिन अवस्था के रहेंगे। मेरा उनके पास रहना जरूरी है।'

अकेले मे ले जाकर सवदलसिंह से कुञ्जर ने कहा—'यह आदमी वड़ा नीच और भयंकर है। अपनी गढ़ी मे इसका ऐसे समय आना मुझे वड़े अशुभ का द्योतक मालूम होता है।'

सबदलसिह बोला—'आपको राजा देवीसिंह के किसी मनुष्य की कम-से-कम वर्तमान समय मे बुराई नही करनी चाहिये। आप मेरे अतिथि है, और मान्य हैं, परन्तु यह बात आपको ध्यान में रखनी पड़ेगी कि राजा देवीसिह हम लोगों के परमसहायक है। मुझे इस वात की चिन्ता है कि मिलने पर कही आपके लिये मुझे उत्तर न देना पड़े। यदि मान लिया जाय कि यह मनुष्य देवीसिंह का नही है, तो मैने इसे कुछ समय तक रुके रहने के लिये कह ही दिया है। आप भी सावधानी के साथ इस पर दृष्टि रक्खें।'

[७८]

विराटा में मन्दिर की वगल में उत्तर-पश्चिम की ओर एक वड़ी टौर के नीचे एक खोह थी। उसी जगह कुमुद, गोमती और नरपति इन दिनो अपना अधिकांश समय विताते थे। रामदयाल वही पहुंचा। गोमती रामदयाल को देखकर प्रसन्न हुई। दिन-रात सिवा कुमुद और नरपति के साथ के और कोई तीसरा व्यक्ति उपलब्ध न था। दिन-रात सिवा गोला-वारी, मार-काट, हाय-हाय कुमुद तथा नरपति की वही वँधी हुई वातों के और कुछ सुनने को कई दिन से नही मिला था।

देखते ही रामदयाल के पास आई। वोली-'कव आये? कैसे आये? क्या समाचार लाये हो?'

रामदयाल ने कहा—अभी आ रहा हूं, वड़ी कठिनाइयों को पार करके एक वार तो ऐसा जान पड़ा कि अलीमर्दान की तोप मेरी छोटी-सी नाव को चकनाचूर किये देती है। अन्धेरे में एक किनारे से नाव लेकर चला था, परन्तु धीरे-धीरे सूर्योदय तक यहाँ आ पाया हूं।'

गोमती की आँखो मे कृतज्ञता झलक आई। कहा—'क्यों प्राणों को इतने सङ्कट मे डाला?'

रामदयाल गोमती को जरा दूर ले जाकर एक चट्टान के पास वात-चीत करने लगा।

गोमती वोली—'तुम महाराज के वड़े आज्ञाकारी सैनिक हो।'

'नहीं हूँ।' उसने कहा—'मै आपका आज्ञाकारी सैनिक हूँ।'

'क्या समाचार है?'

'कहा है, अभी मिलना न होगा विराटा पहुंचने पर इतना समय न मिल सकेगा कि वातचीत हो सके। जव लड़ाई समाप्त हो जायगी, दलीपनगर का राज्य निष्कंटक हो जायगा, महाराज का कहीं कोई वैरी न रहेगा, तव आप रथ में या किसी और सवारी पर दलीपनगर चली आवें।'

'क्या महाराज ने यह सब कहा है ?'

'मैं झूठ बोलने के लिये इतनी आफतों में क्यों अपनी जान डालता ?'

गोमती ने दाँत पीसे। कुछ क्षण बाद बोली—इतनी बात कहने के लिये उन्होने तुम्हें यहाँ तक पहुंचाया ? क्या वह रामनगर में आ गये है ?'

रामदयाल ने उत्तर दिया–'अभी रामनगर अधिकार में नहीं आया है।'

रुद्ध स्वर में गोमती ने पूछा—'क्या मुझे चिढ़ाने और तुम्हारा प्राण लेने के लिये ही तुम्हें यहाँ भेजा है ?'

रामदयाल ने नीची निगाह किये हुये कहा—'एक रहस्य की बात है। इस गढ़ी में यदि किसी को मालूम हो जायगा, तो शायद मैं बकरे की तरह काट डाला जाऊँ।'

गोमती बोली—'तुम कहो रामदयाल। जो जी में आवे, सो कहो। मैं ठाकुर की बेटी हूं।' कोई उस रहस्य को मुझसे न पा सकेगा।'

'तुझे महाराज ने निकाल दिया है। राजाओं का कभी किसी को विश्वास न करना चाहिये।'

'तुम्हे निकाल दिया है ! क्यों ?'

'क्योंकि मैंने हठ- पूर्वक कहा था कि विराटा पर संकटों की बौछार हो रही है। भगवान न करें, महारानी का कोई बाल बाँका हो जाय, इसलिये मुझे अनुमति दीजिये कि विराटा से दलीपनगर लिवा ले जाऊँ। बोले, मैं राजा हूं, वह मेरे योग्य नहीं है, किसी राजा की लड़की के साथ विवाह करूँगा।'

गोमती सिहर उठी।

बोली—'फिर तुम यहाँ किस लिये आये ?'

रामदयाल जरा सहमा-'परन्तु उसकी प्राकृतिक ढिठाई ने उक्त भाव तुरन्त दबा दिया। कहने लगा-'मै जिस लिये गोलों और आग की लपटों के इस तूफान में होता हुआ यहाँ तक आया हूं, उसका कारण स्पष्ट है।

महाराज ने निकाल दिया, 'मेरा अब और कोई कहीं भी संसार में नहीं है। 'आगे नाथ, न पीछे पगहा।' अब तो मैंने निश्चय किया है कि अपना शेष जीवन घूनी रमाकर बिताऊँ।'

गोमती ने दूसरी ओर देखते हुये कहा—'महाराज ने यह भी कहा था कि जब सम्पूर्ण राज्य निष्कण्टक हो जाय तब मैं किसी का रथ माँगकर दलीपनगर में रहने के लिये दो हाथ ठौर की भीख माँगने जाऊँ।'

वह बोला—'इस तरह की बात तो उन्होंने तब कही थी, जब मैंने बहुत हठ पकड़ा था। उसी हठ में दुर्भाग्यवश मैं आपे से बाहर हो गया। बहुत बक-झक की तब महाराज ने मुझे अपने पास से हटाकर ही दम लिया। मैं उनके हुकुम से यहाँ नहीं आया हूं। अपनी ही प्रेरणा से उपस्थित हुआ हूं। यहाँ मुझ पर सन्देह किया गया है। दो दिन तक एक तरह से यहाँ नजर-कैद हूं। इस बीच मे इस गढ़ी वालों को आशा है कि महाराज ससैन्य आ जायेंगे और तब शायद या तो मुझे प्राण-दण्ड दिया जायगा, या कम-से-कम सदा के लिये देश-निकाला।'

गोमती तमककर बोली—'ऐसा कभी न होगा रामदयाल। जब तक मेरी देह में प्राँण है, तब तक तुम्हें हानि न पहुंच सकेगी। तुम हम लोगों के साथ इसी खोह मे रहो। काफी बड़ी है। बाहर कभी-कभी गोला-गोली पड़ जाती है।'

'परन्तु एक बात का ध्यान रहे।' रामदयाल ने आग्रह के साथ कहा—'किसी तरह भी किसी को यह बात न मालूम होने पावे कि महाराज ने मुझे निकाल दिया है। यहाँ मुझे लोग राजा का सेवक समझते है।'

[७६]

रात का समय था। काली रात। आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। पवन ने पेड़ों को चूमकर सुला-सा दिया था। बेतवा अचेत पत्थरों से निरन्तर टकराकर अनन्त कलकल शब्द रच-रचकर रह-रह जाती थी।

कुन्जरसिंह मन्दिर की दीवार के पास एक टोर की आड़ में जहाँ से नदी की धार रामनगर की ओर से वह कर आई थी, कन्धे से वन्दूक लगाये अकेला वैठा था। उत्साह था, हृदय में अपूर्व वल प्रतीत होता था—'मन्दिर की रक्षा के लिये, मन्दिर की विभूति के लिये। दिन को गोलियाँ पास से निकल जातीं थीं, गोले धम से आकर धूल और कङ्कड़ों को विखेर देते थे। एक छोटी–सी जगह उस युद्ध में सवदलसिंह ने दे रक्खी थी, उसको उस राजकुमार ने वहुत समझा। मुस्तैदी से अपने स्थान पर डटा रहता था। केवल प्रातःकाल मन्दिर में दर्शन के लिये जाता था और एक-आध वार दिन में भी नरपति की कुशल-क्षेम पूछने को गुफा पर पहुंच जाता था। वह टोर, एक कम्वल और लोटा लेकर कुन्जर सशस्त्र डटा रहता था, उसके लिये तीर्थ-स्थान सी हो उठी थी।

परन्तु उस रात मन वेचैन था। रामदयाल पिशाच है। उसकी पैशाचिकता को सवदलसिंह नहीं समझता। गोमती उसे विलकुल नहीं पहचानती। वह क्यों आया है? अवश्य अलीमर्दान का भेदी है। निस्सं-देह कुछ उत्पात खड़ा करेगा, शायद विराटा को ध्वस्त करने की चिन्ता में हो। कुमुद इस युद्ध का लक्ष्य है। देवीसिंह वचाने के लिये आ रहा है। देवीसिंह ने, जिसने मुफ्त में दलीपनगर के राज्य को खसोट लिया है, मेरे हक को पैरों तले कुचल डाला है! यदि इस समय मैं दलीपनगर का राजा होता, तो देवीसिंह की अपेक्षा कहीं अधिक प्रवलता और चतुरता के साथ युद्ध करता। राजा नायकसिंह के वीर्य से उत्पन्न एक हाथ भूमि के लिये जङ्गलों में मारा-मारा भटके और- देवीसिंह दलीप-नगर की सेनाओं का संचालन करे! यथेष्ट हथियार चलाने के लिये एक सड़े से सरदार सवदलसिंह का मुंह ताकना पड़े!

रामदयाल क्यों आया? वह रामदयाल जो राजा नायकसिंह की वासनाओं की तृप्ति के लिये खुल्लम-खुल्ला साधन जुटाया करता था, वही जो देवीसिंह का शत्रु है और साथ ही विराटा के सव लोगों का—और अवश्य ही विराटा निवासिनी कुमुद का भी।

कहीं कुमुद की गुफा के पास कोई जाल तो नहीं रचा जा रहा है? रामदयाल वहीं ठहरा है। क्यों वहाँ ठहरने दिया गया है? वह यहाँ आया ही क्यों? इस स्थान को रामदयाल से किसी प्रकार निस्तार मिले?

वह कुञ्जर की शक्ति के वाहर की वात थी। 'परन्तु' उसने सोचा—'मैं इसके कुचक्रों का निवारण कर सकता हूं। करूँगा।' फिर अपनी तोपों की ओर ध्यान गया। जिस प्रयोजन से वे वहाँ स्थित थीं और वह स्वयं उस स्थान पर जिस धारणा को लेकर गड़ा-सा था, उस ओर भी ध्यान गया।

उस समय प्रतिकूल पक्ष की तोपें विराटा की दिशा में विरक्त-सी थीं।

कुञ्जरसिंह दवे पाँव गुफा की ओर गया।

गुफा में निविड़ अन्धकार था। पत्थर से सटकर कुञ्जर ने कान लगाया। उम तमोराशि में केवल कुछ साँसों का शव्द सुनाई पड़ता था।

निद्रा ने षड़यन्त्रों पर भी अपना अधिकार कर लिया था।

इसी गुफा में वह देवी है। कुञ्जर ने सोचा, 'कल्याण और रूप, स्निग्धता और लावण्य, वरदान और प्रेरणा की वह निधि उस कठोर गुफा के भीतर!'

कुञ्जर और अधिक नहीं ठहरा। उसका कर्त्तव्य इस निधि की रक्षा से साथ सम्वद्ध था। लौट आया। मन में कहा—'देवी को किसी का कोई स्वप्न भी कभी आता होगा?'

[८०]

दलीपनगर और भाँडेर की सेनायें एक दूसरे पर विना वड़ा जन-संहार किये हुये तोपें और वन्दूकें दागती रहती थीं। इक्के-दुक्के सैनिक लड़-भिड़ जाते थे, कभी-कभी छोटी-छोटी टोलियों की मुठभेड़ भी हो जाती थी। परन्तु सौ-पचास हाथ भूमि इधर या उधर, इससे अधिक जय या पराजय किसी पक्ष को भी प्राप्त न हो पाती थी।

इधर-उधर के वड़े-वड़े नाले दोनों दलों की स्वाभाविक सीमा से वन गये थे, जव तव भरकों में मारकाट हो जाती थी। वीच के मैदानों से गोले और गोलियाँ भन-भनाती निकल जाती थीं।

इस प्रकार के युद्ध से लोचनसिंह का जी ऊवने लगा। खुले मैदान में युद्ध ठानने का उसने कई वार मन्तव्य प्रकट किया, परन्तु राजा देवीसिंह की दूरदर्शिता के प्रतिवाद से लोचनसिंह की न चलने दी।

आज अकस्मात राजा, जनार्दन शर्मा, लोचनसिंह इत्यादि मुसावली के निकटवर्ती नाले में इकट्ठे हो गये।

आगे क्या करना चाहिये, इस पर सलाह होने लगी।

लोचनसिंह ने कहा—'यही गड़े-गड़े मरना तो अव विलकुल अच्छा नहीं लगता। हथियार विना चलाये ही कदाचित किसी दिन टे हो जाना पड़े।'

'तव क्या किया जाय?' जनार्दन ने धीरे से पूछा।

'अलीमर्दान की सेना पर तीर की तरह टूट पड़ना चाहिये।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया।

'और तीर की तरह छूट निकलकर कमान को खाली कर देना चाहिये।' राजा देवीसिंह ने व्यङ्ग किया।

'जैसी मर्जी हो।' लोचनसिंह ने कुढकर कहा—'लडाई के वहाने भड़भड़ करते रहिये, जव अलीमर्दान की सेना दुगुनी चौगुनी हो जाय, तव घर चले चलिये।'

देवीसिंह का थका हुआ चेहरा लाल हो गया। सोचने लगे। एक पल वाद वोले—'आज रात तक रामनगर पर अपना झण्डा फहरा सकोगे?'

लोचनसिंह उत्तर देने में जरा-सा हिचका।

देवीसिंह—'मौत के वदले रामनगर मिलेगा, लोचनसिंह?'

'मैं तैयार हूं।' लोचनसिंह ने दृढ़ता के साथ कहा।

जनार्दन जरा कसे स्वर में बोला—'और आपके सरदार ?'

इस थपेड़ की परवा किये बिना ही लोचनसिंह ने कहा—'मेरे साथी सरदार कुछ करने या मरने के लिये बहुत उतावले हो रहे हैं परन्तु—'

जनार्दन—'परन्तु आज ही आपके मुँह से सुना।'

जनार्दन पर आँखें तानकर लोचनसिंह बोला—'आप रामनगर विजय करिये, महाराज से रामनगर की जागीर आपको मैं बरबस दिलवा दूंगा।'

जनार्दन भी उत्तेजित होकर कुछ कहना ही चाहता था कि देवीसिंह ने कहा—'मेरे एक मन्तव्य है।'

जनार्दन—'महाराज।'

लोचनसिंह—'क्या मर्जी है ?'

देवीसिंह—'रामनगर पर शीघ्र अधिकार कर लेने के लिये बढ़ना यमराज को न्योतने के बराबर है, परन्तु अलीमर्दान पर धावा बोलने की अपेक्षा यह भी कही ज्यादा अच्छा है। रामनगर का गढ़ और तोपें हाथ में कर लेने के उपरान्त अलीमर्दान से खुली मुठभेड़ करना सरल हो जायगा।' फिर एक क्षण सोचकर राजा ने कहा—'लोचनसिंह, तुम्हें अन्त्येष्टि क्रिया कि पवित्र आवश्यकता मे बहुत विश्वास है ?'

लोचनसिह नही समझा। देवीसिंह बोला—'मरने जाओगे, तो कफन भी साथ लेते जाओगे या नहीं ?'

लोचनसिंह मुस्कराया। उसके झुर्रीदार चेहरे पर सौन्दर्य की रेखायें छा गई। बोला—'महाराज ने बहुत सूझ की बात कही। हम लोग जितने आदमी रामनगर की ओर आज बढ़ेंगे, सब अपने-अपने सिर पर कफन बाँधेगे। वाह ! क्या वेश रहेगा ! कोई देखे, तो कहेगा कि मौत से लड़ने के लिये यमदूत जा रहे है।'

राजा ने कहा—'जो आज रात को रामनगर विजय करेगा, वह उसे जागीर में पायेगा।'

इसके बाद इन लोगों ने अपनी योजना तैयार की।

[८१]

दूसरे दिन सन्ध्या के पूर्व नित्य-जैसी लड़ाई होती रही। लोचनसिंह जितने मनुष्यों को रामनगर पर आक्रमण करने के लिये चाहता था उतने उसे मिल गये। उनके चेहरे पर उत्साह था या नहीं, यह अँधेरे में नहीं दिखलाई पड़ रहा था, परन्तु मन के रोकने पर भी कुछ बात करने के लिये उतावले-से जान पड़ते थे—परस्पर कोई करारी दिल्लगी करने के लिये सन्नद्ध-से। बिलकुल पास से देखने वाला जान सकता था कि वे लोचनसिंह के साथ होने पर भी फुसफुसाहट मे ठठोली कर रहे थे और मुस्कराते भी थे।

नदी के किनारे-किनारे बिना पहचाने जाना असम्भव था। इसलिये अपने भरके की सीध से कभी तैरकर और कभी भूमि पर रामनगर तक चुपचाप जाना लोचनसिंह ने तय किया। रामनगर के नीचे पहुँच कर फिर आक्रमण करना था या मौत के मुंह मे धँसना था।

लोचनसिंह ने नदी में उतरने के लिये कपड़े कसे। पैर डालने नहीं पाया था कि समीप खड़े हुये एक सिपाही ने स्वर दबाकर कहा—'दाऊजू, और कपड़े चाहे भीग जायँ परन्तु सिर से बँधा हुआ कफन न भींगने पावे।'

लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'भींग हुये कफन से मुक्ति और भी जल्दी मिलेगी। पर अब फुसफुसाहट मत करो।'

लोचनसिंह पानी में जाने से पहले कुछ सोचने लगा। उसी स्वर में वह सैनिक बोला—'दाऊजू, देखते क्या हो, कूद पड़ो।'

लोचनसिंह ने कहा—'जो कुछ देखना है, वह रामनगर में देखूँगा। यहाँ देखने को रक्खा ही क्या है। नदी का तैरना शूरता का काम नहीं, केवल बल का काम है।'

सिपाही कुछ और कहना चाहता था, परन्तु लोचनसिंह पानी में सरक गया और सिपाही भी पीछे हो गये।

नदी के वहाव के विपरीत अन्धेरी रात को तैरना वीरता का भी काम था और खास तौर से उस समय, जब किनारों पर शत्रु बन्दूकें भरे धांय-धांय कर रहे थे।

घोर परिश्रम के पश्चात् रामनगर से कुछ दूरी पर सब-के सब पहुंच गये। वहाँ पानी चट्टानों में होकर आया है। धार तेज बहती है। विजय प्राप्ति के लिये सुरक्षित स्थान में इकट्ठा होना आवश्यक था। परन्तु इस स्थान पर प्रकृति को पराजित करना सहज न था। टुकड़ी तितर बितर होकर, इधर-उधर चट्टानों पर बैठकर दम लेने लगी।

थोड़े समय पश्चात्, किसी पूर्व-निर्णय के अनुसार दलीपनगर की सेना की ओर से रामनगर के ऊपर साधारण रीति से गोला-बारी शुरू हो गई। लोचनसिंह को अपने निकट एक ऊँची चट्टान दिखलाई दी, जो चढ़ाव खाती हुई रामनगर के किले की दीवार के नीचे तक चली गई थी। परन्तु बीच में तेज धार वाला पानी पड़ता था। और साथी इधर-उधर बिखरे हुये थे।

लोचनसिंह ने आवाज दबाकर कहा—'पीछे-पीछे आओ।' इस बात को किसी ने न सुन पाया तब और जोर से बोला—'इस ओर आओ।'

इस पुकार को उसके साथियों ने सुन लिया और पास ही एक चट्टान से अटकी हुई डोंगी में चुपचाप पड़े हुये किसी व्यक्ति ने भी।

'धांयें-धांयें, की आवाजें आगे-पीछे जल्दी-जल्दी हुई। तेज बहती हुई धार पर गोलियाँ छर्र हो गईं। लोचनसिंह पानी में कूद पड़ा, परन्तु नाव के पास पहुंचने में धार बार-बार विघ्न उपस्थित करने लगी। डोंगी के भीतर से बन्दूकों के पुनः भरे जाने का शब्द आने लगा। लोचनसिंह को आभास हुआ कि अबकी बार बचना असम्भव होगा। वह धार के खिलाफ बहुत बल लगाने लगा और धार भी उसे जोर से झटके देने लगी। हांफता हुआ लोचनसिंह जोर से चिल्लाया-'क्या सब मर गये?'

पास की चट्टान से टकराते हुये पानी को चीरते हुये आकर एक व्यक्ति ने स्पष्ट कहा—'अभी तो सिर का कफन गीला भी नही हुआ है।'

'शावाश ?' लोचनसिंह बोला—'कौन !'

उत्तर मिला—'बुन्देला।'

इस उत्तर से लोचनसिंह को तृप्ति नही हुई।

वह सिपाही किसी दृढ़ता में इतराता हुआ-सा, उस धार को पार करके नाव के पास जा पहुंचा। लोचनसिंह ने भी दुगना वल लगा दिया। वह भी नाव के नीचे जा लगा। पीछे से और सिपाहियों के आने की भी आवाज मालूम हुई। जो सिपाही पहले आया था, उसने नाव पर चढ़ने की चेष्टा की।

नाव के भीतर से किसी ने वन्दूक की नाल से उसे ढकेल दिया। वह नीचे गिर पड़ा और थोड़ा-सा वह गया। तव तक लोचनसिंह आ धमका। उसके साथ भी वही क्रिया की गई। क्रिया सफल हुई। लोचनसिंह भी नीचे धसक गया। इतने में वह सैनिक आ गया और नाव पर चढ़ गया। लोचनसिंह और उसके अन्य सिपाही भी कुछ ही समय पीछे नाव मे जा घुसे। नाव में रामनगर के छः सात सैनिक थे, परन्तु दो के सिवा और सव सो रहे थे दूर की तोपों और पास की वन्दूकों से वे थके—थकाये जाग न सके थे परन्तु नवागन्तुकों के धस पड़ने से रस्सों से वँधी हुई नाव डगमगा उठी, इसलिये नाव थर्रा उठी। किसी अज्ञात संकट मे अपने को फँसा हुआ समझ कर और असाधारण शब्दों से घवराकर भाग उठे। इधर-उधर उछल-उछलकर गिरने लगे। दो सिपाही जो वन्दूकें लिये तैयार थे, चला न पाये। लोचनसिंह ने उन्हें तलवार से असमर्थ कर दिया। लोचनसिंह और उसके सिपाहियों को नाव में जितनी वन्दूकें मिलीं, ले लीं और अपने पास की पिस्तोलें पोंछ-पाँछकर भर लीं। वोंडे सुलगाकर और उन्हे भली भाँति छिपाकर किले की ओर आड़ें लेती हुई

यह टुकड़ी बढ़ी। ऊपर से तोपें आग उगलकर दलीपनगर की सेना को जवाब देने लगी थी। कभी-कभी आग की चादर-सी तन जाती थी।

आगे चलकर उस बातूनी सैनिक ने लोचनसिंह से कहा—'अब क्या करोगे दाऊजू?'

'फाटक पर गोलियों की बाढ़ दागो।' लोचनसिंह ने आज्ञा के स्वर में उत्तर दिया।

वह सैनिक बिना किसी झिझक के बोला—'फाटक पर बाढ़ दागने की अपेक्षा उस पर जोर का हल्ला बोलना अच्छा होगा।'

लोचनसिंह ने कड़वे कण्ठ से कहा—'यह गलत कार्रवाई होगी जो कहता हूं, सो करो।'

वह सैनिक बोला—'सो तो यों भी कफन सिर से बाँधकर चले है।'

लोचनसिंह ने कलेजा कोंचने वाली कोई बात कहनी चाही, परन्तु केवल इतना ही मुंह से निकला—'अच्छा तो तुम अकेले फाटक पर जाके कुछ चिल्लाओ।'

वह सैनिक बिना कुछ कहे सुने तुरन्त फाटक की ओर दीवार के किनारे-किनारे बढ़ गया।

और सैनिकों ने कहा—'हमें भी वहीं जाकर मरने की आज्ञा हो?'

लोचनसिंह जरा सहमा। मौत की छाती पर सवार सैनिकों की इस बात के भीतर किसी उलहने की छाया देखकर वह जरा-सा लज्जित भी हुआ। बोला—'हम सब वहीं चल रहे है।'

इतने में वह वाचाल सैनिक फाटक के पास पहुंच गया। तोपों की उस धूमधाम में आवाज खूब ऊँचा करके वह चिल्लाया—'खोलो हम आ गये।'

फाटक पर रामनगर की सेना के योद्धा थे, वे घबराये। घबराकर इधर-उधर बन्दूकें दाग हड़बड़ाहट मे पड़ गये। उसी समय लोचनसिंह और उसके साथियों ने फाटक के पास आकर जोर का शोर-गुल किया। कुछ बन्दूकें भी दागी।

भीतर के सिपाही फाटक छोड़कर भीतर की ओर हटे। लोचनसिंह और उनके साथी कमन्द की सीढ़ी लगाकर दीवार पर चढ़ गये।

भीतर घमासान युद्ध होने लगा। बन्दूक-तमन्चे कड़कने और तलवारें खनकने लगीं। रामनगर वालों को अन्धेरे में यह न जान पड़ा कि दूसरी ओर के कितने सैनिक धस आये हैं। फाटक खुल गया और रामनगर सेना में भगदड़ मच गई। छोटी रानी लड़ती हुई फाटक से निकल गईं।

दलीपनगर की सेना ने जोर के साथ जय-जयकार किया।

रामनगर में बहुत कम लड़ाके भागने से बचे। जो नहीं भागे थे, उन्होंने हथियार डाल दिये। लोचनसिंह की सेना के भी कई आदमी मारे गये और अधिकांश घायल हो गये, परन्तु अपने अदम्य उत्साह और विजय हर्ष मे घावों की पीड़ा बहुत कम जान पड़ी। उक्त बातूनी सिपाही ने लोचनसिंह से कहा—'दाऊजू, फाटक बन्द कर लीजिये, अपनी सेना को जय-जयकार सुनाकर बुलाइये, नही तो यह विजय अकारथ जायगी।'

लोचनसिंह बिना रोब के बोला—'तुम्हारा नाम ?'

उत्तर मिला—'कफनसिंह बुन्देला।'

लोचनसिंह ने कोई प्रत्युत्तर नही दिया। फाटक बन्द करवा कर देवीसिंह का जय-जयकार करता रहा। दलीपनगर की सेना का घेरा रामनगर की बाहर वाली सेना और अलीमर्दान वाले दस्ते ने छोड़ दिया और टुकड़ियाँ दूर हट गई। दलीपनगर की सेना ने रामनगर के गढ़ पर अधिकार कर लिया। उस अन्धेरी रात में यह किसी को न मालूम होने पाया कि देवीसिंह ने कब और कहाँ से गढ़ में प्रवेश किया।

देवीसिंह के आ जाने पर गढ़ की ढूंढ खोज की गई। छोटी रानी तो निकल गई थीं, पर बड़ी रानी मिल गईं। उन्हें कैद कर लिया गया।

रामनगर के पतन के बाद पतराखन ने राजा देवीसिंह का अधिकार स्वीकृत कर लिया, परन्तु राजा ने उसे रामनगर में ससैन्य रहने का

अवसर नहीं दिया। वेतवा के पूर्वीय किनारे पर ही पूर्ववत रहने को कहा, जिसमें आवश्यकता पड़ने पर उसकी सेना का उपयोग किया जा सके।

बड़ी रानी को अपनी मूर्खता पर बड़ा पछतावा था, परन्तु उनके पछतावे की मात्रा के कोई लिहाज किये बिना ही राजा ने क्षमा दे दी। दृष्टि जरूर उन पर काफी रक्खी। रानी ने इस नजरबन्दी को ही बहुत गनीमत समझा।

विजय की रात्रि के बाद जो सबेरे रामनगर में राजा के सरदारों की बैठक हुई, उसमें सभी लोग राजा की इस उदारता पर मन में रुष्ट थे, छोटी रानी का जिक्र आने पर लोचनसिंह ने कहा—'महाराज यदि अपराधियों को दण्ड न देंगे तो विजय पर विजय बेकार होती चली जायेगी।'

जनार्दन अवसर पाकर मुस्कराया। बोला—'दाऊजू यह प्रश्न सेना-पति के लिये नही है, इसे तो राजनीतिज्ञ ही सुलझा सकते है।'

लोचनसिंह को किसी बहस का स्मरण हो आया। बराबरी के दाव मारने और खाने वाले सिपाही ने रामनगर पर विजय के उल्लास में इस बात का बुरा न माना। जरा-सा मुस्कराकर उसने कहा—'यह चोट अच्छा, खैर; कभी देखा जायगा।' फिर राजा से बोला—'रामनगर की जागीर कब और किसे दी जायगी? अब इस प्रश्न पर भी विचार कर लिया जाय।'

जनार्दन तुरन्त बोला—'चामुण्डराय लोचनसिंह के सिवा उसे और कौन पायेगा? महाराज ने उसी समय तय कर दिया था। कुछ और निर्णय उसके विषय मे नहीं करना है। मुझे तो चिन्ता छोटी रानी की है। उन्हें तुरन्त कैद करने की आवश्यकता है। उनके स्वतंत्र रहने से बहुत सरदार चल-विचल हो जाते है और अलीमर्दान को उनकी ओट में अपना काम बनाने का सुभीता भी रहता है।' फिर राजा के मुख की ओर निश्चयात्मक दृष्टि से देखने लगा।

राजा ने कहा—'छोटी रानी को जो कोई कैद कर लावेगा, उसे दो सहस्र मुहरें इनाम मे दी जायेंगी। यह घोषणा विस्तार के साथ कर दी जाय।'

जनार्दन खुशी के मारे उछल पड़ा। बोला—'सौ मुहरें महाराज के दीन ब्राह्मण जनार्दन की ओर से भी दी जायेंगी।

उस सूचना के साथ-लोचनसिंह ने मुस्कराते हुये कड़ुवेपन के साथ पूछा—'यह भी जाहिर किया जायगा या नही कि रानी चुपचाप गिरफ्तार हो जाये; क्योंकि पकड़ने के बाद उन्हें छोड़ दिया जायगा?'

राजा हँस पड़ा। एक क्षण बाद बोला—'रामनगर की जागीर का सिरोपाव चामुण्डराय लोचनसिंह को इसी समय दे दिया जाय शर्माजी।'

लोचनसिंह ने बारीक आह लेकर कहा—'यदि मुझे मिल सकती होती, तो पहले ही कह चुका हूं कि मैं महाराज को लौटा देता, परन्तु वह मुझे नही मिलना चाहिये।'

'क्यो?' राजा ने जरा विस्मय के साथ पूछा।

उत्तर मिला—'इसलिये कि मै रामनगर नहीं जीता।'

'तब किसने जीता?' जनार्दन ने प्रश्न किया।

राजा से लोचनसिंह ने कहा—'उसका सम्पूर्ण श्रेय मेरे एक सैनिक को है। खेद है रात के कारण उसका नाम नही पूछ पाया। वह जीवित अवश्य है, परन्तु अन्धेरे में न मालूम कहाँ चला गया। उसकी खोज करवाई जानी चाहिये; मर गया हो, तो उसके घर में जो कोई हो, उसे यह जागीर दे दी जाय।

राजा ने सहज रीति सम्मति प्रकट की—यदि सबकी सम्मति हो तो मैं यह चाहता हूं कि रामनगर का कुछ भाग पतराखन के पास रहने दिया जाय। अब यह शरणागत हुआ है, इसलिये बिलकुल बेदखल न किया जाय।'

लोचनसिंह ने जरा निरपेक्ष भाव से कहा—'हमारे उस सैनिक का

पता महाराज पहले लगवायें, तब रामनगर का कोई एक टुकड़ा पतराखन को या और किसी को दें।'

राजा विना उत्तेजना के बोला—'लोचनसिंह तुम्हें उस सिपाही ने कुछ तो अपना नाम वतलाया होगा ?'

'बतलाया था महाराज।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'परन्तु वह नाम बनावटी जान पड़ता है। कहता था, मेरा नाम कफनसिंह बुन्देला ?'

'विचित्र नाम है।' राजा ने मुस्कराकर जरा आश्चर्य के साथ कहा—'तुम्हारी सेना में क्या सब योद्धा इसी तरह बेतुके नाम रखते है।'

लोचनसिंह गम्भीर होकर बोला—'यदि मेरी सेना में सब सैनिक उस लोचनसिंह सरीखे हों, तो ही आपको घर-घर चामुण्डराई की उपाधि न बाँटनी पड़े।'

राजा ने पूछा—'क्या तुम उसका स्वर पहचान सकते हो ?'
लोचनसिंह ने जरा लज्जित होकर उत्तर दिया—'शायद न पहचान पाऊँगा। ऐसी जल्दी में सब काम हुआ और वातचीत हुई कि याद रखना कठिन है।'

'वाहरे सेनापति !' राजा ने हँसकर चुटकी ली।

लोचनसिंह का मस्तक लाल हो गया। बोला—'सेनापति को सैनिकों के स्वर याद रखने की आवश्यकता नही।'

राजा ने तुरन्त स्वर बदलकर कहा—'कफनसिंह बुन्देला।'

लोचनसिंह का क्रोध घोर विस्मय में परिवर्तित हो गया। क्षीण स्वर में बोला—'यही स्वर सुना था।'

'महाराज का !' जनार्दन ने आश्चर्य के साथ कहा।

देवीसिंह खूब हँसकर बोला—'महाराज का नही, कफनसिंह बुन्देला का।'

लोचनसिंह सम्भल गया। गम्भीर होकर बोला—'तव आप जागीर चाहे जिसे दे सकते हैं।'

'तीन चौथाई लोचनसिंह को और एक चौथाई पतराखन को यदि वह स्वाभाविक बना रहा तो।'

[८३]

अपनी सेना के प्रधान भाग से राजा देवीसिंह का सम्बन्ध रामनगर में स्थापित हो गया था, परन्तु विराटा की इससे मुक्ति नहीं हुई। अलीमर्दान की सेना की कमान रामनगर के पास से खिचकर विराटा की ओर और अधिक सिमट आई। अपनी ओर अलीमर्दान की सेना को और अधिक सिमटा हुआ देखकर राजा सबदलसिंह ने समझा, दलीप-नगर की सेना पीछे हट गई है। सेना छोटी थी। मुट्ठी-भर दाँगी इतनी बड़ी फौज का सामना कर रहे थे—अपनी बान पर न्योछावर होने के लिये। तोपें थोड़ी थी, साहस बहुत

कुन्जरसिंह तोप के काम में बहुत कुशल था। यद्यपि सबदलसिंह ने राजा देवीसिंह के भय के कारण कुन्जरसिंह को छोटा-सा ही पद दे रक्खा था, तथापि अपनी दिलेरी और चतुरता के कारण बहुत थोड़े समय में उसे तोपची से सभी तोपों के नायक का पद मिल गया। तोपों के नायक को उसके बाद ही सेना की विश्वासपात्रता सहज ही प्राप्त हो गई। वह विराटा के कागजों में सेनापति नही था, परन्तु वास्तव में था और सैनिकों के हृदय में उसके शौर्य ने स्थान कर लिया था।

रामनगर-विजय के दूसरे दिन सन्ध्या समय राजा देवीसिंह ने नाव द्वारा विराटा जाने का निश्चय किया। अलीमर्दान से आँख बचाने के लिये एक छोटी-सी नाव में थोड़े से आदमी ले लिये और लोचनसिंह जनार्दन इत्यादि से जाते समय कह गये कि आधी रात के पहले लौट आयेंगे।

बेतवा का पूर्वीय तट पतराखन के शरणागत हो जाने के कारण निसंकट हो गया था, इसलिये उसी ओर से अन्धेरे में देवीसिंह अपनी नाव विराटा ले गया और जहाँ मन्दिर के पीछे पश्चिम से पूर्व की ओर पठारी धीरे-धीरे ढाल होते-होते जल में समा गई है, वहीं नाव लगा दी।

अपने सिपाहियों में से दो को साथ लेकर देवीसिंह अनुमान से मन्दिर की ओर बढ़ा।

वहीं एक तोप लगी हुई थी। कुञ्जरसिंह पास खड़ा था, परन्तु राजा असाधारण मार्ग से होकर आया था। इसलिये जब तक बिलकुल पास न आ गया, कुञ्जरसिंह को मालूम न हुआ। जब देवसिंह पास आ गया, कुञ्जर ने ललकारा, और तलवार खींचकर दौड़ा।

देवीसिंह ने शान्त, परन्तु गम्भीर स्वर में कहा 'मैं हूं दलीपनगर का राजा देवीसिंह।'

कुञ्जरसिंह ने वार नहीं किया, परन्तु पास के सैनिकों को सावधान करके देवीसिंह के पास आगे बढ़ गया। कम्पित स्वर में बोला—'इस अन्धेरे में आपके यहाँ आने की क्या जरूरत थी?'

अबकी बार देवीसिंह के अचकचाने की बारी आई। बोला—'तुम कौन?'

'मैं हूं कुञ्जरसिंह। महाराज नायकसिंह का कुमार।'

'आप....। तुम यहाँ कैसे?'

इस सम्बोधन की अवज्ञा कुञ्जरसिंह के हृदय में चुभ गई। देवीसिंह से कहा—'क्षत्रिय अपनी तलवार की नोक से अपने लिये संसार में कहीं भी ठौर बना लेता है।'

'आपको विराटा का शत्रु समझा जाय या मित्र?'

'जैसी आपकी इच्छा हो।'

'सबदलसिंह कहाँ है?'

'गढ़ी की रक्षा कर रहे है।'

'मैं उनसे मिलना चाहता हूं?'

'किसलिये?'

'रामनगर हमारे हाथ में आ गया है। विराटा के उद्धार के लिये सुभीता होते ही हम शीघ्र आते हैं, तब तक अलीमर्दान का निरोध दृढ़ता के साथ करते रहें, इस बात को बतलाने के लिये।'

'यह सन्देश उनके पास यथावत् पहुंचा दिया जायगा।'

देवीसिंह ने क्षुब्ध होकर कहा- 'आप यदि इस गढ़ी में मित्र के रूप में न होते, तो आप जिस पद के वास्तव में अधिकारी हैं, वह आपको तुरन्त दे दिया जाता।'

कुञ्जरसिंह ने पहले अपनी तोप और सुलगते हुये द्रोंडे की ओर, फिर रामनगर की ओर देखा। एक बार मन में आया कि सैनिकों को आज्ञा देकर आगन्तुक को कैद कर लूं और तोपों के मुंह से रामनगर पर गोले उगलवा दूं, परन्तु कुछ सोचकर रह गया। बोला—'इसका ठीक-ठीक उत्तर देना मेरे लिये असम्भव हो रहा है, परन्तु कभी उत्तर दूंगा अवश्य।'

देवीसिंह ने कहा 'मुझे इस समय इस व्यर्थ विवाद के लिये अवकाश नहीं, यदि आप सबदलसिंह को स्वयं बुला सकते हों, बुला लाइये, नही तो इन सैनिकों में से कोई उनके पास चला जाय और कह दे कि दलीपनगर के महाराज बड़ी देर से खड़े बाट जोह रहे हैं।'

कुञ्जरसिंह ने दांत पीसे, परन्तु बड़े संयम के साथ अपने सैनिक से कहा—'एक आदमी राजा के पास जाओ। जो कुछ इन्होंने कहा है, उन्हें सुना देना। इनसे मुलाकात मन्दिर में होगी। चार आदमी इन्हें लेकर मन्दिर मे बिठलाओ।'

इस पर एक सैनिक सबदलसिंह के पास गया और चार देवीसिंह और उनके साथियों को मन्दिर में ले गये। उस समय कुञ्जरसिंह ने बड़े क्षोभ और क्रोध की दृष्टि से उन लोगों की ओर देखा। मन में बोला—इस भुक्खड़ भिखारी के दिमाग में इतना घमण्ड! दलीपनगर के महाराज! महाराज नायकसिंह के दलीपनगर का अधिकारी यह चोर! चाहे जो हो, यदि इसके टुकड़े-टुकड़े न किये तो, मनुष्य नहीं।

एक सैनिक ने कुञ्जरसिंह से अपनी अपार सावधानी जताने के लिये कहा-—'यह शायद देवीसिंह न हों। नवाब के आदमी हों, वेश बदलकर आये हों।'

बिना मुँह खोले हुये कुञ्जरसिंह बोला—'हूं।'

सिपाही कहता गय—'मन्दिर को कही ये लोग अपवित्र न कर दें। देवी, देवी की पुजारिन—'

कुञ्जरसिंह ने जाग्रत-सा होकर कहा—'तुमने कैसे अनुमान किया ?'

'मैं खूब जानता हूं।' वह बोला—'ये लोग मूर्तियाँ तोड़ डालते हैं' स्त्रियों को जबरदस्ती पकड़ ले जाते है। उसके साथ दो आदमी भी है। नाव में बैठकर आये होंगे। पठारी के नीचे नाव लगी होगी। उसमें और आदमी भी होगे।'

तमककर कुञ्जरसिह ने कहा—'और हमारे सिपाही क्या उन लोगों के गुलाम है, जो उन्हे उत्पाअ करने देंगे ?'

वह सैनिक जरा सहम गया। परन्तु ढिठाई के साथ बोला—'हम लोग तो अपने प्राणों की होड़ लगा ही रहे है, परन्तु कोई अनहोनी न हो जाय, इसलिये कहा। शायद उसके पास और आदमी किसी दूसरी ओर से भी आ जायें।'

कुंजरसिह ने सोचा–'कही देवीसिंह नरपतिसिंह इत्यादि को रामनगर न लिवा ले जाय। शायद गोमती को लिवाने आया हो और उसके साथ उन लोगों से भी चलने के लिये कहे। उसने और अधिक नही सोचा। सैनिक से कहा—'तुम तोप पर डटे खड़े रहो। मै देखता हूं, वहाँ क्या होता है। राजा सबदलसिंह मन्दिर में थोड़ी देर में आते होंगे। वहाँ मेरी उपस्थिति आवश्यक होगी।' फिर मन में बोला—देवीसिंह ने रामनगर को विजय कर लिया ! मेरी तोपों के भाग्य मे पराक्रम न लिखा था। अब देवीसिंह और अधिक शक्तिशाली हो गया। जनार्दन को प्रपञ्च रचने के लिये और भी अधिक साधन सुलभ हो जायेंगे और मुझे किसी और भी अधिक सघन जङ्गल की शरण लेनी पड़ेगी। कुमुद का क्या होगा ? संसार की विपत्तियों से उसे कौन बचायेगा ? नरपतिसिह के बाहुओं मे इतना बल नही है। सबदलसिंह का एक तरह आश्रित होकर

रहेगा।' फिर निश्चय के साथ होठों को दबाकर उसने व्यक्त रूप से कहा—'देखूँगा।'

थोड़ी देर में वह मन्दिर के द्वार पर पहुंच गया। वहाँ पहरे पर सिपाही थे। जो आदमी कुञ्जरसिंह ने देवीसिंह के साथ किये थे, वे भी पहरेवाले सिपाहियों के साथ रह गये।

भीतर कुछ बातचीत हो रही थी। कुञ्जरसिंह ने सोचा, यहीं चलकर सुनूँ। पहरे वाले सिपाही से पूछा, 'सबदलसिंह आ गये या नहीं।' मालूम हुआ अभी नहीं आये है। कुञ्जरसिंह और आगे बढ़ा। अभी कुमुद इत्यादि मन्दिर को छोड़कर अपनी खोह में नहीं गई थी, परन्तु आँगन में अन्धकार छाया हुआ था केवल मूर्ति के पास घी का एक छोटा-सा दीपक टिमटिमा रहा था। उसी जगह बातचीत हो रही थी।

कुञ्जरसिह पहले तो ठिठका, फिर सोचा, सबदलसिंह के आने तक बातचीत सुनने के लिये आगे न बढ़ूँ। परन्तु उसने यह विचार शीघ्र बदल दिया। मन में कहा—'देवीसिंह सरीखा आदमी इन लोगों से क्या बातचीत करता है, उसे छिपकर सुनने में कोई दोष नहीं।'

उसके शूर हृदय ने इस तरह के दरिद्र प्रयत्न करने से उसे एक-बार रोका भी, परन्तु अन्त मे उसका पहला निश्चय हीं ऊपर रहा।

जरा आगे बढ़कर एक कौने में छिपे-छिपे कुञ्जरसिंह वहाँ की बात-चीत सुनने लगा।

[८४]

देवीसिंह अपने साथ भेजे गये चारों सिपाहियों को पहरे वालों के पास छोड़कर अपने दोनों सैनिको को लिये हुये, मन्दिर में चला गया। मूर्ति के पास दीपक टिमटिमाता हुआ देखकर आगे बढ़ा। जब निकट पहुंच गया, सबसे पहले नरपतिसिंह मिला। उसने अचकचाकर पूछा—'आप लोग कौन है ?'

देवीसिंह ने उत्तर दिया—'आप लोगों के मित्र।'

देवीसिंह बैठने के लिये उपयुक्त स्थान देखने लगा।

नरपति एक क्षण चुप रहकर जरा जोर से बोला—'आपका नाम ?'

'थोड़ी देर में अपने आप प्रकट हो जायगा।' देवीसिंह ने जरा बेतकल्लुफी के साथ कहा।

इतने में रामदयाल आ गया। पहले उसे सन्देह हुआ, फिर सोचा, असम्भव है। विश्वास को दृढ़ करने के लिये जरा और आगे बढ़ा। पहचानने मे विलम्ब नही हुआ। तुरन्त पीछे हटने की ठानी, परन्तु देवीसिंह ने पहचान लिया। बोले—'रामदयाल।'

'महाराज !' अनायास रामदयाल के मुंह से निकल पड़ा।

देवीसिंह ने कहा—'बड़ा आश्चर्य है। तू यहाँ कैसे आया ? और कौन तेरे साथ है ?' राजा ने बहुत संयत भाव से प्रश्न किया था, परन्तु आत्मा गौरव से प्रेरित प्रश्न का स्वर काफी ऊँचा होकर रहा।

कुमुद रामदयाल के पीछे आकर खड़ी हो गई।

देवीसिंह ने देख लिया, परन्तु पहिचाना नहीं। तो भी रामदयाल के पीछे एक स्त्री की उपस्थिति कई कारणों से असह्य-सी हुई। जरा प्रखर स्वर मे पूछा—'जानता है रामदयाल यह मन्दिर है और मैं—'

'महाराज, महाराज मै निरपराध हूं। मैने क्या किया है ?'

'तूने जो कुछ किया है; उसका भरपूर पुरस्कार मिलेगा। तेरे सरीखे नराधर्म की अपवित्र देह कम से कम इस देवालय में नहीं आनी चाहिये थी।' फिर देवीसिंह ने स्वर की कर्कशता को कम करके पूछा—'मन्दिर की अधिष्ठात्री कहाँ है ?'

रामदयाल सम्भलकर बोला—'जिस मन्दिर की रक्षा के लिये अन्य हिन्दू प्राण हथेली पर रक्खे फिर रहे है, उसी की रक्षा के लिये हम लोग भी यहाँ जमा है।'

'हम लोग।' देवीसिंह आपे से बाहर होकर बोले—'बदमाश ! नीच ! यहाँ से हटना मत।'

'मैं स्वामिभक्त हूं।' भर्राये गले से रामदयाल बोला-'मैं स्वामिधर्मी हूं। मुझे केवल मन्दिर की अधिष्ठात्री की ही रक्षा अभीष्ट नहीं है, किन्तु जिनके एक संकेत मात्र से मैं अपना सिर छूरे पर काटकर फेंक सकता हूं उनकी भी रक्षा वांछनीय है और यही कुछ दिनों से मेरा अपराध आपकी दृष्टि मे रहा है।'

इस समय एक और स्त्री कुमुद के पीछे आकर खड़ी हो गई थी। रामदयाल ने कनखियों से देख लिया था।

राजा ने तलवार पर हाथ रखकर कहा---'इस मन्दिर में कदाचित् नर-बलि कभी नही हुई होगी। आज हो।'

कुमुद रामदयाल के पीछे से जरा आगे आई--मानो घोर तमिस्र से एकाएक पूर्ण चन्द्र का उदय हुआ हो। बोली-'यह मन्दिर है। इसमें न कभी नर-बलि हुई और न होगी।'

तलवार पर से हाथ हटाकर देवीसिंह ने विस्मित होकर प्रश्न किया 'आप कौन हे?'

'और आप?' बड़ी सरलता के साथ कुमुद ने पूछा। परन्तु प्रश्न की नोक देवीसिंह को अपने भीतर धसती-सी जान पड़ी।

प्रश्न का कोई उत्तर न देकर देवीसिंह ने दूसरा प्रश्न किया-'राजा सबदलसिंह का निवास-स्थान क्या यहाँ से दूर है?'

रामदयाल ने उत्तर दिया-'जरा दूर है। मै बुला लाऊँ? जाता हूं।'

'नही कदापि नहीं।' देवीसिंह ने कड़ककर कहा-'यही खड़ा रह।'

रामदयाल हट नही पाया। आधे क्षण उपरान्त देवीसिंह ने उसी वेग से फिर पूछा—'वह स्त्री कहाँ है?'

रामदयाल एक दीर्घ निःश्वास परित्याग कर बोला---'वह बेचारी आफत की मारी, पद-वञ्चित और कहाँ होगी?'

'क्या? कहाँ छिपाया है?'

'यहाँ। और जो कुछ मन मे हो, सो कर डालिये। चूकिये नही।' गोमती ने पीछे से आकर कहा। अञ्चल के सामने के नीचे छोर पर दोनों

हाथ बाँधे गोमती बेधड़क राजा के सामने आकर खड़ी हो गई। देवीसिंह ने गोमती को पहले कभी नहीं देखा था। घटना की आकस्मिकता से वह चकित हो गया। रामदयाल पर आँख अपने आप जा पड़ी। वह शायद पहले से तैयार था। बोला—'महाराज ने शायद न पहचान पाया हो परन्तु मैं विश्वास दिलाता हूं कि बहुत दिन कष्ट में बीते है। महारानी ने कष्ट में जीवन बिताना अच्छा समझा, परन्तु स्वाभिमान के विरुद्ध अपने आप आपके पास जाना उचित नहीं समझा।'

गोमती क्रुद्ध होकर बोली—'रामदयाल तुम मेरे लिये कुछ भी मत कहो। वह धर्म-शास्त्र को बहुत अच्छी तरह जानते हैं। सामन्त-धर्म का वीरों की तरह निर्वाह करते हैं। जो कुछ शेष रह गया हो, उसे भी कर डालने दो। मेरे बीच मे मत पड़ो—'

रामदयाल ने टोककर कहा—'मेरी लाश के विषय मे महाराज गिद्धों और कौवों को वचन दे ही चुके होंगे। इसलिये उस महाप्रसङ्ग के उपस्थित होने के पहले एक आध बात मन की कह डालने में कोई और अधिक सङ्कट खडा नहीं हो सकता। फिर देवीसिह से बोला—'महाराज को याद होगा कि उस दिन अभी बहुत समय नही हुआ, पालर में किसी के हाथ पीले करने के लिये बरात सजाकर लाये थे। लड़ाई हो पड़ी, घायल हो गये, फिर वे हाथ पीले न हो पाये। अब तक वे ज्यों-के-त्यों है और ये है। केवल ऋतुओं ने उन्हें कुछ कृश-भर कर दिया है, परन्तु बदले नहीं है। खैर, अब मुझे मार डालिये।'

देवीसिह का हाथ खड्ग पर नहीं गया। छाती पर हाथ बाँधे हुये बोले—'झूठी बात बनाने मे इस धरती पर तेरी बराबरी का शायद और कोई न मिलेगा। सच-सच बतला, छोटी रानी को कहाँ छिपाया है? मेरे सामने पहेलियों मे बात मत करना, नही तो मैं इस स्थान की भी मर्यादा भूल जाऊँगा।' फिर नरपति की ओर देखते हुये राजा ने कहा—'मैंने आपको अब पहचाना। कुछ समय हुआ, आप मेरे पास गये थे।'

नरपति कुछ देर से कुछ कहने के लिये उतावला-सा हो रहा था। बोला—'बहुत दिनो से आपकी इस थाती को हम लोग टिकाये हुये थे। अब आप स्वयं गोमती को लिवाने आ गये है, लेते जाइये। सयानी लड़की को अपने घर ही पर रहना अच्छा होता है। इस समय जो कुछ थोड़ी-सी कड़ुआहट पैदा हो गई, उसे विचार दीजियेगा।'

'किसे लिवा लेता जाऊँ?' देवीसिंह ने कहा।

'किसे लिवा ले जायेंगे?' गोमती ने तमक कर पूछा। बोली—'क्या मैं कोई ढोर-गाय हूं?'

देवीसिंह ने नरपति से कहा—'मैंने इन्हें आज के पहले कभी नहीं देखा। संभव है, वह पालर की रहने वाली है। आपने मुझसे दलीपनगर में कहा था। परन्तु मैं इस समय इन्हें कहीं भी लिवा ले जाने में असमर्थ हूं, लड़ाई हो रही है। तोपें गोले उगल रही हैं। मार-काट मची हुई है। जब शांति स्थापित हो जाय, तब इस प्रश्न पर विचार हो सकता है। मैं इस समय यह जानना चाहता हूं कि छोटी रानी कहाँ हैं? यहाँ है या नही?'

कुमुद बोली—'इस नाम की यहाँ कोई नहीं है। मैं दूसरा ही प्रश्न करना चाहती हूं। क्या आप समझते है कि स्त्रियों में निजत्व की कोई लाज नही होती?'

देवीसिंह ने नरम स्वर में उत्तर दिया—'आप सब लोग मेरे साथ रक्षा के स्थान में चलना चाहे तो अभी ले चलने को तैयार हूं; परन्तु दूसरे प्रसङ्ग वर्तमान अवस्था के अनुकूल नहीं।'

'मैं नही जाऊँगी।' क्षीण स्वर में गोमती ने कहा। फिर क्षीणोत्तर स्वर मे बोली—'दुर्गा मेरी रक्षा करेंगी।' और तुरन्त धडाम से पृथ्वी पर गिरकर अचेत हो गई। कुमुद उसे सम्भालने के लिये उससे लिपट-सी गईं।

राजा देवीसिंह यथार्थ दशा समझने के लिये उसकी ओर झुके। जरा दूर से ही कुञ्जरसिंह सब सुन रहा था परन्तु इस समय दीपक के

टिमटिमाते प्रकाश में उसे वास्तविक वस्तु-परिचय न हुआ। इतना जरूर भान हुआ कि देवीसिंह किसी भीषण दुर्घटना के जिम्मेदार हो रहे है।

इतने में रामदयाल चिल्लाया—'सर्वनाश होता है।'

कुञ्जरसिंह ने तलवार खींच ली। जोर से बोला–'न होने पायेगा।' और लपककर देवीसिंह के पास जा पहुंचा।

देवीसिंह ने भी तलवार खीच ली। उनके साथियों के भी खड्ग बाहर निकल आये। पहरेवालों ने भी समझा कि गोलमाल है। वे हथियार लेकर भीतर घुस आये।

कुञ्जर से देवीसिंह बोला—'दुष्ट, छली, सम्भल।'

कुमुद गोमती को छोड़कर खड़ी हो गई। परन्तु विचलित नही हुई। कोमल, किन्तु दृढ़ स्वर में बोली—'देवी के मन्दिर में रक्त न बहाया जाय।'

देवीसिंह रुका। कुञ्जर ने भी वार नही किया।

कुमुद ने फिर कहा—'राजा, आपको यह शोभा नही देता।'

'मेरा इसमें कोई अपराध नही।' देवीसिंह बोला–'यह मनुष्य नाहक बीच में आ कूदा।'

'देवीसिंह।' कुञ्जर ने दाँत पीसकर कहा—'ना मालूम यहाँ ऐसी कौन सी शक्ति है, जो मुझे अपनी तलवार तुम्हारी छाती मे ठूँसने से रोक रही है। तुम तुरन्त यहाँ से चले जाओ। बाहर जाओ।'

'जाइये।' कुमुद भी बिना किसी क्षोभ के बोली।

देवीसिंह की आँखों में खून सा आ गया। तो भी स्वर को यथा-सम्भव संयत करके बोले—'कुञ्जरसिंह, मैं आज ही तुम्हारा सिर धड़ से अलग करना चाहता था। परन्तु यहाँ न कर सका, इसका उस समय तक खेद रहेगा, जब तक तुम्हारा सिर धड़ पर मौजूद है।'

कुञ्जर ने कहा—'गलियों के भिखारी, छल प्रपञ्च करके मेरे पिता के सिंहासन पर जा बैठा है, इसलिये ऐसी बातें मार रहा है।

मन्दिर के वाहर चल और देख ले कि पृथ्वी माता को किसका प्राण भार-समान हो रहा है।'

देवीसिंह गरजकर बोले--'वाहर, दासी-पुत्र चल वाहर। महाराज नायकसिंह के सिंहासन पर शुद्ध बुन्देला ही बैठ सकता है, बांदियों के जाये उसे छू भी नही सकते।'

कुमुद ने कहा--'यहाँ अव और अधिक वातचीत न करिये, अन्यथा देवी के प्रकोप से आपको वहुत हानि होगी।'

इस निवारण पर भी दोनों दल वहां से नहीं हटे। पैंतरे वदल गये और वहां केवल एक क्षण इसलिये गुजरा कि कौन किस पर किस तरह का वार करे कि नरपतिसिंह ने उस छोटे से रणक्षेत्र में वड़ा भारी गोलमाल उपस्थित कर दिया। वह मन्दिर में किसी तरह लड़ाई बन्द कर देना चाहता था परन्तु उसके ध्यान में उस क्षण केवल एक उपाय आया। उसने चुपचाप मुंह की फूंक से दीपक वुझा दिया। प्रकाश के यकायक तिरोहित हो जाने से मन्दिर के भीतर का पूर्व-वंचित अन्धकार और भी अधिक काला मालूम होने लगा।

कुमुद ने अपने सहज कोमल स्वर से जरा वाहर कहा--'कुमार अपनी रक्षा करो।'

वहाँ कुञ्जर को या किसी को इस प्रकार के किसी भी संकेत की जरूरत न थी। जो मारने के लिये उतारू होता है, वह प्रायः मरने के लिए भी तैयार रहता है। परन्तु ऐसे मनुष्य वहुत थोड़े हैं जिन्हें वार कर पाने का रत्ती भर भी भरोसा न हो और मारे जाने का सोलहों आने सन्देह जान पड़े। इसलिये वे सव अपने वचाव के लिए तलवार भांजते हुये मन्दिर के निकास द्वार के लिये अग्रसर हुये। इतनी हड़वड़ी मची कि अपनी ही ठोकर और अपनी ही तलवार से कई लोग थोड़े-थोड़े से घायल हो गये। किसी-किसी को दूसरे के भी हथियार के छोले लग गये, परन्तु गम्भीर घाव किसी के नही लगा।

मन्दिर के बाहर एक चट्टान के पास देवीसिंह ने खड़े होकर पुकारा-'मेरे सिपाही !'

उत्तर देकर एक-एक करके देवीसिंह के सैनिक उसकी आवाज़ पर आ गये ।

कुन्जरसिंह मन्दिर के बाहर जरा पीछे आ पाया था । पहरा ठीक करके वह आगे बढ़ा । उसके साथ सिपाही भी थे । थोड़ी दूर से देवीसिंह की आवाज सुनकर कुन्जर ने तैश में आकर कहा-'मारो जाने न पावे ।'

उसके साथ सिपाही भी चिल्लाए—'मारो ।'

उस अन्धेरे मे तारों के प्रकाश में मार्ग टटोलता हुआ देवीसिंह पत्थरों और पठरानियों की ऊबड़ खाबड़ भूमि लाँघता हुआ नदी की ओर उतर गया । वेतवा की लम्बी-चौड़ी धार अन्धेरे में बहुत स्पष्ट दिखलाई पड़ती थी ।

कुञ्जरसिंह के सिपाहियो ने दूर तक पीछा नहीं किया । परन्तु उसके तोपची ने रामनगर की ओर तोप दाग दी । प्रखर प्रकाश और प्रखरतर शब्द हुआ । उस प्रकाश में देवीसिंह को अपनी बँधी हुई नाव और उस पर बैठे हुये सैनिक स्पष्ट दिखलाई पड़ गये । वह अपने दोनों साथियों को लिये हुये नाव की ओर बढ़ा ।

थोड़ी देर में सबदलसिंह मन्दिर के पास आया । चिल्लाकर बोला-'कुञ्जरसिंह, यह क्या है, कहाँ हों ?'

चिल्लाहट के पैने किन्तु बारीक स्वर में किसी ने मन्दिर से कहा—'शत्रुओ को निवारण कर रहे है ।'

यह स्वर कुमुद का था । सबदलसिंह पहचान नही पाया, परन्तु समझ गया कि दो में किसी स्त्री का स्वर है और अवस्था सङ्कटमय है । तोपों की ओर जल्दी जल्दी डग बढ़ाकर उसने फिर कुञ्जरसिंह को पुकारा ।

कुञ्जरसिंह ने उत्तर दिया और साथ ही सिपाहियों को जोर से आज्ञा दी—'बचने न पावे। नाव लेकर दूर नहीं गया होगा।'

इस समय देवीसिंह नाव पर पहुंच गये थे। बेतवा से पूर्वीय किनारे की ओर नाव खेते हुये उसी किनारे-किनारे वह रामनगर की ओर चले गये।

कुञ्जरसिंह के पास पहुचकर सबदलसिंह ने पूछा—'क्या था कुमार? क्या राजा देवीसिंह आये थे?'

कुञ्जरसिंह उत्तर नहीं दे पाया। उसके उसी सैनिक ने, जिसने देवीसिंह पर विराटा-गढ़ी के पास आने के समय ही सन्देह किया था, कहा—'देवीसिंह कैसे हो सकते थे? मुसलमान लोग हिन्दुस्तानी वेश रखकर घुस आये थे। मैंने उसी समय कह दिया था, परन्तु कुँवर को विश्वास था कि दलीपनगर के राजा ही है। इनके साथ कुछ बातचीत भी हो पडी थी। न-मालूम क्यों उसी समय काटकर नहीं डाल दिया?'

'मुसलमान थे।' सबदलसिंह ने आश्चर्य से कहा—'पठारी का पहरा कमजोर हो गया था?'

'न।' वह सिपाही तुरन्त बोला—'कुँवर तलवार खींचकर तुरन्त दौड़ पडे थे और हम लोग तैयार थे, परन्तु उसके वेश और देवीसिंह की नकल के धोखे में आ गये।'

उस सिपाही को अपने मन में इस अन्वेषण पर बड़ा हर्ष हो रहा था।

'क्या बात थी?' सबदलसिंह ने कुन्जर से पूछा-'आप चुप क्यों हैं?'

कुञ्जरसिंह ने उत्तर दिया—'यह सिपाही ठीक कह रहा है। हम लोग धोखे मे आ गये थे।'

'तब रामनगर—पतन की बात निरी गप थी?' सबदलसिंह ने रामनगर गढ़ी की ओर देखते हुये प्रश्न किया—'न मालूम कब विपद् से छुटकरा मिलेगा?'

कुञ्जरसिंह ने वेतवा की दूर बहती हुई धार की ओर देखते हुये उत्तर दिया—'अभी तक हम थोड़े से आदमियों ने जैसी और जिस तरह से लड़ाई लड़ी है, वह आपसे छिपी नहीं है। अव और घोर-घोरत्तर युद्ध होगा, आप विश्वास रक्खें। हमारे गोलन्दाज आज रात में रामनगर को चकनाचूर कर डालेंगे।'

सबदलसिंह क्षमा-प्रार्थना के स्वर में बोला—'आपके कौशल से ही अब तक हम इने-गिने मनुष्य अपने पैरों पर खड़े हुये हैं।' और प्रश्न किया—'बात क्या थी।'

कुञ्जरसिंह ने बात बनाने का निश्चय कर लिया था। कहा—'शायद कोई देवीसिंह का रूप धर कर आया था। मन्दिर मे गया। मैं भी पीछे-पीछे गया। अपने चार सैनिक उसके साथ भेज दिये गये। वहाँ देखा, वह स्त्रियों से कह रहा है कि हमारे साथ चलो नाव तैयार है। गोमती से उसने कुछ कहा-सुनी की। वह अचेत होकर गिर पड़ी। मैंने गड़बड़ समझकर तलवार खींची, इतने में हवा से दीपक बुझ गया। इस कारण, वह; जो वास्तव में देवीसिंह-सा मालूम होता था, अपने साथियों को लेकर खिसक गया। मैंने पीछा किया, परन्तु हाथ न आया।'

सबदलसिंह का इतने से कदाचित् समाधान हो गया। वह अपने स्थान की ओर चला गया।

थोड़ी देर में रामदयाल कुञ्जरसिंह के पास आया। हाथ जोड़कर बोला—'क्या मेरा अपराध क्षमा किया जायगा?'

कुञ्जर ने थोडी देर पहले रामदयाल को शत्रु रूप में देखा था। उसके जी में रामदयाल के लिये इस समय बहुत घृणा न थी। उसने उत्तर दिया—'और बातें पीछे देखी जायेंगी। हम इस समय यह चाहते है कि देवीसिंह के इस तरह यहाँ घुस आने का समाचार इधर-उधर न फैलने पावे।'

रामदयाल ने इस प्रस्ताव को समझ लिया। कहा—'उसमें मेरा लाभ ही क्या है? उलटे मुसीबत में पड़ने का डर है।'

'मन्दिर में कुशल है ?' कुन्जर ने पूछा।

'मेरे इस समय यहाँ आने का कारण वही की बात है।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'गोमती की हालत खराब मालूम होती है। आप एक क्षण के लिये चलिये।'

गोलन्दाजों को रामनगर पर अनवरत गोले बरसाने का हुक्म देकर कुञ्जर रामदयाल के साथ चला गया।

[८५]

कुञ्जर के मन्दिर मे पहुंचने के पहले नरपति ने फिर दीपक जला दिया था। जब कुञ्जर भीतर पहुचा, वह पूर्ववत टिमटिमा रहा था। नरपति ने बड़े भोलेपन के साथ कहा—'कभी-कभी ऐसी हवा चल उठती है कि दीपक अपने आप बुझ जाता है। उस समय जब तलवारें खिच गई थीं और पैंतरे बदल गये थे; ऐसा कुसमय प्रकाश लोप हो गया कि आप उन लोगों को काटकूट न पाये।'

नरपति कुछ और भी पवन की इन आकस्मिक निष्ठुरताओं पर कहता, परन्तु कुञ्जर का ध्यान दूसरी ओर था। इसके सिवा उसे एक औषधि के लिये रामदयाल के साथ खोह में जाना था, जहाँ वह उसके साथ कुञ्जर के आने पर चला गया।

कुमुद गोमती का सिर अपनी गोद में रक्खे टकटकी बाँधे कुन्जर की ओर देख रही थी—मानो समय से उसकी प्रतीक्षा कर रही हो।

कुन्जर ने बड़े उत्साह बड़ी उत्कण्ठा के साथ कुमुद से पूछा—'अवस्था बहुत बुरी तो नही है ?'

दया के कोमलता-पूर्ण कण्ठ से कुमुद बोली—'बहुत बुरी तो नहीं जान पड़ती, परन्तु कुछ असमर्थ-सा समझकर कुन्जर ने पूछा—'मुझसे जिस उपचार के लिये कहा जाय, तुरन्त करने को प्रस्तुत हूं।'

कुमुद जरा मुस्कराकर बोली—'आपकी तलवार की कदाचित् आवश्यकता पड़ेगी। उपचार तो मैं कर लूंगी।'

जरा आश्चर्य के साथ, परन्तु बहुत संयत स्वर में कुन्जर ने कहा—'आज्ञा हो।'

कुमुद के मुख पर एक हलकी लालिमा दौड़ आई। गोमती की ओर आँख फेरकर बोली—'यह दुःखिनी है और कोमल। हम लोगों का कुछ ठीक नही, यहाँ क्या हो। शीघ्र अच्छी हो जायगी। परन्तु अच्छे होते ही इसे किसी सुरक्षित स्थान मे विराटा से बाहर पहुंचा देना चाहिये।'

'पहुचा दिया जायगा।' कुन्जर ने उत्तर दिया।

'कब ?' कुमुद ने फिर उसी मुस्कराहट के साथ पूछा। 'एक-आध दिन में, जब वह अच्छी हो जायें।'

'साथ किसे भेजा जाय ?' कुन्जर ने बढ़ती हुई उत्कण्ठा के साथ कहा।

कुमुद ने उत्तर दिया—'रामदयाल के सिवा और यहाँ कोई ऐसा नही दिखलाई पडता, जिसका नाम ले सकूँ।'

'रामदयाल !' कुन्जर अपनी उठती हुई अस्वीकृति को दबाकर बोला—'देखा जायगा। यह अच्छी हो ले।'

अपनी बड़ी-बड़ी आँखें पसार कर कुमुद बोली—'रणक्षेत्र में होकर सुरक्षित स्थान मे इसे पहुचाना पड़ेगा। आप अपने कुछ सैनिक इसके साथ भेज दीजियेगा।'

'मैं स्वयं जाऊँगा।' कुन्जर ने कहा।

कुमुद गोमती को होश में लाने के लिये दुलार के साथ उपाय करने लगी।

गोमती की आँखे बन्द थीं, उसी दशा मे बोली—'यह मेरे कोई नहीं है।'

बड़े मीठे स्वर मे कुमुद ने कहा—'गोमती।'

वह अचेत थी।

कुन्जर ने प्रश्न किया—'इसे कहीं चोट तो नही आई है ?'

कुमुद ने उत्तर दिया—'ऊपर तो कहीं नही आई है, परन्तु इसके हृदय को जान पड़ता है, कठोर पीड़ा पहुची है।'

कुन्जर बोला—'वह मनुष्य नृशंस है।'

कुमुद ने फिर आँख ऊपर उठाई। उस दृष्टि में बड़ी अनुकम्पा थी कहा—'उस चर्चा को जाने दीजिये। भावी प्रबल होती है। जो होना होता है, बिना हुये नहीं रहता। इस लडकी को बाहर पहुंचाकर फिर हम लोग और बातें सोचेंगे। मैं जानती हूं उस मनुष्य ने केवल गोमती को ही सङ्कट में नहीं डाला है।'

'मैं क्या कहूं।' कुन्जर कम्पित स्वर में बोला—'मेरा इतिहास व्यथा-पूर्ण है, मेरे साथ बड़ा अन्याय हुआ है।' फिर तुरन्त उसने कहा-'परन्तु—परन्तु आपका शुभ दर्शन–मात्र मेरी उस सम्पूर्ण कहानी में एक बड़ी भारी मार्ग-प्रदर्शक ज्योति है। वह समय मेरी अन्धेरी रात के अवसान की ऊषा है। केवल उसी प्रकाश के सहारे मैं संसार में चलता फिरता हूं।'

कुन्जर कुछ और कहता, परन्तु कुमुद ने रोककर पूछा—'वह यहाँ तक कैसे आये ? चारों ओर मुसलमानों और उनके सहायकों की सेनायें रुकी हुई है।'

कुमुद के साथ छल नही कर सकता था। एक बहुत बारीक आह को दबाकर उसने उत्तर दिया–'रामनगर पर उसका अधिकार हो गया है। कम से कम वह कहता यही था इसलिये शायद यहां तक चला आया।'

कुमुद ने कहा–'आपकी तोपें किस ओर गोले फेंक रही है ?'

'रामनगर पर।' कुन्जर का सहज उत्तर था।

कुमुद ने अपने आँचल से गोमती पर हवा करते हुये कहा–'मैं भी यही सोच रही थी।'

'क्यों ?' कुन्जर ने जरा डरते हुये प्रश्न किया।

कुमुद बोली–'आपको कभी न कभी देवीसिंह से लड़ना ही पडेगा आज या फिर कभी, परन्तु अवस्था कुछ भयानक हो जायगी।'

'मैने एक उपाय सोचा है।' कुन्जरसिंह ने कहा–'मुझे एक चिन्ता सदा लगी रहती है।'

आँखें नीचे किये हुये कुमुद ने पूछा—'क्या ?'

'यह नीचे खोह सुरक्षित नही है। किसी दूसरे स्थान में आपको पहुंचाकर फिर निश्चिन्तता के साथ यहाँ लड़ता रहूंगा।'

'मैं नही जाऊँगी।' कुमुद ने धीरे से कहा।

'मै नहीं जाऊँगी।' क्षीण स्वर में अचेत गोमती बोली।

कुमुद चौंक पड़ी। गोमती अचेत थी।

कुञ्जर ने कहा—'यह स्थान अव आपके रहने योग्य नहीं रहेगा। वड़ा घमासान युद्ध होगा। मैं गोमती को रामदयाल के साथ किसी अच्छे स्थान में छोड़ दूँगा और आपको भी किसी सुरक्षित स्थान में।'

कुमुद बोली—'आपके लिये यदि यह स्थान सुरक्षित है, तो मेरे लिये भी।' फिर मुस्कराकर कहा—'मुझे आपकी तोपों का विश्वास है।'

कुञ्जर की देह भर में रोमांच हो आया उसे ऐसा जान पड़ा, मानो आकाश के नक्षत्र तोड़ लाने की सामर्थ्य रखता हो। कुछ कहना चाहता था। अवाक् रह गया। उसी समय नरपति और रामदयाल के आने की आहट मालूम हुई।

कुमुद ने जल्दी से कहा—'यदि रामदयाल अविश्वासनीय हो तो उसके सहारे गोमती को नहीं छोड़ना चाहिये।'

रामदयाल सबसे पहले आया। आतुरता के साथ बोला—'इस बीच में अवस्था तो नही बिगड़ी।'

कुन्जर ने उत्तर दिया—'नहीं।'

औषधोपचार के बाद गोमती को चेत आने लगा। अर्द्ध-चेतनावस्था में बोली—'वह कहाँ है ?'

कुमुद ने अपने वड़े-वड़े स्नेह-पूर्ण नेत्रों से मानो उसे ढक दिया। उसके मुंह के वहुत पास अपनी आँखें ले जाकर कहा—'घबराओ मत, दुखी मत होओ।'

जब गोमती को बिलकुल चेत आ गया, वह अपने सिर को कुमुद की गोद से उठाने लगी। कुमुद ने रोक लिया। बोली, 'लेटी रहो।'

कुन्जर ने कहा—'रात बहुत हो गई है। अब आप लोग अपनी खोह में चले जायें।'

रामदयाल बोला—'अभी वह चलने-फिरने लायक नहीं जान पड़ती।'

'थोड़ी देर में सही।' कुन्जर ने कहा—'परन्तु रात को रहना वहीं चाहिये। आज की रात बहुत गोला-बारी होगी।'

'हम लोग जाते है।' कुमुद ने कहा—'आज रात में खोह पर कुशल-क्षेम पूछने के लिये न आना।'

कुमुद इत्यादि वहाँ से चली गईं।

उस रात कुन्जरसिंह कदाचित् इच्छा होने पर भी खोह के पास न जा सका। रात-भर बेतरह रामनगर पर गोले ढाये। उधर से भी जवाब में कुछ गोलाबारी हुई, परन्तु विराटा की कोई हानि नहीं हुई। रामनगर पर अलीमर्दान की भी तोपें गोला उगलती रहीं। परन्तु एक बात का आश्चर्य कुन्जरसिंह को हो रहा था। अलीमर्दान की ओर से विराटा पर एक तोप ने भी वार नहीं किया। कुन्जर ने भी शायद यह समझकर कि पहले एक शत्रु को समझ लें, फिर दूसरे को देख लेंगे, अलीमर्दान को नहीं छेड़ा।

उस रात कुन्जरसिंह के कान मे कुमुद के अन्तिम वाक्य ने कई झंकार की—उसने कहा था—'आप रात में खोह पर कुशल-क्षेम पूछने न आना।'

[८६]

सवेरे सबदलसिंह कुन्जर के पास आया। उदास था। बिना किसी भूमिका के बोला—'रामनगर पर देवीसिंह का अधिकार हो गया है। आपने रामनगर पर गोले क्यों बरसाये ?'

कुन्जरसिंह ने उत्तर दिया—'पहले मेरे मन में भी कुछ ऐसी तरह

की कल्पना जगी थी, परन्तु पीछे विश्वास हो गया कि रामनगर पर अभी देवीसिंह का दखल नहीं हुआ है।'

'परन्तु नरपतिसिंह दूसरी ही बात कहते हैं।'

'वह धोखे में आ गये हैं।'

'और गोमती?'

'वह भी; और रामदयाल भी। वह छद्मवेश में था।'

'रामदयाल कहता था कि धोखा-सा। मान लीजिये, देवीसिंह नहीं थे, तो वह इस तरह क्यों और कैसे आये?'

'कैसे आये वे लोग, सो तो आपको मालूम ही हो चुका है; परन्तु मुझे उस व्यक्ति के देवीसिंह होने में बिलकुल सन्देह है।'

'यदि वह देवीसिंह थे तो बहुत करके गोमती के लिये आये होंगे। मैं नरपति से सब हाल सुन चुका हूं। केवल इतनी बात प्रकट करने के लिये आने की अटक न थी कि रामनगर उनके हाथ में आ गया है। इस समाचार को तो वह किसी के भी द्वारा कहला सकते थे। रामदयाल उनकी सेवा में रहा है, नरपति विश्वास दिलाते है। परन्तु यह सब फिर क्या और क्यों हो पड़ा, कुछ समझ में नहीं आता। नरपति त्यगी-विरागी पुरुष है। उनके दिमाग में सांसारिक बातों को यथावत स्थान नहीं मिलता। कुमुद कहती है कि धोखा-सा हो गया है। शायद ऐसा ही है।'

'मै आपको विश्वास दिलाता हूं।'

'खैर, दो एक दिन में मालूम हो जायगा, परन्तु यदि वास्तव में रामनगर देवीसिंह के अधिकार में है, तो उस ओर गोला-बारी करना आत्मघात के समान होगा।'

'और यदि रामनगर अलीमर्दान या रानियो के हाथ में है, तो उस गढ़ पर गोले न चलाना आत्मघात से भी बुरा सिद्ध होगा।'

सबदल किंकर्त्तव्य-विमूढ़ था। कुछ क्षण पश्चात् बोला—'यदि देवीसिंह का हमसे कुछ अपराध भी हो जायगा तो हम क्षमा माँग

लेंगे।' निस्सहायों की-सी आकृति बनाकर उसने कहा—'इस समय हम किसी को बाहर भेज कर इस बात का ठीक-ठीक अनुसंधान भी नहीं कर सकते।'

कुञ्जर ने अपनी बात की पुष्टि का प्रण कर लिया था। बोला—'यदि आपकी इच्छा हो, तो मैं तोपों का मुँह मुरका दूं?'

सबदल तोपों का कुल भार कुञ्जर को सौंप चुका था। वह सहमत न हुआ। कहा—'तोपों के संचालन का सम्पूर्ण कार्य आपके हाथ मे है। मैं हस्तक्षेप नहीं करना चाहता। असली बात एक आध दिन में ही मालूम हो जायगी। यदि वास्तव में रामनगर देवीसिंह के अधीन हो गया है तो, कुछ-न-कुछ समाचार किसी-न-किसी प्रकार हमारे पास बिना आये न रहेगा, तब तक आपको जैसा उचित जान पड़े करिये।'

सबदलसिंह चला गया। दो-एक दिन में क्या होगा, इसे वह या कोई भी उस समय नहीं जान सकता था।

आँख से ओझल होते हुये सबदल को कुञ्जर ने देखा। सरल दृढ़ व्यक्ति। कुञ्जर को झूठ बोलने के कारण अपने ऊपर बड़ी ग्लानि हुई। तुरन्त ही उसने मन मे कहा—'इसने जितना विश्वास मेरा कर रक्खा है, उससे कहीं अधिक मूल्य इसे दूंगा। इस गढ़ी की रक्षा में अन्तिम श्वाँस की होड़ लगाऊँगा। इसे भ्रम में डालने के सिवा मुझे कोई और उपाय न सूझा। क्या करूँ, देवीसिंह ने झूठ बोलने के लिये विवश किया।'

[६६]

दूसरे दिन रामदयाल गोमती के लिये उपयुक्त स्थान की खोज में सन्ध्या के उपरान्त विराटा से चल पड़ा। कहना न होगा कि वह इधर-उधर बहुत न भटककर और चक्कर काटकर अलीमर्दान की छावनी में

उसने रामदयाल को पहिचान लिया। बोला–'तुम्हारी रानी साहब तो बहुत पहले आ गई है। तुम कहाँ थे ?'

रामदयाल ने उत्तर दिया–'मैं हुजूर का कुछ काम कर रहा था।'

'वह क्या ?'

'विराटा से रामनगर पर गोले पड़ रहे है।'

रामनगर के नाम पर अलीमर्दान की जरा त्योरी बदली।

रामदयाल उसके भाव को समझ गया। बोला–'जहाँ तक मैंने सुना है, इस समय आपका अधिकार रामनगर पर नहीं है।'

अलीमर्दान बोला–'रनिवास में रहकर भी तुम्हें बात करने की तमीज न आई।'

'मैं माफ किया जाऊँ।' रामदयाल ने क्षमा-प्रार्थना का कोई भी भाव प्रदर्शित न करते हुये कहा-'यदि अबभी रामनगर आपके हाथ में है, तो मैने रामनगर पर विराटा से गोले बरसाने मे गलती की है।'

इस पर अलीमर्दान जरा मुस्कराया। बोला—'रामनगर पर इस समय मेरा कब्जा नहीं है, परन्तु भरोसा है कि जल्दी होगा। यह सचमुच समझ में नही आ रहा है कि तुमने विराटा को रामनगर के खिलाफ किस उपाय से किया। इस रात हमारी छावनी की तरफ एक भी गोला नही आया, यह अचरज की बात है।'

'वह एक लम्बी कहानी है।' रामदयाल ने कहा—'परन्तु विराटा इस समय कुन्जरसिह के हाथ में है और उसे मालूम हो गया है कि उसका विकट वैरी देवीसिंह रामनगर में जा पहुंचा है। कुन्जरसिह इस समय इस ढर्रे पर काम कर रहा है कि पहले देवीसिंह को मिटाऊँ, फिर आप पर वार करूँ।'

अलीमर्दान हँसा। बोला—'इतनी बड़ी अकल की बात क्या तुमने कुन्जरसिंह को सुझाई है ?' फिर गम्भीर होकर उसने कहा–'कुन्जरसिंह हमसे नाहक बुरा मान गया। असल मे तुम लोगों ने सिंहगढ़ में उसे हाथ से निकल जाने दिया। वह आदमी साथ मे रखने लायक था।'

फिर सोचकर बोला–'उसमें बेहद हेकड़ी है। यह भी एक कारण उसके भाग-खड़े होने का हुआ।'

रामदयाल ने इस बात को अनसुनी करके कहा—'अब उस सुन्दरी के प्राप्त होने मे भी बहुत विलम्ब नही है।'

अलीमर्दान बहुत गम्भीर हो गया। बोला—'तुम उस विषय में मेरी सहायता कर सको, तो जैसा मैं कह चुका हूं, तुम्हें भारी इनाम दूंगा।'

'अब उसका समय आ गया है।' रामदयाल ने भी गम्भीर होकर कहा-'विराटा पर धावा बोले दीजिये। देवीसिंह कोई सहायता विराटा को न दे सकेगा। सीधा मार्ग मैं बतला दूंगा।'

अलीमर्दान मन-ही-मन प्रसन्न हुआ परन्तु विना कोई भाव प्रकट किये बोला—'आज ही रात को अजमाओ।'

'आज रात को नहीं।' रामदयाल ने प्रस्ताव किया–'एक आध रोज ठेहर जाइये। विराटा में निस्सीम गोला-बारूद या मनुष्य नही हैं। कुन्जरसिंह को जरा थक जाने दीजिये।' फिर नीची आँख करके बोला- 'एक जरा-सा काम मेरा है। पहले वह हो जाने दीजिये।'

आँख चमकाकर अलीमर्दान ने कहा—'क्या माजरा है भाई ?'

बड़ी नम्रता और लज्जा का नाट्य करते हुये रामदयाल बोला— 'मैंने भी सोचा है, अब अपना घर बसा लूं। हमारी महारानी आपकी दया से दलीपनगर का राज्य पा जायें और मैं अपनी एक मड़ैया डालकर घर की देख-भाल करूँ, बस, यही प्रार्थना है।'

अलीमर्दान ने हँसकर कहा—'इसमे मेरी सहायता की किस जगह जरूरत पड़ेगी ?'

'उस स्त्री को।' रामदयाल ने उत्तर दिया—यथासम्भव मैं कल विराटा से लिवा लाऊँगा। मैं चाहता हूं, यही कही सुरक्षित स्थान में उसे रख दूं। न मालूम विराटा में कब कितना उपद्रव उठ खड़ा हो।

ऐसी हालत में उसका वहाँ रखना ठीक नहीं है। यहाँ थोड़ा-सा सुरक्षित स्थान मिल जायगा ?'

'वहुत-सा।' अलीमर्दान बोला—'तुम्हारी महारानी यहीं पर है। उनके पास उस स्त्री को छोड देना हर तरह उचित होगा।'

रामदयाल सोचने लगा।

इतने में अलीमर्दान का एक सरदार आया। उसने रामदयाल को पहचान लिया। बोला—'हुजूर रानी साहब के सिर के लिये दो हजार मुहरें इनाम के तौर पर राजा देवीसिंह ने रक्खी है।'

अलीमर्दान ने पूछा -'रानी साहब को मालूम है या नहीं।'

उसने जवाव दिया—'अभी सबेरे उनके किसी सेवक ने ही वतलाया था.।'

'मुझे मालूम था।' अलीमर्दान ने कहा—'और उसके साथ यह भी मालूम हो गया था कि दीवान जनार्दन शर्मा ने भी अपनी तरफ से दो सौ मुहरें उसी सिर के लिये इनाम मे और रक्खी है।'

रामदयाल चकित होकर बोला—'क्या ये लोग पागल हो गये है ?'

अलीमर्दान ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। सरदार से कहा—'इस समय विराटा पर गोलावारी न की जाय। आज दिन भर और रात भर बरावर रामनगर पर ही गोला बरसाओ और लगातार दलीपनगर की सेना पर हमले करो। इसी समय महारानी के पास जाओ। कहना, थोड़ी देर में हाजिर होता हूं। रामदयाल को भी साथ लेते जाओ।'

वे दोनों गये।

[८८]

सरदार और रामदयाल छोटी रानी के डेरे पर पहुंचे। क़ालपी की सेना की छावनी के एक सुरक्षित कोने में एक छोटा-सा तम्बू खड़ा था। उसी मे छोटी रानी अपने कुछ आदमियों के साथ थी। भाग कर जब

रामनगर में रानी आई थीं तब से अब उनके गौरव में और भी बड़ी कमी हो गई थी।

रामदयाल तम्बू के भीतर चला गया। सरदार बाहर रह गया। भीतर की हीनता रामदयाल को और भी अधिक अवगत हुई। रानी के चेहरे पर अब सहज दृढ़ता और सुलभ कोप के सिवा स्थायी निराशा के भी चिन्ह अङ्कित थे। उसको देखकर रानी ने कहा—'इन दिनों कहाँ छिपा था ? क्या मेरा सिर काटने के लिये आया है ?'

रामदयाल ने कुछ डरते हुये हाथ जोड़कर उत्तर दिया—'मैं विराटा में जासूसी के काम पर नियुक्त था।'

'वहाँ क्या जासूसी की ?'

'देवीसिंह का सेवक बनकर कुछ समय तक रहा। कुञ्जरसिंह ने कल पहचान लिया। लगभग उसी समय देवीसिंह भी वहाँ आ गये। उन्होंने भी पहचान लिया। दोनों को लड़ा-भिड़ाकर यहाँ चला आया हूं। देवीसिंह रामनगर चले गये हैं और अब कुञ्जरसिंह रामनगर पर गोले बरसा रहे हैं।'

रानी जरा चिड़चिड़ाकर बोली—'जब कालपी की इतनी बड़ी सेना ने रामनगर को न ले पाया तब विराटा की तोपें क्या कर पायेंगीं ?'

रामदयाल ने तुरन्त उत्तर दिया—'विराटा की तोपो का संचालन कुञ्जरसिंह ऐसा अच्छा कर रहे हैं कि रामनगर मे देवीसिंह को रहना कठिन हो जायगा।'

अपनी दशा की याद करके रानी ने कहा—'अब और किसी के हाथ से कुछ होता नही दिखाई देता। परन्तु यदि दिलेर आदमियों की एक छोटी-सी सेना मुझे मिल जाय, तो मैं करके दिखला दूं। क्या कुञ्जरसिंह अपना पुराना पागलपन छोड़कर हमारा साथ देने को तैयार हो जायगा ?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'कुञ्जरसिंह का पागलपन अब और बढ़ गया है। जिसे विराटा में देवी का अवतार या देवी की पुजारिन

बतलाया जाता है, वह उनके कुल कर्त्तव्य का लक्ष्य है। उनके किये जो कुछ हो, सो हो। नवाब की एक बड़ी सेना शीघ्र ही यहाँ आने वाली है।'

धीरे स्वर में छोटी रानी बोली—'अब वही एक आधार है। मुझे चाहे राज्य न मिले, कुञ्जरसिंह राजा हो जाय या कोई और परन्तु देवीसिंह और पिशाच जनार्दन धूल में मिल जाये। रामदयाल मेरा प्रण न पूरा हो पाया! यदि मेरे मरने के पहले कम-से-कम जनार्दन का सिर काट लाता, तो मुँह माँगा इनाम देती, परन्तु तेरे किये कुछ न हुआ।'

रामदयाल ने उत्साहित होकर कहा—'नहीं महारानी जनार्दन का सिर अवश्य किसी दिन काटकर आपके सामने पेश करूँगा।'

रानी एक ओर टकटकी बाँधकर कुछ सोचने लगी।

रामदयाल बोला-'आप बिलकुल अकेली है, मुझे इधर-उधर भटकना पड़ेगा। आज्ञा हो, तो एक लड़की आपके पास कर जाऊँ।'

रानी ने चौंककर कहा—'लड़की तेरी कौन है?'

चालाक रामदयाल भी अपने चेहरे के रङ्ग को फक होने से न रोक सका। बोला—'वैसे-तो मेरी कोई नहीं है, परन्तु कुछ दिनों से जानने लगा हूं इसलिये चाहता हूं, कि आपके पास रह जाय। जब देवीसिंह ने दलीपनगर के सिंहासन की ओर आँख नहीं डाली थी, उसके साथ विवाह करना चाहते थे। जब वह सिंहासन खसोट लिया, तब इस बेचारी का त्याग कर दिया। दुःखिनी है और देवीसिंह से नाराज है।'

रानी ने नाम इत्यादि और थोड़ी-सी ऊपरी पूछताछ के बाद राम-दयाल को गोमती के लिवा लाने की अनुमति दे दी। कहा-'उसे वास्तव में देवीसिंह ने परित्याग कर दिया?'

'हाँ, महाराज।'

'परन्तु मेरे पास रहने में उसे और भी अधिक कष्ट होगा। शायद किसी समय उसके प्राणो पर भी आ बने।'

'मैं भी तो आपकी सेवा में रहूंगा।'

'और तुम्हारा प्रण।'

'सदा सेवा में न रहूंगा—प्रायः रहा करूँगा।'

रानी बोली—'तुम उसे लिवा लाओ, परन्तु दूसरे डेरे मे रहेगी और उसकी चौकसी भी रक्खी जायगी। किसी दिन शायद देवीसिंह उसे अपनाने के लिये तैयार हो जाय शायद किसी दिन वही देवीसिंह के पास दौड़ जाय और हम लोगों को यों ही किसी आकस्मिक विपद् में डाल जाय।'

रामदयाल ने कहा—'मेरे सामने ही देवीसिंह ने उस स्त्री का घोर अपमान किया था। वह अचेत होकर गिर पड़ी थी। देवीसिंह ने उससे कहा था कि मैं तो तुम्हे पहचानता भी नहीं हूं।'

रानी बोली—'तू उसे ले आ। आजलल और कोई साथ में नही है। उसके साथ कुछ मन बहलेगा।'

रामदयाल वहाँ कुछ समय ठहर कर चला गया। सरदार से कहता गया—'अब हम सब लोगों की मुरादे पूरी होंगी।'

वह बोला—'इन्शा अल्लाह।'

[८३]

रामदयाल विराटा के उत्तर वाले जङ्गल और भरकों में होकर इधर उधर फैले भांडेर सैन्यदल की आँख बचाता हुआ अन्धेरे मे विराटा पहुंचा। विराटा के सिपाही उसे पहचानने लगे थे, इसलिए प्रवेश करने में दिक्कत नही हुई। सीधा कुञ्जरसिंह के पास पहुंचा। बोला-'मैं गोमती के ठहरने का उचित प्रबन्ध कर आया हूं।'

वहाँ जाने की वह अभिलाषा रखती हो, तो मैं न रोकूँगा।' कुञ्जर ने कहा।

रामदयाल जरा चकित होकर बोला—'उस दिन आप ही ने कहा था कि इन लोगों के ठहरने का प्रबन्ध कहीं बाहर कर देना चाहिए, सो मैंने कर दिया। अब यदि दूसरी मर्जी हो, तो मुझे कहना ही क्या है?'

कुन्जरसिंह ने झुंझलाकर कहा—'अच्छा, अच्छा ! ले जाओ उसे जहाँ वह जाना चाहे और कोई साथ नही जायगा। कहाँ ले जाओगे ?'

रामदयाल इस प्रश्न के लिये तैयार था। बोला—'यहाँ से चेलरा थोड़ी दूर है। वहाँ एक ठाकुर रहते है। उनके यहाँ प्रवन्ध कर दिया है। मैने तो सबके लिये ठीक-ठाक कर लिया है। यदि सब लोग वहीं चले चलें, तो बहुत अच्छा होगा।'

'सब लोग नहीं जायेंगे, पहले ही बतला चुका हूं और यदि उन लोगों की इच्छा होगी, तो मैं साथ पहुंचाने चलूँगा।' कुन्जरसिंह ने कहा। फिर एक क्षण ठहरकर बोला—'यदि अकेली गोमती जायगी तो भी मैं साथ चलूंगा।'

रामदयाल ने आहत निर्दोषिता के स्वर में कहा—'मैं मार्ग बतलाये देता हूं। ठाकुर का नाम प्रकट किये देता हूं। आप किसी को साथ लेकर गोमती को या जो जाना चाहे, उसे लिवा जाइये। यदि मेरी बात में कोई फर्क निकले, तो जो जी चाहे, सो कर डालियेगा।'

इस पर कुन्जरसिंह रामदयाल को लेकर खोह पर गया।

कुन्जर ने रामदयाल के आने का कारण बतलाया। जरा विचलित स्वर में कुमुद से कहा—'आप यदि जाना चाहें, तो इस संकटमय स्थान से चली जायें। मै पहुंचाने के लिये चलूँगा।'

कुमुद नें दृढ़ता, परन्तु कोमलता के साथ उत्तर दिया—'विराटा के योद्धाओं की सफलता के लिये मै यहीं रहकर दुर्गा से प्रार्थना करूँगी। गोमती को अवश्य बाहर भिजवा दीजिये। उस दिन से यह बड़ी अस्वस्थ रहती है।'

गोमती की इच्छा जानने के लिये कुन्जर ने उसकी ओर दृष्टिपात किया। गोमती ने कुमुद की ओर देखकर कहा—'मुझे मृत्यु का कोई भय नही है। प्राणों को बनाये रखने की कोई कामना नही है। कही भी रहूं सर्वत्र समान है। यदि बहिन के पास ही रह कर मेरा प्राणांत

होता, तो सब बात बन जाती।' फिर जरा नीचा सिर करके बोली—'परन्तु अभी मरना नही चाहती हूं।'

कुमुद ने उसकी ओर स्नेह की दृष्टि से देखा।

एक क्षण बाद गोमती बोली—'ऐसी भली छत्रछाया छोड़कर कहीं भी जाना पागलपन है, परन्तु यहाँ और अधिक ठहरने से मैं सचमुच बावली हो जाऊँगी। मन्दिर में अब धँसा नही जाता, खोह मे पड़े रहने से अनमनापन बढ़ता जाता है, इसलिये रामदयाल के साथ जहाँ ठीक होगा, चली जाऊँगी। केवल एक विनती है।'

दयार्द्र होकर कुमुद ने प्रश्न किया—'वह क्या है बहन?'

उस लड़की का गला रुँध गया। बोली—'केवल यह कि मुझसे जो कुछ भी अपराध हुआ हो वह क्षमा हो जाय।'

कुमुद ने उसे कन्धे से लगा लिया। इसके बाद कुमुद ने कुन्जर से कहा—'आप इस किले की रक्षा कर रहे है। कैसे कहूं कि आप इस बेचारी को सुरक्षित स्थान तक पहुंचा आवे?'

'मैं अवश्य जाऊँगा और दुर्गा की कृपा से अभी लौटूंगा।' कुन्जरसिंह ने उत्तर दिया।

रामदयाल अभी तक चुपचाप था। उसने प्रस्ताव किया-'इन्हे पुरुष का वेश धारण करके चलना चाहिये।'

इस प्रस्ताव को कुन्जरसिंह और गोमती दोनों ने स्वीकृत किया।

[९०]

कुन्जरसिंह गोमती को लेकर गढ़ के उत्तर की ओर जाने की दुविधा में था। वह सोचता जाता था कि रामदयाल के ऊपर अविश्वास करने का कोई कारण नही है परन्तु कुमुद ने कहा था कि साथ जाओ इसलिये जा रहा था। निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचाकर लौटने में समय लगेगा और इस बीच में गढ़ की समस्या कुछ उलट-पलट गई, तो क्या होगा? यह बात उसके मन मे गड़ रही थी।

उसी समय सबदलसिंह मिला। कुञ्जरसिंह से उसने पूछा—'कहाँ जा रहे हो ?'

उसने उत्तर दिया—'यह एक निरीह स्त्री गढ़ से बाहर जाना चाहती है। चेलरे तक पहुंचाने जा रहा हूं।'

सबदलसिंह बोला—'लौटने में बहुत देर लग जायगी। तब तक अगर यहाँ आपकी जरूरत पड़ गई तो क्या होगा? साथ में यह आदमी तो है। दो की जाने की क्या जरूरत है। इस स्त्री से आपका कोई नाता है ?'

कुन्जर ने झिझक के साथ उत्तर दिया—'कोई भी नाता नहीं है। कहा गया था, इसलिये जा रहा हूं।'

रामदयाल तुरन्त बोला—'मेरे बाहु-बल और विवेक का यदि भरोसा किया जाय, तो मैं अकेला ही इस काम को निभा सकता हूं।'

कुन्जरसिंह को उत्तर देने में हिचकते हुये देखकर सबदल ने रामदयाल से कहा—'तुम्हारा इनसे कोई नाता है ?'

'क्या बतलाऊँ।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'इसे वह जानती हैं, मैं सेवक-मात्र हूं।'

सबदल ने कुछ विनम्र और अधिकार-युक्त स्वर में कुन्जर से कहा—'राजा, आप न जा सकेंगे। देवी ने मानो आप ही को तोपों पर नियुक्त किया है। थोड़े समय के लिये भी आपका यहाँ से चला जाना न-मालूम हम सब लोगों के लिये भयङ्कर हो उठे।'

कुन्जर असमंजस में पड़ गया।

एक क्षण बाद ही एक आकस्मिक घटना ने उसे निर्णय के किनारे पहुंचा दिया। उसी समय एक ओर से नरपति दौड़ता हुआ आया। घबराहट में बोला—'मन्दिर की दालान पर एक गोला अभी आकर गिरा है। दीवार का एक हिस्सा टूट गया है। देखिये धूल उड़ रही है। शायद हमारी खोह पर भी गोले पड़ें।'

कुन्जर ने भी देखा। उसने कहा—'आप खोह के भीतरी हिस्से में

रहें। मैं अपनी तोपों की मार से उधर की तोपों के मुंह बन्द किये देता हूं।' उसी क्षण रामदयाल से बोला—'तुम इन्हें सुरक्षित स्थान में ले जाओ। मै न जा सकूंगा। इन्हे कष्ट न होने पावे। खबरदार।'

रामदयाल आश्वासन देता हुआ गोमती के साथ चला गया।

[९१]

गोमती को रामदयाल सहारा देता हुआ, एक तरह से घसीटता अलीमर्दान की छावनी की ओर ले चला।

खैर, मकोय और हीस के कांटेदार जङ्गल में होकर चलना पड़ा। ऊबड़-खाबड़ भूमि और भरकों की भरमार में यात्रा और भी कष्ट-पूर्ण हो गई। ऊपर से गोली-गोले कभी-कभी समीप आकर ही गिरते थे। कांटों के मारे रामदयाल का शरीर जगह-जगह से लोहू-लुहान हो गया। पसीने के साथ मिलकर रक्त पतली धारों मे बह रहा था। परन्तु वह अर्द्ध-चेतन गोमती को अपनी थकी हुई बाहों में कसे हुये था। उसके जो अङ्ग रामदयाल के शरीर द्वारा सुरक्षित नहीं थे, वे कहीं-कही कांटों से छिल गये थे और रामदयाल को शायद उसी की अधिक चिन्ता मालूम होती थी। बिलकुल थक जाने के कारण एक जगह बैठ गया। गोमती भी रामदयाल के पास ही बैठ गई।

थोड़ी देर तक दोनों कुछ न बोले। जब रामदयाल की हाँफ शान्त हो गई तब धीरे परन्तु भर्राये हुये स्वर में बोला—'बहुत कष्ट हुआ है, क्यों ?'

गोमती ने जरा रीती दृष्टि से रामदयाल की ओर देखा, परन्तु उत्तर कुछ न दिया।

थोड़ी देर और चुप रहने के बाद रामदयाल बोला—'आपके शरीर में कांटे अटक गये होंगे, उन्हें निकाल दूं।'

गोमती ने कहा—'कही इधर-उधर पैरों में भले ही हों; उन्हें ठिकाने पर पहुंचकर निकाल लूंगी, अभी रहने दो।'

रामदयाल को अपने कांटे भी काफी कसक रहे थे। गोमती के न

पूछने पर भी उसने कहा--'मेरे शरीर को तो काँटों ने छलनी कर दिया है। मै नही जानता था कि इस मार्ग मे इतना बुरा जङ्गल मिलेगा।' और अपने लोहू-लुहान हाथो को गोमती के सामने करके देखने लगा। गोमती ने भी देखा।

रामदयाल ने कहा—'अगर कुञ्जरसिह आते, तो यहाँ हम लोगों की क्या सहायता कर सकते थे? काँटों मे फँसकर मुझे ही बुरा भला कहते। खैर, उसे भी सह लेता, क्योंकि कुछ उनके लिये तो मैं सब कर नही रहा हूं।'

गोमती बोली—'मैं अब पैदल चलूँगी।' जैसे तुम इतना कष्ट भोग सकते हो, वैसे मैं भुगत लूँगी।'

रामदयाल ने एक आह भरकर कहा—'मैं काँटों कङ्कड़ों में घिसटना कैसे देखूंगा।'

'तुम भी तो थक गये हो?'

'थक तो अवश्य गया हू, परन्तु अभी मरा तो नही हू।'

गोमती थोड़ी देर चुप रह कर बोली—'थोड़ी दूर चलकर देख लूँ यदि चलते न वना, तो सहारा ले लूँगी।'

रामदयाल ने आग्रह के साथ गोमती का हाथ पकड़कर कहा—'मेरे गठीले शरीर को देखो। इस वहते हुये रक्त को देखो। पैरों की उङ्गलियाँ ठोकरों से फट गई हैं, उन्हें भी देख लो, तव मालूम हो जायगा कि पैदल चलना कितने आफत का काम है।'

गोमती रामदयाल के हाथ मे हाथ दिये रही, पर उसने वह सब कुछ नही देखा।

रामदयाल ने यकायक गोमती का वह हाथ झटककर, अपने हृदय पर चिपटाकर रख लिया और असाधारण आवेश के साथ बोला—'और मेरे घायल हृदय को देखो।'

गोमती अपने हाथ को रामदयाल की छाती पर कुछ क्षण रक्खे रही और फिर उसने खीच लिया।

रामदयाल ने उसी आग्रह के स्वर में कहा—'देखोगी ?'

गोमती ने कोई उत्तर नही दिया।

रामदयाल कहता गया—'मैं पापी हूं, नीच हूं, बुरा हूं और सभी कुछ हूं। मेरे राजा ने जैसा कुछ मुझे बनाया, वह मैं सब हूं, परन्तु तुम्हारे लिये मैं कुछ और हूं। आवेश के अतिरेक मे एक क्षण के लिये वह रुद्ध हो गया, परन्तु अपने ऊपर शीघ्र अधिकार स्थापित करके बोला—'मेरे लिये केवल दो मार्ग हैं—एक तो यह कि तुम्हें किसी सुरक्षित स्थान में पहुंचाकर तुरन्त मर जाऊँ या खैर, तुम्हारे मुंह की बात सुनकर फिर कुछ कहूंगा।'

गोमती ने पूछा—'कहाँ चलोगे ?'

'ऐसे स्थान पर; जहाँ तुम्हें किसी तरह का कष्ट न हो सकेगा।'

'मै लौट न जाऊँ ?' गोमती ने क्षीण स्वर में प्रस्ताव किया।

रामदयाल ने कहा—'उस कंकरीली भूमि पर बैठे बैठे कष्ट होने लगा होगा, वहाँ मत बैठो।'

गोमती बोली—'अच्छा, जहाँ चलना हो; चलो। भाग्य में जो कुछ होगा देखूंगी।' वह खड़ी हो गई। रामदयाल उसका हाथ पकड़कर चलने लगा। थोड़ी देर चलकर वह फिसलकर गिर पड़ी। अधिक चोट आ जाती, परन्तु रामदयाल ने सम्भाल लिया। तो भी उसका घुटना छिल गया। रामदयाल ने उसे उठाकर कन्धे से लगा लिया। बोला—'अब पैदल नही चलने दूंगा। क्या कहती हो ?'

गोमती बोली—'क्या कहूं ?'

रामदयाल ने गोमती को उठा लिया। रामदयाल को जान पड़ा, जैसे उसकी सब थकावट यकायक कही चल दी हो, उसे अपने एक-एक रोम में विलक्षण बल प्रतीत होने लगा। गोमती को हृदय से सटाकर रामदयाल ने प्रश्न किया—'तुम यदि समझो कि मैं तुम्हारे साथ कोई घात कर रहा हूं तो इस क्षण या जब चाहो मुझे छुरी के घाट उतार देना। परन्तु मै जीते-जी तुम्हें अपने से अलग न होने दूंगा—'

थोड़ा-सा स्थान जरा साफ-सुथरा मिल जाने से गोमती को बात-चीत का सुभीता मिला। बोली—'यहाँ जगह चलने लायक है। मुझे पैदल ही चलने दो।'

रामदयाल ने काँपते हुये कण्ठ से कहा-'मै अपने को जैसा इस समय पा रहा हू वैसा कभी न पाया था। मैं बड़ी स्वच्छता के साथ अपने जीवन को बिताऊँगा। जो कुछ मैने किया है, उसे भूल जाऊँगा और तुम्हारे योग्य बनूंगा। तुम मुझे अवसर दोगी ?'

गोमती ने थोड़ी देर कोई उत्तर नही दिया फिर बोली—'यहाँ से कहाँ चलोगे ?'

रामदयाल ने तुरन्त उत्तर दिया—'मैं छोटी रानी के पास जाना चाहता था, परन्तु अब मै सोचता हूं कि वहाँ न जाऊँ। किसी ऐसे स्थान पर चलूँ, जहाँ हम दोनों निरापद रह सकें।'

गोमती ने अनुरोध के-से- स्वर में कहा—'मैं उन्ही के पास चलना चाहती हूं। मै अभी युद्ध-भूमि छोड़ना नही चाहती।'

'वहाँ सङ्कट में पड़ जाने का भय है।'

'तुम भी तो वहाॅ रहोगे ?'

'रहूगा। परन्तु गोला-बारी हो रही है। ऐसा न हो कि तुम बिछुड़ जाओ।'

'वही चलो मैं वही कुछ कर सकूँगी।'

'रामदयाल ने कुछ क्षण पश्चात् इस प्रस्ताव को मान लिया। फिर यकायक उसे हृदय के पास समेटकर बोला—'गोमती, तुम मेरी होकर रहना। रहोगी न ?'

गोमती ने कोई उत्तर नही दिया।

[६२]

रामदयाल को बहुत चक्कर काटकर चलना पड़ा। थोड़ी देर बाद गोमती थकावट के मारे रामदयाल की बाहों मे सो गई या अचेत हो

गई। रामदयाल थोड़ी दूर चल-चलकर दम लेने के लिये रुक जाता, परन्तु गोमती को गोद से न उतारता।

जब शिविर थोड़ी दूर रह गया और सवेरा होने में भी वहुत विलम्ब न था, रामदयाल एक जगह कुछ समय के लिये थम गया। उसने गोमती को गोद में आराम के साथ लिटाया। गोमती सोती रही।

रामदयाल ने उसे जगाया।

गोमती ने पूछा—'कितनी दूर निकल आये होंगे ? अभी तो जङ्गल में ही मालूम पड़ते है।'

रामदयाल ने उत्तर दिया-'वहुत दूर निकल आये हैं। उद्दिष्ट स्थान निकट आ गया है। कुछ कष्ट तो नही है।'

'अव मैं पैदल चलूंगी। खूब गहरी नींद आ जाने के कारण फुर्ती मालूम होने लगी है। छोड़ दो।'

'अभी नहीं छोड़ूंगा। पहले एक वात वतलाओ।'

'क्या ?'

'तुम मुझे प्यार करती हो ?'

गोमती ने कोई उत्तर नही दिया।

रामदयाल ने और भी आवेश के साथ कहा—'गोमती, मैं राजा तो नहीं हू, परन्तु मेरा हृदय राजमुकुटों के ऊपर है उसे मैं तुम्हारे चरणों मे रखता हूं।'

गोमती धीमे स्वर में वोली—'तुम अपने राजा के सम्मुख जव जाओगे, क्या कहोगे ?'

'मैं उनके सम्मुख अब कभी नहीं जाऊँगा। वहुत दिनों से गया भी नही। अव तो मै छोटी रानी के पास रहूगा, यदि तुम भी वहाँ रहना पसन्द करोगी तो, नही तो इस विशाल जङ्गल में कही भी हम लोग अपने लिये ठौर ढूंढ़ लेंगे।'

'रानी के पास किसके हित के लिये जा रहे हो ? किसके होकर जा रहे हो।'

'अपने हित के लिये और अपने होकर। मैं इस समय अपने और तुम्हारे सिवा और किसी भी चीज को नही देख रहा हूं।'

'मुझे राजा से एक बार मिलना है।'

'किसलिये ?' रामदयाल ने जरा चौककर पूछा।

'दो बातें कहना चाहती हूं। उस विश्वासघाती को कुछ दण्ड भी देना चाहती हूं, यदि सम्भव हुआ तो।'

रामदयाल ने सन्तोष की साँस लेकर पूछा—'इसके बाद क्या करोगी ?'

गोमती ने उत्तर दिया—'इसके बाद जो कुछ भाग्य में लिखा है, होगा। कुमुद के पास चली जाऊँगी।'

रामदयाल ने कुछ क्षण चुप रहने के बाद कहा—'यदि इस लड़ाई से बचने के बाद कुञ्जरसिंह और कुमुद का स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध हो गया, तो तुम वहाँ क्या करोगी ?'

गोमती चुप रही।

रामदयाल कहता गया—'कुमुद और कुञ्जर मे प्रेम है, इसे मै भी जानता हू और तुम भी। प्रेम का जो आवश्यक परिणाम है, वह ही होकर रहेगा, यानी वे दोनो अपना कुटुम्ब बनावेंगे। क्या हम लोग ऐसा नही कर सकते ? तुम्हारा शायद यह ख्याल है कि मैं तो केवल एक नौकर-मात्र हू।, मै पूछता हू, हृदयो में क्या कोई भेद होता है ? और फिर मेरे पास सम्पत्ति भी काफी होगी। इसमें सन्देह नही कि तुम महारानी न कहला सकोगी, परन्तु तुम सदा मेरी रानी होकर रहोगी, इसमें कोई भी सन्देह नही। राजा ने जैसा बर्ताव तुम्हारे साथ किया है, उसमें क्या तुम यह आशा करती हो कि वह तुम्हें अब ग्रहण कर लेंगे ? तुमने उन्हे दण्ड देने के विषय में जो प्रस्ताव किया है वह सहज अपने को धोखा देना है। तुम उन्हें कोई दण्ड न दे सकोगी। जिस समय उनके सामने जाकर उन्हें कोई उल्टी-सीधी सुनाओगी, उस समय वह

तुम्हारा और अधिक अपमान करेंगे। हां मैं दण्ड भी दे सकता हूं, परंतु तुम कहो, तो।'

गोमती ने कहा—'कुमुद जैसी स्त्री अब कभी न मिलेगी।' और एक लम्बी आह खींची।

रामदयाल ने सांस खींचकर कहा—'तुम अब भी उधर का ही ध्यान कर रही हो? यदि तुम्हारी इच्छा वहां फिर लौट चलने की हो, तो आज दिन भर यहीं भरकों में छिप जाओ, सन्ध्या-समय मैं तुम्हें वहीं पहुंचा दूंगा और अपने को किसी तोप के गोले के नीचे खपा दूंगा।' वह सूक्ष्मता के साथ गोमती की ओर देखने लगा। गोमती को चुप देखकर जरा जोश के साथ रामदयाल बोला—'बोलो गोमती। मैं इसके लिये भी तैयार हूं। सवेरा होने वाला है। दिन में बाहर चलना-फिरना अनुचित होगा। यदि काफी रात होती, तो मैं इसी समय विराटा लौट पड़ता, यद्यपि सारा शरीर चूर-चूर हो गया है और कांटों के मारे बिच्छू के डंकों जैसी ताड़ना हो रही है।'

गोमती ने सिर नीचा करके कहा—'तुम्हारे साथ चलूंगी। अब विराटा नहीं जाऊंगी।'

रामदयाल का शरीर कांप उठा। उसने तुरन्त असहाय गोमती को उठाकर अपने गले से लगा लिया। गोमती की आंखों से आंसू बह निकले।

[९३]

उन दिनों छावनियों के आस-पास पहरों की वह कड़ाई न थी, जो आजकल की रण-क्रिया में दिखलाई पड़ती है। इसलिये रामदयाल और गोमती को छावनी के बाहर के थाने वालों ने सवेरा हो जाने के बाद देखा। कुछ रोक-टोक और कठिनाई के बाद रामदयाल गोमती को लिये हुये छोटी रानी के तम्बू के पास आ खड़ा हुआ। रानी उन दोनों को देखकर प्रसन्न नहीं हुई। रामदयाल से कहा—'इस बेचारी को इस घोर संग्राम में क्यों ले आया?'

रामदयाल ने निर्भयता से उत्तर दिया— 'गोमती की रक्षा और कहीं हो ही नही सकती थी। इनका यहाँ बाल भी बाँका न हो सकेगा। आपकी रावटी में रहेंगी यह।'

रानी की आँखों से चिनगारी सी छूट पड़ी परन्तु गोमती के म्लान-मुख और दुर्दशा-ग्रस्त नेत्रों को देखकर असाधारण संयम के साथ बोली—'अच्छा इस लड़की को मेरे पास छोड़ दो। मैं इसकी रक्षा करूँगी। तेरा कार्य-क्रम अब क्या है?' गोमती को रानी ने अपने निकट बिठला लिया।

रामदयाल को तू-तड़ाक का यह वार्तालाप आज अपूर्व श्रुति कटु जान पड़ा, परन्तु उसकी चतुरता ने उसका साथ न छोड़ा। कहने लगा—'जो आपका कार्य-क्रम है, वही मेरा भी। जनार्दन शर्मा को ठिकाने लगाना है, यही न ?'

रामदयाल की बात के संक्षिप्त ढङ्ग से रानी जरा चकित हुईं। रोष मे आकर बोली—'तू इस लड़की को सम्भाले रहना। मै जनार्दन का सिर काटूँगी।'

जरा लज्जित स्वर में रामदयाल ने उत्तर दिया—'देखभाल के लिये तो मै इन्हे यहाँ लाया ही हूँ। यह हथियार चलाना जानती है। आपको इनसे सहायता मिलेगी, परन्तु जनार्दन से लड़ने के लिये न तो आपको जाना पड़ेगा और न इन्हे, मै जाऊँगा।'

रानी ने बेधड़क गोमती से पूछा—'तुम्हारा इसका क्या नाता है ?'

गोमती के होंठ फड़के, माथे की नसें फूल गईं और चेहरा लाल हो गया। कुछ कहने को हुई कि गला रुँध गया।

रामदयाल ने दबे हुये स्वर में तुरन्त उत्तर दिया—'इस समय मैं इनका केवल रक्षक हूं। इससे ज्यादा जानने की आपको जरूरत भी क्या है ?'

रानी ने सिंहनी की दृष्टि से रामदयाल की ओर देखा। फिर यथा-सम्भव नरम स्वर से गोमती से बोली—'तुम ठीक-ठीक बतलाओ, यह

तुम्हारा सत्यानाश करने को तो नही लिवा लाया है ? यह बड़ा झूठा और फरेबी है ।'

रामदयाल ने कुपित कण्ठ से कहा—'ठीक है महाराज ! मेरी सेवाओं का यह पुरस्कार तो मिलना ही चाहिये । मान लीजिये मैं इसका सत्यनाश करने को ही यहाँ लिवा लाया हू, तो इनकी जितनी दुर्दशा हो चुकी है, उससे और अधिक तो होगी नही, और यदि मै आपको वहुत खलने लगा हूं तो इसी समय चले जाने को प्रस्तुत हूं ।'

गोमती ने स्पष्ट स्वर में कहा—'मै रानी के पास रहूंगी ।'

रानी नरम पड़ गई । वोलीं—'रामदयाल, तुम हमें ऐसे अवसर पर छोड़कर न जाओगे तो कब जाओगे ? इसलिये तो तुम्हें झूठा और फरेबी कहा । छुटपन से तुम्हें देखा है । छुटपन से तुम्हें गालियाँ दी हैं । अव क्या छोड़ दूंगी ?'

सिर नीचा करके रामदयाल ने अपने सहज स्वाभाविक ढङ्ग से उत्तर दिया—'सो आपके सामने सदा सिर झुका है। अपको जब कभी रंज या क्रोध मे देखता हूं बुरा लगता है । मैं आपको धार में छोड़कर कैसे जा सकता हू ? आपकी सहायता के लिये ही गोमती को भी लिवा लाया हूं । आपका इनसे मन-वहलाव होगा और यदि लड़ाई के समय आपके ऊपर कोई सङ्कट उपस्थित होगा, तो मेरे अतिरिक्त यह भी आपकी सहायक होगी ।'

इसके वाद गोमती को कुछ संकेत करता हुआ रामदयाल छावनी मे अलीमर्दान के पास चला गया । अपना जितना अपमान आज उसने अवगत किया, उतना जीवन में पहले कभी न किया था ।

[६४]

अलीमर्दान के शिविर में रामदयाल और गौतमी के पहुंच जाने के वाद ही विराटा की गढ़ी पर गोला-वारी बढ़ गई कुञ्जरसिंह की तोपें उत्तर देने लगी । परन्तु कुञ्जरसिंह ने एक घण्टे के भीतर ही देख लिया

कि समस्या अत्यन्त विकट हो गई है और अधिक समय तक विराटा की गढ़ी को सुरक्षित रखना सम्भव न होगा।

तोपों के ऊपर अपने चुस्त तोपचियों को छोड़कर वह कुमुद के पास गया। खोह में इस समय नरपति न था।

कुञ्जरसिंह ने धीमें स्वर में कहा—'बिदा माँगने आया हूं।'

कुमुद उसके असाधारण तने हुये नेत्र देखकर चकित हो गई। कोमल स्वर में पूछा—'क्यों? क्या—'

'अन्तिम बिदाई के लिये आया हूं। आज की सन्ध्या देखने का अवसर मुझे न मिलेगा। चार छैः घण्टे मे यह गढ़ ध्वस्त हो जायगा और रामनगर की सेनायें प्रवेश करेंगी। कुछ डर मत करना। खोह में ही बनी रहना। कोई सेना आपका अपमान नहीं कर सकेगी। यदि आप भी कल रात को बाहर चली जातीं, तो बड़ा अच्छा होता।'

कुमुद कुछ चुप रही। स्वर को संयत करके बोली—'दुर्गा कल्याण करेंगी, विश्वास रखिये।'

'दुर्गा और आपका विश्वास ही तो मुझसे काम करवा रहा है।' कुञ्जरसिंह ने कहा—'इसलिये आपसे इसी समय बिदा माँगने आया हूं। दुर्गा से मरते समय बिदा मागूँगा।' कुञ्जर मुस्कराया। मुस्कराहट क्षीण थी, परन्तु उसमें न मालूम कितना बल था।

कुमुद की आँखें तरल हो गईं। ऐसी शायद ही कभी पहले हुई हों, जैसे गुलाव की पखुडी पर बड़े बड़े ओस-कण ढलक आये हों। उन्हे किसी तरह वही छिपाकर कुमुद ने कम्पित स्वर में कहा—'मैं आपके साथ चलूँगी।'

'मेरे साथ!' सिपाही कुञ्जर वोला—'नही कुमुद, यह न होगा। गोलों की वर्षा हो रही है। उस संकट में आपको नहीं जाने दूँगा।'

'मैं चलूँगी।'

कुमुद की आँखों में अब आँसू न था। कुन्जर ने दृढ़ता के साथ कहा—'देवीसिंह की महत्वाकांक्षा पर मुझे बलिदान होना है, आपको नहीं। आप इसी खोह में रहें।'

'मैं दुर्गा के पास प्रार्थना करने जाती हूं।' कुमुद बोली। उसने पैर उठाया ही था कि एक गोला मन्दिर की छत पर और आकर गिरा और वह ध्वस्त हो गई।

कुन्जर ने कहा—'वहाँ मत जाइये, दुर्गा का ध्यान यहीं करिये। मैं अब जाता हूं। मरने के पहले मैं देवीसिंह को अपनी तोपों की कुछ करामात दिखलाना चाहता हूं उसे विजय सस्ती नहीं पड़ने दूंगा।'

'अभी मत जाओ।' क्षीण स्वर में कुमुद ने कहा—'जरा ठहर जाओ। गोला-बारी थोड़ी कम हो जाने दो।' और बड़े स्नेह की दृष्टि से कुमुद ने कुन्जर के प्रति देखा।

कुन्जर उत्साह-पूर्ण स्वर में बोला—'मैं अभी थोड़ी देर और नहीं मरूँगा। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि देवीसिंह के सिर पर तलवार बजाकर फिर मरूँगा।'

कुमुद चुप रही। जल्दी-जल्दी उसकी साँस चल रही थी। आँखें नीची किये खड़ी थी कुन्जर भी चुप था। तोपों की धूम-धड़ाम आवाजें आ रही थीं।

कुन्जर ने पूछा—'तो जाऊँ?' परन्तु गमनोद्यत नहीं हुआ।

'कुमुद बोली—'जाइये, पीछे-पीछे मैं आती हूं।'

'तब मैं न जाऊँगा।'

'यह मोह क्यों?'

'मोह?' कुन्जर ने जरा उत्तेजित होकर कहा—'मोह! मोह! न था। अब मरने का समय आ रहा है, इसलिये मुक्त होकर कह डालूँगा कि क्या था ... ...।' परन्तु आगे उससे बोला नहीं गया।

कुमुद उसकी ओर देखने लगी।

कुछ क्षण बाद कुन्जर ने कहा—'तुम मेरे हृदय की अधिष्ठात्री हो, मालूम है ?'

कुमुद का सिर न-मालूम जरा-सा कैसे हिल गया। आंखें फिर तरल हो गई।

'तुम मेरी हो ?' आवेश-युक्त स्वर में कुन्जर ने प्रश्न किया।

कुमुद ने कुछ उत्तर नही दिया।

कुन्जर ने उसी स्वर मे फिर प्रश्न किया—'मै तुम्हारा हूं ?'

कुमुद नीचा सिर किये खड़ी रही।

कुन्जर ने बड़े कोमल स्वर में प्रस्ताव किया—'कुमुद, एक बार कह दो कि तुम मेरी हो और मैं तुम्हारा हूं - सम्पूर्ण विश्व मानो मेरा हो जायगा और देखना, कितने हर्ष के साथ मैं प्राण विसर्जन करता हूं।' कुन्जर को यह न ज्ञान पड़ा कि वह क्या कह गया—

कुमुद ने सिर नीचा किये ही कहा—'आप अपनी तोपो को जाकर सम्भालिये। मैं दुर्गाजी से आपकी रक्षा और विजय के लिये प्रार्थना करती हूं।'

कुन्जर ने हँसकर कहा—'उसके विषय में तो दुर्गा ने पहले ही कुछ और तय कर दिया है।'

किसी पूर्व-स्मृति ने कुमुद के हृदय पर एकाएक चोट की 'दुर्गा ने पहले ही कुछ और तय कर दिया है।' इस वाक्य ने कुमुद के कलेजे में बर्छी-सी छेद दी। वह विस्फारित लोचनों से कुन्जर की ओर देखने लगी। चेहरा एकाएक कुम्हला गया। होठ कांपने लगे। उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे लड़खड़ाकर गिरना चाहती हो। सहारा लेकर बैठ गई। दोनों हाथो से सिर पकड़ लिया।

कुन्जर ने पास आकर उसके सिर पर हाथ रक्खा—'क्या हो गया है कुमुद ? घबराओ मत। तुम दूसरो को धैर्य बँधाती हो स्वयं अपना धैर्य स्थिर करो। सम्भव है, मैं आज की लड़ाई मे बच जाऊँ।'

कुमुद फिर स्थिर हो गई। बोली—'मैं आज लड़ाई में तुम्हारे साथ ही रहूंगी। मानो।'

कुन्जरसिंह कुछ क्षण कोई उत्तर न दे पाया। कुमुद से फिर कहा—'वहाँ पास रहने से आपके कर्त्तव्य-पालन में विघ्न न होगा और मैं दुर्गा की प्रार्थना भी कर सकूँगी।'

कुन्जर बोला—'केवल एक बात मुंह से सुनना चाहता हूं।'

बहुत मधुर स्वर मे कुमुद ने पूछा—'क्या ?'

'तुम मुझे भूल जाना !'

नीचा सिर किये हुये ही कुमुद ने कुन्जर की ओर देखा। थोड़ी देर देखती रही। आँखों से आँसुओं की धार बह चली।

कम्पित स्वर में कुन्जरसिह ने पूछा—'भुला सकोगी ?'

कुमुद के होंठ कुछ कहने के लिये हिले, परन्तु खुल न सके। आँखों से और भी अधिक वेग से प्रवाह उमड़ा।

कुन्जर की आँखें छलक आईं ! बड़ी कठिनाई से कुन्जर के मुंह से ये शब्द निकले—'प्राण प्यारी कुमुद, सुखी रहना। एक बार मेरी तलवार की मूँठ छू दो।'

तुरन्त कुमुद उसके सन्निकट आकर खड़ी हो गई। उसका एक कोमल कर कुन्जर की कमर में लटकती हुई तलवार की मूँठ पर जा पहुंचा और दूसरा उसके उन्नत भाल को छूता हुआ उसके कन्धे पर जा पड़ा।

ऊपर गोले साँय-साँय कर रहे थे। तोपचियों ने कुन्जरसिह को पुकारा। कुन्जर ने अपना एक हाथ कुमुद की पीठ पर धीरे रक्खा और फिर जोर से उसे हृदय से लगा लिया। कुमुद ने अपना सिर कुन्जर के कन्धे पर रख दिया।

तोपचियों ने कुन्जरसिह को फिर पुकारा।

कुन्जरसिह कुमुद से धीरे से अलग हुआ। बोला—'यहीं रहना, बाहर मत आना। सुखी रहना।' कुमुद कुछ न बोल सकी।

खोह से बाहर जाते हुये पीछे एक बार मुडकर कुञ्जर ने फिर कहा–'अगले जन्म में फिर मिलेंगे'—अवश्य मिलेंगे अर्थात् यदि आज समाप्त हो गया तो।

[६५]

उसी दिन राजा देवीसिंह ने देखा कि गोलावारी के बल विराटा की तरफ से ही नही हो रही है, किन्तु अलीमर्दान की तोपें गोले उगल रही है।

रामनगर के नीचे गहरे नाले में एक संकीर्ण भरके में लोचनसिंह के पास देवीसिंह और जनार्दन आये। देखते ही लोचनसिंह ने कहा–'मालूम होता है, अलीमर्दान और कुञ्जरसिंह का मेल हो गया है। अब तो यहाँ छिपे-छिपे नही लड़ा जाता।'

देवीसिंह पास आकर बोला—'हमारी तोपें रामनगर से अलीमर्दान की छावनी पर आग उछालेंगी। परन्तु आड़-ओट के कारण कुछ हो नही पाता है। व्यर्थ ही गोला-बारूद खराब हो रही है। यदि किसी तरह अलीमर्दान को मुसावलीपाठे की ओर हटा सके और विराटा की गढ़ी को हाथ मे कर लें तो स्थिति बदल जाय।'

'मैं अलीमर्दान को मुसावलीपाठे से हटा दूंगा।' लोचनसिंह ने कहा।

देवीसिंह बोले—'आप भरकों को ही पकड़े रहिये। मैं किनारे—किनारे आड़-ओट लेता हुआ विराटा पर धावा करता हूं। आप भरकों में से धावा बोलकर हमारी टुकड़ी की रक्षा करते हुये बढ़िये। जनार्दन मुसावलीपाठे पर हल्ला बोलें। अलीमर्दान की सेना दो ओर से दबोची जाकर मैदान पकड़ेगी। तब खूब खुलकर हाथ करना। इस बीच में हम लोग विराटा गढ़ी को धर दबायेंगे और वहाँ से अलीमर्दान का सफाया कर देंगे।'

लोचनसिंह ने अस्वीकृति के ढङ्ग पर कहा—'इस तरह की सलाहें सदा बनती और बिगड़ती है। मैं तो इस तरह की लड़ाई लड़ते—

लड़ते थक गया हूं। लड़ना हो, तो इस तरह से खुलकर लड़ लेने दीजिये। यहाँ बैठे बैठे रेंगते-रेंगते फिट-फिट करने से तो मर जाना अच्छा है।'

देवीसिंह ने उत्तेजित होकर आश्वासन दिया—नहीं, आधी घड़ी के भीतर ही इसी योजना पर काम होगा। परन्तु पहले हमें नदी किनारे अपनी टुकडी के साथ हो जाने दो उसके बाद तुम जोर का हल्ला बोल कर आगे बढ़ो। तुम्हारे हल्ले के पश्चात् तुरन्त ही जनार्दन मुसावली-पाठे के पीछे से हमला करेंगे।'

लोचनसिंह ने कहा—'मैं अभी बढ़ता हूं। दीवान जी अपनी जानें परन्तु आज आगे पैर रख कर पीछे हटाने का काम नहीं है।'

जनार्दन इस स्पष्ट व्यङ्ग से आहत होकर बोला—'आप अपने पैरों की खबर लिये रहियेगा, मेरे पैरों की उङ्गलियां एड़ी में नहीं लगी हैं।'

लोचनसिंह का शरीर जल उठा। परन्तु देवीसिंह ने जनार्दन को तुरन्त वहाँ से निर्दिष्ट कार्य के लिये भेज दिया।

[६६]

अलीमर्दान शीघ्र युद्ध समाप्त करना चाहता था। दीर्घकाल तक लगातार लड़ते रहना किसी पक्ष के भी मन में हठ के रूप में न था। छोटी रानी को कुछ समय पहले वह सहायक समझता था, परन्तु अब उसके लिये भार-सी होती जा रही थी विराटा की पद्मिनी के लिये उसका जी उत्सुकता से भरा हुआ था, देवीसिंह को यदि वह ४–६ कोस ही पीछे हटा सकता और थोड़ा-सा अवकाश पाकर कुमुद को विराटा से अपने साथ ले जाता, तो वह अपने को विजयी मान लेता। विराटा और रामनगर के छोटे-छोटे से राज्य उसकी महत्वाकांक्षा के क्षितिज नहीं थे। उसकी राज-नीतिक कल्पनाओं के केन्द्र दिल्ली और कालपी थे।

अपनी ही उमङ्ग और सनक से उत्तेजित होकर उसने अपने एक सरदार को बुलाया। कहा—देवीसिंह पर जोर का हमला करके उसे

पीछे हटाना बहुत जरूरी है। विराटा को भी आँख से ओझल नहीं होने देना चाहिये। यदि विराटा वालों के ध्यान में पूर्व दिशा की ओर भाग खड़े होने की समा गई, तो फिर कुछ हाथ नहीं लगेगा। सारी मेहनत बेकार हो जायगी।'

'जब तक कुन्जरसिंह विराटा में है।' उसने मन्तव्य प्रकट किया—'तब तक वहाँ की चिन्ता नहीं है। वह बराबर देवीसिंह की सेना पर गोला-बारी करता रहेगा।'

अलीमर्दान उत्तेजित स्वर में बोला—'मैं चाहता हूं, अपने सिपाही बढ़कर हाथ करें। देवीसिंह पीछे हटाया जाय। तुम रानी को साथ लेकर पहल करो मैं एक दस्ता लेकर विराटा पर धावा करता हूं। आगे तकदीर।'

सरदार ने अचानक कहा—'सेना को टुकड़ों में बांटना शायद हानि का कारण हो बैठे।'

'जरूर हो सकता है।' अलीमर्दान ने चुटकी ली-'यदि हमारी फौज इस कायदे और पाबन्दी के साथ लड़ती रही, तो।'

वह मुंह लगा नायक था परन्तु जब नवाब को उत्तेजित देखा, तब उसने विरोध करने का साहस नहीं किया। इसके सिवा कुन्जरसिंह के दो ओर से दबोचे जाने के प्रस्ताव में एक हिंसा-मूलक आशा थी, इसलिये वह शीघ्र सहमत हो गया। आक्रमण के सब पहलुओं पर बात-चीत करके योजना को साँगोपांग तैयार कर लिया। रानी को इस प्रकार की लड़ाई के लिये सहमत कर लेना वह बिलकुल सहज समझता था।

रानी तो सहज सरल गति को घृणा के साथ शिथिलता की संज्ञा देने की मानो प्रतिभा रखती थीं। परन्तु अलीमर्दान जानता था कि रानी को अपनी तैयारी की हुई योजना को निर्णय के रूप में बतलाने से वह तत्काल उत्साह पूर्ण सहमति प्राप्त न होगी, जो उसी के मुंह से

अपनी योजना पर उसके निश्चय की छाप लगवाने से होती । इसलिये उन दोनों ने छोटी रानी के डेरे पर जाने का संकल्प किया ।

अलीमर्दान और सरदार इस अभीष्ट से अपने स्थान से बाहर जाने को ही थे कि एक हरकारा सामने आया ।

'हुजूर !' हाफता हुआ बोला—'दिल्ली से खानदौरान का पात्र आया है।'

जैसे तेजी के साथ बहने वाले नाले की धार को एकाएक एक बड़ी चट्टान की बाधा सामने मिल जाय और उसके आगे की धार क्षीण हो जाय, उसी तरह अलीमर्दान सन्न-सा हो गया । सम्भलकर उसने हरकारा से कहा—'कहाँ है लाओ ।'

हरकारे ने अलीमर्दान के हाथ में चिट्ठी दी । दिल्ली का सिंहासन संकट मे था । दिल्ली में ही दिल्ली का एक सरदार विमुख हो गया था। और सरदार पर इतना भरोसा न था जितना अलीमर्दान पर । राजपथ को स्वच्छ करने के लिये अलीमर्दान को तुरन्त शेष सेना-समेत दिल्ली आने के लिये पत्र मे लिखा था । पत्र में बादशाह की मुहर थी । खान-दौरान ने उसे भेजा था । खानदौरान के बनने-बिगड़ने पर अलीमर्दान का इस तरह के अनेक सरदारों की भाँति, भविष्य निर्भर था । इसलिये वह पत्र फरमान के रूप मे था और अनिवार्य था ।

अलीमर्दान ने सरदार को पत्र या फरमान दे दिया, उसने पढ़कर मुस्कराकर कहा—'हुजूर को शायद पहले से कुछ मालूम हो गया था । कल के लिये लड़ाई का जो कुछ ढङ्ग तय किया गया है, वह इस फर-मान की एक लकीर के खिलाफ नहीं जा रहा है ।'

अलीमर्दान भी उत्साहित होकर बोला—'इसमें सन्देह नहीं कि इस परवाने से कल की लड़ाई को दोहरा जोड़ मिलना चाहिये । भाई खाँ, अगर लड़ाई चीटी की रफ्तार से चली, तो कल ही या ज्यादा से ज्यादा दो दिन बाद हमें देवीसिंह से सुलह करनी पड़ेगी और जीते-जिताये

मैदान को छोड़कर चला जाना पड़ेगा। अन्त में कुन्जरसिंह और उनके देवी-देवता कहीं कूच कर देंगे और हजार लड़ाइयों का भी वह फल न होगा, जो कल की एक कसदार लड़ाई का होना चाहिये। क्या कहते हो?'

सरदार ने उत्तर दिया—'इन्शाअल्ला कल ही सवेरे लीजिये, चाहे हमारी आधी सेना कट जाय।'

[९७]

जब से गोमती छोटी रानी के पास आई, बोली कम, किसी गम्भीर चिन्ता मे, किसी गूढ़ विचार में डूबती-उतराती रही अधिक। छोटी रानी का अनुराग कथोपकथन में अधिक दिखलाई पड़ता था परन्तु गोमती हूं-हूं करके या बहुत साधारण उत्तर देकर अपनी विषय रुचि भर प्रकट कर देती थी।

छोटी रानी की रावटी विराटा के उत्तर-पश्चिम में, एक गहरे नाले के छोटे से द्वीप पर थी। इसी नाले के छोर पर अलीमर्दान का डेरा था रात हो रही थी। गोमती को अपने अङ्गों में शिथिलता अनुभव हो रही थी। रानी बातचीत करने के लिये आतुर थी। गोमती कोई बचाव न देखकर बातचीत करने के लिये तत्पर हो गई।

छोटी रानी बोलीं—'कई बार पहले भी कह चुकी थी कि इस लडाई मे मै स्वयं तलवार लेकर भिड़ूंगी। पुरुषों की ढीलढाल के कारण ही देवीसिंह अब तक मौज में है।'

'हाँ, सो तो ठीक ही है।' गोमती ने जमुहाई लेकर सहमति प्रकट की।

'मै केवल यह चाहती हू कि देवीसिंह के सामने तक किसी तरह पहुच जाऊँ।' रानी बोली।

गोमती ने सिर हिलाया।

रानी कहती गई—'अब और अधिक जीने की इच्छा नहीं है। दलीपनगर के राज्य की भी आकांक्षा नहीं है, परन्तु छलियों और

अधर्मियों को अपने मरने से पहले कुचला हुआ देखने की अभिलाषा अवश्य है। देवीसिंह को रण में ललकार सकूँ, जनार्दन शर्मा का माँस कौओ-कुत्तों को खिला सकूँ, केवल यह ललक है। अलीमर्दान के पास इतनी सेना है कि यदि वह डटकर लड़ डाले तो देवीसिंह की सेना नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। अवसर भी अच्छा है। विराटा उस छलिया पर आग बरसा ही रहा है। इधर से एक प्रचण्ड हल्ला और बोल दिया जाय, तो युद्ध के सफल होने में विलम्ब न रहे। तब दलीपनगर फिर उसके सच्चे अधिकारी के हाथ मे पहुंच जाय, नीच, राक्षस जनार्दन अपनी करनी को पहुंचे, स्वामिधर्मी सरदारों के जी मे जी आवे और बागी भय के मारे दलीपनगर छोड़कर भागें। धर्म का राज्य हो और सब लोग शांति के साथ अपना-अपना काम करें। कुन्जरसिंह को एक अच्छी-सी जागीर मिल जाय, तो वह भी सुख के साथ अपना जीवन-निर्वाह करे परन्तु बडी सरकार से कुछ न बना।'

इसी क्षण रानी ने अपने स्थान के एक कोने में दृष्टि डाली। वहाँ राज-पाट का कोई सामान न था। परन्तु उसे अपनी वर्तमान वास्तविक अवस्था का फिर ध्यान हो आया।

भर्राये हुये कण्ठ से वह बोली—'राज्य नही चाहिये और न वह कदाचित् मिलेगा परन्तु हाथ में तलवार लेकर देवीसिंह के कवच और झिलम को अवश्य फाड़ूंगी और फिर मरूँगी। इसे कोई नही रोक सकेगा, यह तो मेरे भाग्य मे होगा, गोमती।'

गोमती की शिथिलता कम हो गई थी। शरीर में सनसनी थी, गले में कम्प।

धीरे से बोली—'आप जो कुछ करे, मै आपके संग मे हूं, मैं भी मरना चाहती हूं मुझे संसार मे अब और कुछ भी देखने की इच्छा नही। कुमुद—विराटा की देवी—सुखी रहे, यही लालसा है।'

'विराटा की देवी!' रानी ने उत्तेजित होकर कहा—'दाँगी की छोकरी को देवी किसने बना दिया।'

गोमती ने भी जरा उत्तेजित स्वर में उत्तर दिया—'संसार उसे मानता है और कोई माने या न माने, मैं उसे लोकोत्तर समझती हूं। यदि इसी समय प्रलय होने वाली हो, तो मै ईश्वर से प्रार्थना करूँगी कि कम से कम एक तो बची रहे।'

रानी जोर से हँसकर यकायक चुप हो गई और तुरन्त बोलीं—'नहीं, मैं प्रार्थना करूँगी कि मैं और देवीसिंह बचे रहें और मेरी तलवार। मैं अपनी तलवार मे या तो उसका गला काट लूँ या उसी तलवार को अपनी छाती मे चुभो लूँ।'

'जनार्दन ?' गोमती ने क्षीण तीक्ष्णता के साथ पूछा।

'मेरे साथ हँसी मत करो।' रानी ने निषेध किया—जनार्दन बचा रहेगा, तो उसके मारने के लिये रामदयाल भी तो बना रहेगा।'

गोमती का चेहरा एक क्षण के लिये तमतमा गया। परन्तु अपने को संयत करके बोली—'जब मैं स्वयं तलवार चला सकती हूं, तब किसी के आसरे की कोई अटक नही है। फिर तुरन्त अपने असङ्गत उत्तर पर कुपित होकर बोली—मैं अपनी बकवाद से आपको अप्रसन्न नहीं करना चाहती, परन्तु इसमें कोई सन्देह नही कि—

'क्या ?' रानी ने असाधारण रुचि प्रकट करते हुये पूछा—'किस बात मे सन्देह नही ?'

गोमती ने बिलकुल संयत स्वर मे कहा—'इसमें कोई सन्देह नही कि मैं लडना चाहती हूं उसके साथ जिसने मेरा अपमान किया है, मेरे जीवन का नाश किया है—आपके साथ नही।'

रानी ने एक क्षण पश्चात् प्रश्न किया—'रामदयाल कहाँ है ?'

'मुझे नही मालूम।' गोमती ने उत्तर दिया।

'तुमसे कहकर नही गया ?'

'न। आपसे कुछ कहकर गये होगे—'

'वह तुम्हारे साथ ब्याह करना चाहता है, अर्थात् यदि तुम उसकी जाति की होओ तो।'

'और न होऊँ तो ?'

'तो भी वह अपना घर बसाना चाहता है, तुम्हें यों ही रख लेगा।'

गोमती ने दाँत पीसे। बहुत धीरे और काँपते हुये स्वर में पूछा—'वह कौन जाति के है ?'

'दासी-पुत्र है।' रानी ने प्रखर कण्ठ से उत्तर दिया—'दासी-पुत्रों की कोई विशेष जाति नही होती, उनका सम्वन्ध परस्पर हो जाता है। परन्तु वह स्वामिभक्त है।'

'यहाँ तो मुझे सब दासी-पुत्र दिखलाई दे रहे है।' गोमती ने मुक्त होकर कहा—'मुझे तो कोई भी वास्तविक क्षत्रिय नही दिखलाई देता। क्षत्रियत्व की डीग मारने वालों में क्षत्रिय का क्या कोई भी लक्षण बाकी है ? अपने को क्षत्रिय कहने वाला कौन-सा मनुष्य दुर्बलों को सबलों से, पतितो को उत्थितो से, पीड़ितों से, निस्सहायों को प्रपन्नों से बचाने में अपने को होम देता है ? मै तो यह देख रही हूं कि क्षत्रित्व की डींग मारने वाले अपने अहकार की झङ्कार को बढ़ाने और पर-पीड़न के सिवा और कुछ नही करते।' फिर नरम स्वर मे तुरन्त बोली—'आपसे पूछती हूं कि विराटा के मुट्ठी भर दांगियों ने आपका या दलीपनगर का क्या विगाड़ा है जो उन पर प्रलय बरसाई जा रही है ? क्या जिस प्रेरणा के साथ आप दलीपनगर के राजा या छलिया के साथ लोहा लिया चाहती है, उसकी आधी भी उमङ्ग के साथ आप विराटा की उस निस्सहाय कुमारी की कुछ सहायता कर सकती है ?'

रानी कुछ कहना चाहती थी कि रामदयाल आ गया। उसके चेहरे पर उमङ्ग की छाप थी, एक तीक्ष्ण दृष्टि से उसने रानी की ओर देखा और आधे पल एक कोने से गोमती को देखकर बोला—'कल बहुत जोर की लड़ाई होगी, ऐसी कि आज तक कभी किसी ने न देखी और न सुनी होगी।'

क्रुद्ध स्वर में रानी ने कहा—'तू उस लड़ाई मे कहाँ होगा ? ले जा इस लड़की को संसार के किसी कोने में और कर अपना जन्म सफल। मरने-मारने के लिये मुझे अब किसी साथी की जरूरत नही।'

किसी भाव के कारण गोमती का गला रुद्ध हो गया। कुछ कहने को ही थी कि छोटी रानी के स्वभाव और अभ्यास से परिचित रामदयाल मानों दोनों ओर के वारों के बीच में ढाल बन गया हो। बोला-'नवाब साहब एक बहुत महत्वपूर्ण विषय पर बातचीत करने के लिये आपके पास आये है, यहीं खड़े है तुरन्त मिलना चाहते हैं। लिवा लाऊँ।'

रानी ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी। कुछ ही पल बाद रामदयाल अलीमर्दान को लिवा लाया। रानी ने साधारण-सी आड़ कर ली और रामदयाल ने उसके बैठने के लिये आसन रख दिया।

[९८]

'कल देवीसिंह को उसके सब पापों का फल मिलेगा महारानी साहब।' अलीमर्दान ने कहा—'चाहे इस लड़ाई में मेरी आधी फौज खतम हो जाय, पर मोर्चा लिये बिना चैन न लूंगा। खुदा ने चाहा तो कल शाम को इस वक्त हम लोग रामनगर और विराटा पर पूरा अधिकार कर लेगे।'

रानी ने रामदयाल के द्वारा कहलवाया—'मुझे आपसे यही आशा है। मेरी समझ में हल्ला रात में ही बोल दिया जाय। सेना को कई दलों में बांट दिया जाय। कुछ तो समय कुसमय के लिये तैयार बने रहें बाकी दल कई ओर से चढ़ाई करके डटकर लड़ जाये।'

अलीमर्दान बोला—'मैंने भी कुछ इसीं तरह का उपाय सोचा है। मैं एक विनती करने आ I हूं।'

रामदयाल ने पूछा—'क्या आज्ञा है ?'

'विनती यह है।' अलीमर्दान ने नम्रता-पूर्वक उत्तर दिया—'कि इस धावे का सेनापतित्व महारानी साहब और मेरे नायक के हाथ में रहे।

महारानी साहब की शूरता हमारे सैनिकों की छाती को लोहे का बना देगी।'

रानी ने रामदयाल के द्वारा कहा—'आपकी आज्ञा का पालन किया जायगा। आप न भी चाहते, तो भी मैं सेना के आगे रहकर अपने पद और मर्यादा का मान मनाती।'

रामदयाल कहने में शायद कुछ भूल गया था, इसलिये आड़-ओट की अपेक्षा न करके रानी स्वयं बोली—'कल में बतलाऊँगी कि क्षत्राणी इसे कहते है।'

इस नये अनुभव से अलीमर्दान एक क्षण के लिये जरा चंचल हुआ।

रानी ने अपनी सहज उत्तेजना की साधारण सीमा से आगे बढ़कर कहा—'मैं कल इस समय आपसे बात करने के लिये जिऊँ, या न जिऊँ, परन्तु वह काम करूँगी, जिसे स्मरण करके पुरुषों के भी रोमांच हो जाया करेगा।'

रानी का गला रुँध गया। रुँधे हुये स्वर में बोलीं—'मैंने कपटाचारियों के छल और अधर्म के कारण जो कुछ सहा है, उसे मेरे ईश्वर जानते हैं। मैंने कदाचारियों और विद्रोहियों के सामने कभी सिर नहीं नवाया और न कभी नवाऊँगी। अभिमान के साथ उत्पन्न हुई थी और अभिमान के साथ मरुँगी।' रानी अपने भरे हुये गले और आन्दोलित हृदय को सम्भालने के लिये जरा ठहरी। अलीमर्दान इस उद्‌गार का कोई उपयुक्त उत्तर सोचने लगा। रानी अपने को न सम्भालकर सिसककर बोलीं—'मेरे स्वामी वैकुण्ठवास की तैयारी कर रहे थे, निर्दयी राक्षसों ने उनके सिरहाने बैठे-बैठे एक प्रपंच-जाल रचा और उसमें दलीपनगर के मुकुट को फाँसकर उसे पद-दलित किया। यदि इन आतताईयों को मैंने दण्ड न दे पाया, तो मेरे जीवन और मरण दोनो व्यर्थ हुये।'

रामदयाल अपने कोने से हटकर रानी के पास आ गया। सांत्वना देने लगा—'आप रोयें नहीं। थोड़ी-सी घड़ियों के बाद घमासान युद्ध होगा। उसमें जो कोई कुछ कर सकता है, करेगा।'

अलीमर्दान को कोई विशेष उत्तर याद न आया, तो भी बोला—'आपके रोने से हम सबको बहुत रन्ज होगा। आप भरोसा रक्खें, कल लड़ाई का सब नकशा बदल जायगा। आपकी बहादुरी हमारे सब सिपाहियों को शहीद बनाने का बल रखती है।'

रानी ने गला साफ करके कर्कश स्वर में कहा—'मेरे पास जो थोड़े-से सरदार बचे हैं वे धावे में निकट रहेंगे। मैं लड़ूंगी, वे लड़ेंगे मैं आगे रहकर लड़ूंगी, परन्तु सेना का संचालन आप अपने सरदार के हाथ में दीजिये। मैं जिस दिशा से डाकू देवीसिंह का व्यूह वेध करूंगी, उस ओर फिर शायद ही लौटूं मुझे सैन्य-संचालन का अवकाश न मिलेगा।'

अलीमर्दान तुरन्त बोला—'सरदार आपके नजदीक ही रहेंगे।'

गोमती ने रामदयाल से ऐसे स्वर में पूछा, जिसे अलीमर्दान सुन सके—'नवाब साहब कहाँ रहेंगे?'

अलीमर्दान इस प्रश्न के लिये तैयार था। तपाक से बोला—'समय-कुसमय के लिये जो एक बड़ा दल तैयार रहेगा, उसका संचालन मैं करूंगा। उसके सिवा मुझे विराटा की भी थोड़ी-सी चिन्ता है। विराटा का राजा हम लोगों से लड़ता रहा है। एक दो दिन से जरूर वह देवीसिंह की तरफ ध्यान दिये हुये हैं, पर उसकी ओर से हम लोगों को असावधान न रहना चाहिये। यदि उसने पीछे से हमारी सेना को घर दबाया, तो सब बना-बनाया बिगड़ जायगा।'

गोमती ने सीधा अलीमर्दान को सम्बोधन करके कहा—'आप विराटा के राजा की सन्धि प्रार्थना को क्यों स्वीकार नहीं कर लेते? आप तो बहुत शक्तिशाली नवाब है। आपको भगवान ने सब कुछ दिया

है, तो भी जो कुछ थोड़ी-बहुत धन-सम्पत्ति विराटा के पास बची है, वह आपको भेंट कर देगा। आप उसे क्षमा कर दें।'

अलीमर्दान ने रामदयाल से संकेत में पूछा—'यह कौन है?'

रामदयाल ने बहुत धीरे से अलीमर्दान को उत्तर दिया—'यह वही रही है। इस समय महारानी की आश्रित है, हम लोगों के पक्ष की है। मैंने एक बार कहा था न?'

इसे रानी ने चाहे सुना हो, चाहे न सुना हो, गोमती ने सुन लिया बोली—'मैं भी महारानी के पास रहकर लडूँगी। ठाकुर की बेटी हूं। अपना कर्त्तव्य पालन करूंगी। इससे अधिक जानने से आपको कोई लाभ न होगा।'

अलीमर्दान ने कहा—'यों तो मैं महारानी साहब के इशारे पर नाचने को तैयार हूं, परन्तु विराटा के राजा ने जो गुस्ताखी की है, उसका दण्ड देना जरूरी जान पड़ता है। परन्तु यदि महारानी साहब का हुक्म होगा, तो मैं उसे भी माफ कर दूंगा।'

रानी बिना किसी उत्साह के बोली—'हमारा लक्ष्य दलीपनगर के बागी हैं। देवीसिंह और उसके सहायक जनार्दन के टुकड़े उड़ाना हमारा कर्त्तव्य है। विराटा को हम लोग इस समय छोड़ दें, तो बहुत अच्छा होगा। विराटा के राजा की उस लड़की पर कोई वार न होना चाहिये। आगे जैसी नवाब की मर्जी हो।'

अलीमर्दान ने कहा—'आपकी आज्ञा हो तो मैं स्वयं थोड़े-से आदमियों को अपने साथ विराटा ले जाऊँ और वहाँ ठिकानेदार को कायदे के साथ वहाँ का राजा बना आऊँ। मेरा उसके साथ कोई बैर नहीं है।'

'न।' रानी ने उत्तर दिया—'आप यदि उस ओर चले जायेंगे, तो यहाँ गड़बड़ फैलने का डर है। आप यदि लड़ाई में आरम्भ से ही भाग न लें, तो अपनी कुमुक के साथ निकट ही बनी रहें। आप अभी विराटा

'न।' रामदयाल ने तेजी के साथ कहा—'महारानी जहाँ होंगी वहीं मैं भी रहूंगा। मैं भी लड़ना जानता हूं। महारानी के शत्रुओं को मैं भी पहचानता हूं।'

अलीमर्दान 'बहुत अच्छा' कहकर वहाँ से चल दिया। जाते-जाते कहता गया—'थोड़ी देर में धावा कर दिया जायगा थोड़ा-सा आराम करके तैयार हो जाइये।'

सरदार अलीमर्दान के साथ आया था और साथ ही गया। डेरे पर पहुंचने पर बोला—'तो क्या हुजूर विराटा पर हमला न करेंगे?'

'कौन कहता था?' अलीमर्दान ने रुखाई के साथ कहा—'आधी रात के बाद ही मैं एक दस्ता लेकर विराटा की ओर जाता हूं। शायद बिना किसी जोखम के विराटा में दाखिल हो जाऊँगा, परन्तु मेरे यहाँ से कूच करने के पहले तुम्हारी तैयारी में किसी तरह की कसर न करनी चाहिये। मैं अगर पद्मिनी को लेकर जल्द लौट पड़ा, तो तुम्हारी मदद के लिये आ मिलूँगा, अगर देर हुई तो मेरी बाट मत देखना और न मेरी चिन्ता करना। अब यों सारी लड़ाई की जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर रहती है। शायद ऐसा मौका आ जाय कि मुझे पद्मिनी को लेकर भाँडेर चला जाना पड़े तो मामूली शर्तों के साथ देवीसिंह के साथ सन्धि करके चले आना। दिल्ली से लौटकर फिर कभी देखेंगे, परन्तु विराटा का मोर्चा हाथ से न जाने देना चाहिये। जब तक विराटा से मेरे लौट पड़ने की खबर तुम्हें लगे, तब तक लड़ाई जारी रखना।'

[९९]

राजा देवीसिंह ने सन्ध्या होने के उपरान्त दूसरे दिन की समर-योजना के सब छोटे-बड़े अङ्गों पर विचार करने के बाद यह तय किया कि प्रातःकाल के लिये न ठहरकर आधी रात के बाद ही लड़ाई आरम्भ कर दी जानी चाहिये। लोचनसिंह सन्तुष्ट था।

देवीसिंह ने इस योजना में विराटा को भी स्थान दिया। उसने अपना निश्चय जिस शब्दों मे प्रकट किया था, उसका तात्पर्य यह था—

विराटा व्यर्थ ही हमारे कार्य की सरलता में बाधा डालता है। प्रातःकाल होने के पूर्व ही उस पर अधिकार कर ही लेना चाहिये। फिर दिन में रामनगर और विराटा दोनों गढ़ों की तोपों के गोले अलीमर्दान की सेना पर फेंके जायें। इधर लोचनसिंह और जनार्दन खुले में उसकी सेना के पैर उखाड़ दें।

दलीपनगर की सेना खुली लड़ाई की आशा की उमङ्ग में तीन दलों में विभक्त होकर सावधानी के साथ आधी रात के बाद आगे बढ़ी। एक दल उत्तर की ओर नदी के किनारे-किनारे विराटा की ओर चला। इसका नायक देवीसिंह था। दूसरा दल जनार्दन के सेनापतित्व में नदी के भरकों और किनारों को देवीसिंह के दल की ओट बनाता हुआ उसी दिशा में बढ़ा। लोचनसिंह का दल पश्चिम और उत्तर की ओर से चक्कर काटकर अलीमर्दान की सेना को आगे से युद्ध में अटका लेने और पीछे से घेर कर दबा लाने की इच्छा से उमड़ा। विराटा की गढ़ी से रामनगर पर उस रात कभी थोड़े और कभी बहुत अन्तर पर गोले चलते रहे, परन्तु देवीसिंह के पूर्व-निर्णय के अनुसार रामनगर से उन तोपों का जवाब नहीं दिया जा रहा था। रामनगर के तोपचियों को आदेश दिया जा चुका था कि जब एक बँधा हुआ संकेत उन्हें अपनी क्षेत्रवर्ती सेना से मिले, तब वे तोपों में बत्ती दें।

लोचनसिंह ने उस रात देवीसिंह के आदेश के अनुसार बहुत सावधानी के साथ कूच किया। उसने अपने सैनिकों से कहा था—'बिल्ली की तरह दबे हुये चलो और समय आने पर बिल्ली की तरह ही झपाटा मारो।' थोड़ी देर तक लोचनसिंह और उसके सैनिकों ने इस सतर्क-वृत्ति का पूरी तरह पालन किया, परन्तु पग-पग पर लोचनसिंह को उसका अधिक समय तक पालन कर पाना दुष्कर और दुस्सह जान पड़ने लगा। मार्ग बहुत बीहड़ और ऊँचा-नीचा था। सावधानी के साथ उस पर चलना सम्भव न था, किन्तु अनिवार्य था। परन्तु जहाँ मार्ग सुथरा और

विस्तृत मैदान पर होकर गया था। वहाँ सावधानी का व्रत बनाये रखना स्थिति की व्यग्रता और लोचनसिंह की प्रकृति के विरुद्ध था। इसलिये लोचनसिंह अपने दल को आगे विरुद्ध उमङ्ग से-प्रेरित होता हुआ सपाटे के साथ बढ़ाने लगा। निकट भविष्य में किसी तुरन्त होने वाले भयङ्कर विस्फोट की कल्पना से उन पके-पकाये सैनिकों का कलेजा धक-धक नहीं कर रहा था, परन्तु पैर के पास ही किसी छोटी-सी असाधारण आकस्मिक ध्वनि के होते ही सैनिक चौकन्ने हो जाते थे, कभी कभी थर्रा भी जाते थे और आधे क्षण में उनका धैर्य फिर उनके साथ हो जाता था।

इस तरह से वे लोग करीब आध कोस बढ़े होंगे कि लोचनसिंह एकाएक रुक गया और जमीन से घुटनों और छाती के बल सट गया। उसके पीछे आने वाले सैनिक एकाएक खड़े हो गये। उनके चलते रहने से जो शब्द हो रहा था, वह मानो सिमटकर केन्द्रित हो गया और एक बड़ी गूँज-सी उस जङ्गल में उठकर फैल गई।

आकाश में चन्द्रमा न था। बड़े-बड़े और छोटे-छोटे तारे प्रभा में डूबते उतराते-से मालूम पड़ते थे। छोटे तारे टिमटिमा रहे थे। तारिकायें अपनी रेखामयी आभा आकाश पर खींच रही थीं। पक्षी भर—भराकर वृक्षों से उड़-उड़ जाते थे। आकाश के तारों की टिमटिमाहट की तरह झींगुरों की झन्कार अनवरत थी। लोचनसिंह ने अपने पास खड़े हुये सैनिक का पैर दबाया। लोचनसिंह के इस असाधारण ढङ्ग से उस सैनिक को तुरन्त यह धारणा हुई कि बड़ा और बिकट संकट सामने है। वह भी घुटनों और छाती के बल पृथ्वी से सट गया। लोचनसिंह के पास अपना कान ले जाकर धीरे बोला—'दाऊजू, क्या बात है?'

सामने और दायें-बायें से कोई आ रहा है। शायद अलीमर्दान की सेना बढ़ी चली आ रही है—बड़ी सावधानी के साथ।'

'तो क्या किया जाय?'

'जरा ठहरो। पीछे वालों को तुरन्त संकेत करो कि वे सब इसी तरह पृथ्वी से सट जायँ।'

उस सैनिक ने धीरे से यह संकेत अपने पीछे के सैनिकों में पहुंचाया। परन्तु जैसा कि बिलकुल स्वाभाविक था, इस संकेत के सब ओर पहुचने मे काफी विलम्ब हो गया। जो लोग मार्ग दुर्गमता के कारण आगे-पीछे हो गये थे, उन तक तो वह संकेत पहुंचा ही नही।

कुछ ही क्षण वाद लोचनसिंह को सामने आने वाला शब्द एकाएक बन्द होता हुआ जान पड़ा और उसके दाहिनी ओर नदी की दिशा में बन्दूक की आवाज सुनाई पड़ी।

लोचनसिंह ने अपने पास वाले सैनिकों से धीरे से कहा—'अभी हिलना-डुलना मत।'

जिस दशा में वन्दूक चली थी, उस दिशा में शोर हुआ। एक ओर से कालपी और दूसरी ओर से दलीपनगर की जय का शब्द परस्पर गुंथ गया। तव भी लोचनसिंह का हाथ वन्दूक या तलवार पर नहीं गया।

पास खड़े हुये सैनिक ने लोचनसिंह से पूछा-'दाऊजू क्या आज्ञा है?'

लोचनसिंह ने कड़ुवाहट के साथ उत्तर दिया—'चुप रहो। जब तक मैं कुछ न कहूं, तब तक चुप रहो।'

जिस दिशा में जय की गूंज उठी थी, उस दिशा में वन्दूको की नाल से निकलने वाली लौ प्रति क्षण वढ़ने लगी और वह नदी की ओर अग्रसर होने लगी।

लोचनसिंह ने धीरे से अपने पास के सैनिक से कहा—'जान पड़ता है, अलीमर्दान की सेना सव ओर से बढ़ती आ रही है। इस समय जनार्दन की टुकडी के साथ मुठभेड़ हो गई है। होने दो। वोलो मत। उनका करतब थोडी देर देख लिया जाय।'

पास के सैनिक ने कोई उत्तर नही दिया। परन्तु पीछे के सैनिकों में से चिल्ला उठे—'दाऊजू क्या आज्ञा है?'

इस प्रकार की आवाज उठते ही सामने से कुछ बन्दूकों ने आग उगली। लोचनसिंह के पीछे वाले सैनिकों ने उत्तर दिया, परन्तु आगे की कतार जो पृथ्वी से सटी हुई थी, उसने कुछ नहीं किया। लोचनसिंह के उन साथियों की बन्दूकों की गोलियाँ वायु मे फुफकार मारती हुई कही चल दी किसी के बालों को उन्होंने न छुआ होगा, परन्तु अलीमर्दान की सेना के उस दल की बाढ़ ने लोचनसिंह के कई सैनिकों को हताहत कर दिया। इसका पता लोचनसिंह को उनके कराहने से तुरन्त लग गया।

बहुत शीघ्र लोचनसिंह की दाहिनी ओर लड़ाई ने गहरा रंग पकड़ा उसकी टुकड़ी का एक भाग और जनार्दन की सेना का बड़ा खण्ड उसी केन्द्र पर सिमट पड़े। देवीसिंह नदी-किनारे पर अपने दल को लिये स्थिर हो गया।

लोचनसिंह के निकटवर्ती सैनिक सोचने लगे कि वह कही मारा तो नही गया, नही तो ऐसा किंकर्तव्य-विमूढ़ क्यों हो जाता ? अलीमर्दान की सेना के उस भाग ने, जो लोचनसिंह के सामने था, सोचा कि इस ओर क्षेत्र रीता है। वह बढ़ा। जब वह लोचनसिंह के बहुत पास आ गया, तब तारों के प्रकाश में लोचनसिंह को एक बढ़ता हुआ झुरमुट-सा जान पड़ा।

लोचनसिंह ने कड़ककर कहा—'दागो।'

पृथ्वी से सटे हुये उसके सैनिकों ने बन्दूकों की बाढ़ एक साथ दागी। पीछे सैनिकों ने गोली चलाई। इस बाढ़ से कालपी की सेना का वह भाग बिछ-सा गया। थोड़ी देर में बन्दूको को फिर भरकर लोचनसिंह अपने उस दल को झपटकर लेकर बढ़ा। कालपी की सेना के योद्धा भी इस मुठभेड़ के लिये सन्नद्ध थे। एक क्षण में ही बन्दूकों ने आग और लोहा उगला। फिर धीरे-धीरे बन्दूको की ध्वनि कम और तलवारों की झन-झनाहट अधिक बढ़ने लगी। लोचनसिंह पल-पल पर अपने दल के

एक भाग के साथ आगे बढ़ रहा था। परन्तु वह नदी से बार-बार दूर होता चला जा रहा था। उसके दल का दूसरा भाग नदी की ओर कटकर आगे-पीछे होता जाता था। उसी ओर से जनार्दन का दल खूब घमासान करने मे लग पड़ा था। कालपी की सेना का भी अधिकांश भाग इसी ओर पिल पड़ा।

कुछ घड़ियों पीछे अलीमर्दान के सरदार को मालूम हुआ कि दलीपनगर की एक सेना का भाग उसके पीछे घूमकर युद्ध करता हुआ बढ़ रहा है। वह धीरे-धीरे पीछे हटने लगा। परन्तु लोचनसिंह के बढ़ते हुये दबाव का विरोध करने के लिये उसे जाना पडा। युद्ध कभी थमकर और कभी बढ़-घटकर होने लगा। अन्धेरे में मित्र-शत्रु की पहचान लगभग असंभव हो गई। सैनिक केवल एक धुन में मस्त थे—'जब तक बाँह में बल है, अपने पास वाले को तलवार के घाट उतारो।'

[१००]

मुसलमान नायक छोटी रानी, गोमती और रामदयाल को साथ-साथ जिस ओर जिस प्रकार घुमाना चाहता था, वे नही घूम पाते थे। इसलिये उसकी प्रगति को बडी बाधा पहुंच रही थी। तो भी वह स्थिर-चित होने के कारण धैर्य और चतुरता के साथ सैन्य-संचालन कर रहा था। जिस स्थान पर लोचनसिंह के दल के साथ उसकी टुकड़ी की मुठभेड हो गई थी वहाँ पर वह न था। वह जनार्दन के मुकाबले में था।

लड़ाई के आरम्भ मे जितना उत्साह गोमती के मन में था, उतना दो घड़ी पीछे न रहा। वह बचकर युद्ध में भाग ले रही थी और रानी बढ़-बढ़कर। रामदयाल प्रायः गोमती के साथ रहता था। रानी को बार-बार इस बात का बोध होता था और बार-बार वह एक अनुद्दिष्ट क्रोध से भभक उठती थी। परन्तु थोड़ी ही देर में उन्हें भी भान होने लगा कि हाथ उस तेजी के साथ काम नहीं करता जैसा प्रारम्भ में कर रहा था वह भी पीछे हटी मुसलमान नायक की एक चिन्ता कम हुई।

वह संम्भलकर; डटकर लड़ना चाहता था परन्तु अन्धेरी रात में अपनी इच्छा के ठीक अनुकूल सारी सेना का संचालन करना उसके लिये क्या, किसी के लिये भी असम्भव था। इधर-उधर सारी सेना गुथ गई, कोई नियम या संयम नही रहा। केवल लोचनसिंह के साथ सैनिक का एक खण्ड और देवीसिंह का दल इस पक्ष का और मुसलमान नायक के निकटवर्ती सैनिकों का भाग और विराटा की ओर अग्रसर होता हुआ अलीमर्दान का दल उस पक्ष का, ये लड़ाई में कोई बड़ा भाग न लेने के कारण कुछ व्यवस्थित थे। अलीमर्दान का दूसरा दल कुछ दूरी पर मुस्तैद खड़ा था। वह विलकुल सुव्यवस्थित और किसी अवसर की ताक में था। परन्तु सभी दल उमङ्ग के साथ अपने अपने कार्य में दत्त-चित्त हो जाने के वाद शीघ्र प्रातःकाल होने के लिये लालायित हो रहे थे।

रामनगर से विराटा पर तोपें नहीं चल रही थीं। विराटा से इसी कारण उत्तरोत्तर तोपों की बाढ़ बढ़ने लगी। कोई निशाना चूकता था और कोई लगता। रामनगर की अस्त-व्यस्त दीवारें और दृढ़ बुर्जें धीरे-धीरे भरभराकर टूट रहे थे। गढ़वर्ती सैनिकों की चिंता पल-पल पर वढ़ती जा रही थी, परन्तु देवीसिंह का बंधा हुआ संकेत अभी तक नहीं मिला।

देवीसिंह ठीक नदी किनारे था। दोनों किनारों के भीतर तोपों और वन्दूकों की आवाज दुगुनी-चौगुनी होकर गर्जन कर रही थी। घायलों की चीत्कार धूम-धड़ाके से मथे हुए सन्नाटे को बीच-बीच में चीर-चीर-सा देता था।

वेतवा अपने अक्षुण्य कलरव के साथ बहती चली जा रही थी। तारों का नृत्य वेतवा की जलराशि पर अनवरत रूप से होता जा रहा था।

राजा ने अपने पास खड़े हुये एक सरदार से कहा—'यदि कुन्जरसिंह थोड़े समय के लिये भी अपनी मूर्खता के साथ सन्धि कर ले, तो आज

का युद्ध अलीमर्दान के लिये अन्तिम हो जाय। 'एक क्षण बाद बोला—'आज रात शायद रामनगर से तोप चलाने का अवसर ही न आवे।'

सरदार ने कोई मन्तव्य प्रकट नही किया, परन्तु प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा।

'इसलिये कि,' देवीसिंह ने उत्तर दिया—'रामनगर से तोप चलते ही विराटा का नदी-कूल भी बिलकुल सतर्क हो जायगा और हम लोग आसानी से विराटा की गढ़ी में प्रवेश न करने पायेंगे।'

इसके बाद देवीसिंह अपने दल को लेकर बहुत धीरे-धीरे और सावधानी के साथ विराटा की ओर बढ़ा।

[१०१]

रात की इसी उथल-पुथल ने सचेत विराटा को और भी सचेत कर दिया। विराटा में थोड़े से सैनिक थे। साधारण बने रहने में ही उसकी रक्षा थी। उस रात के भयानक हल्ले, असाधारण आक्रमण ने विराटा के प्रत्येक शस्त्रधारी को किसी अनहोनी के लिये बिलकुल तैयार कर दिया। उस रात जब तक देवीसिंह की अलीमर्दान के दलों से टक्कर नहीं हुई थी, तब तक कुञ्जरसिंह की तोपें केवल इस बात का प्रमाण देती रहीं कि उनके तोपची सोये नहीं हैं, परन्तु जब बन्दूकों की बाढ़ें उन दोनों दलों की भभकी तब किसी संकट के तुरन्त सिर पर आ पड़ने की आशङ्का ने कुञ्जरसिंह को बहुत सक्रिय कर दिया।

आक्रमणों के होने के कुछ घड़ी पीछे ही अलीमर्दान अपने दल के साथ विराटा के नीचे, नदी के किनारे आ गया। उसके बिलकुल पास ही देवीसिंह का दल भी आकर ठिठक गया था। परन्तु दोनों इतनी सावधानी से चले थे कि एक ने दूसरे की गति को नही समझ पाया था। तो भी विराटा के सतर्क योद्धा की दृष्टि से उन दोनों की गति-विधि न बच पाई। उसने तुरन्त अपने गढ़ में इसकी सूचना दी। अभी तक देवीसिंह और अलीमर्दान की सेनायें एक दूसरे के सम्मुख मोर्चा लिये

हुये डट रही थी, इसलिये भी विराटा के थोडे से मनुष्यों की कुशल-क्षेम बनी रही, परन्तु उस प्रहरी को मालूम हो गया कि उनमें से एक का कदाचित् दोनों का, लक्ष्य विराटा है। यही समाचार तुरन्त विराटा के भीतर पहुंचाया गया।

विराटा के सैनिक बारी-बारी से थोड़ी देर के लिये शस्त्र बाँधे हुये ही विश्राम करते आये थे। उन्हें बहुत दिन से यथेष्ट भोजन न मिला था। फ़टे कपड़ों से अपना शरीर ढाँके थे। चोटों की मरहम-पट्टी अपने हाथ से ही कर लेते थे—वह भी अपनें फटे कपड़ों के चिथड़े फाड़-फाड़ कर। जो कुछ उनके पास था, वह गोला और बारूद पर न्योछावर कर चुके थे और कर रहे थे। जो कुछ हथियार उनके पास थे, उन्हें अच्छी हालत में रखने की चेष्टा करते थे, परन्तु उनकी भी बहुतायत न थी।

हथियार उनके साफ-सुथरे थे, परन्तु शरीर धूल और पसीने में ऐसे सने हुये कि उनकी त्वचा के प्रकृति रङ्ग का यकायक पता लगाना कठिन हो गया था। आँखें धँस गई थी, गाल की हड्डियाँ तीव्रता के साथ ऊपर उठ आई थी। बाल बढ़ गये थे।

हृदय की ज्वाला आँखों में आ बैठी थी। परन्तु जङ्गली पशुओं की तरह दिखाई देने वाले उन लोगो की आँखों मे कभी-कभी जो मर-मिटने की दृढ़ता छलक उठती थी, वह निराशा के घास-फूस के ढेर में उज्जवल अङ्गार की तरह थी। टूटी-फूटी गढ़ी पर अस्त-व्यस्त शरीर के रखवालों के जीवन मे आभा को ग्रसने के लिये राहु-केतु की तरह दो तरफ से दो अलग-अलग उद्देश्य से प्रेरित होकर दलीपनगर और कालपी के सुसज्जित योद्धा पिल पड़ने को ही थे। दो वक्र रेखाओं की तरह वे दोनों एक ही केन्द्र पर सिमट पड़ने के लिये खिचने को ही थे।

प्रहरी के समाचार को पाते ही, जैसे प्रचण्ड झञ्झावात से पल्लव झकझोर खा जाते है, वैसे ही सबदलसिंह और उनकी सेना जिसे फटियल लड़ाकुओं की भीड़ की उपधि से ही सम्बोधित किया जा सकता है, विश्राम और थकावट से उचटकर सजग हो गई और एक मार्के के ठौर

पर इकट्ठी हो गई सवदलसिंह थोड़ा ही सो पाया था। धँसी हुई आँखों को पोंछता-पोंछता आ गया। कुन्जरसिंह भी अपने तोपचियों को कुछ सलाह देकर उसी समय आया। एक बड़े पीपल के पेड़ के नीचे वे सब इकट्ठे हो गये। कुन्जरसिंह ने कहा—'आज हम लोगों की विजय-रात्रि है।'

'कदाचित्त अन्तिम भी।' सवदलसिंह बोला।'

'क्यों?' कुन्जरसिंह ने जरा आश्चर्य के साथ कहा—'मैं यदि गलती नही कर रहा हूं तो रामनगर की गढ़ी मेरी तोपों ने ध्वस्त कर दी है। अलीमर्दान और देवीसिंह की सेनायें सवेरा होते-होते आपस में लड़ कट-कर समाप्त हुई जाती हैं। तब कल विजय अवश्यम्भावी है।

सबदलसिंह ने क्षीण मुस्कराहट के साथ उत्तर दिया—'हमे जो समाचार अभी मिला है, वह किसी दूसरे भविष्य की ही सूचना देता है। अलीमर्दान की सेना का एक बड़ा भाग किनारे पर आ पहुंचा है। दूसरी ओर से देवीसिंह का एक दल भी निकट आ गया है। रामनगर पर गोले चलाने में कोई बुद्धिमानी नहीं जान पड़ती।'

जरा उद्धत स्वर मे कुन्जरसिंह ने कहा—'तब किस बात में बुद्धि-मानी है?'

'मरने में।' तीक्ष्णता के साथ सवदलसिंह बोला—'मरने में। देवी-सिंह से कोई सहायता प्राप्त नहीं हो सकती। उस ओर से हम बिलकुल निराश हो चुके है। एक-एक पल हमारे लिये बहुमूल्य है। मालूम नहीं, कब अलीमर्दान की सेना यहाँ घुस पड़े और हमारी मर्यादा पर आ बने।'

कुन्जरसिंह ने कुछ सोचकर कहा—'तब मै मैदान की ओर तोपों का मुँह फेरता हूं। उन्हें छठी का दूध याद आवेगा।'

और एक क्षण पश्चात्। सबदलसिंह जरा रोष-पूर्ण स्वर में बोला—'उन सबको अपनी प्रबल और हमारी हीन स्थिति का भी स्मरण हो जावेगा। कुंवर साहब यह लड़ाई कल से और अधिक आगे नहीं जा सकेगी।'

इस मन्तव्य पर कुञ्जरसिंह को कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। और लोगो में से भी कोई कुछ न बोला। सबदलसिंह ने धीरे, परन्तु दृढ़ता के साथ कहा—'हम लोगों ने सन्धि के धर्म-सम्मत सब उपाय कर छोड़े। अलीमर्दान हमारी मर्यादा चाहता है। वह हम उसे नहीं देंगे। बाहर से अब किसी सहायता की कोई आशा नहीं है, इसलिये मेरी समझ मे केवल एक उपाय आता है।'

उपस्थित लोगों की दृष्टियाँ तारों के क्षीण प्रकाश में उस उपाय के सुनने के लिये सबदलसिंह की ओर घिर गईं।

सबदलसिंह ने उसी दृढ़ स्वर में कहा—'हम सब गढ़ी से निकलकर शत्रुओ से लड़ते-लड़ते मरें। किसी को इनकार हो, तो कह डालने में संकोच न करे।'

कोई न बोला।

सबदलसिंह कहता गया—'परन्तु हम अपने पीछे अपने बाल-बच्चों को अनाथ नहीं छोड़ सकते। अपनी बहू-बेटियो को मुसलमानों के घरों में भेजने से जो कालिख हमारे नाम पर लगेगी उसे सहस्त्र गङ्गा नदियाँ नहीं धो सकेंगी। इसलिये ग्वालियर, चित्तौर और चन्देरी में जो कुछ हुआ था, वही विराटा में भी हो।'

'वह क्या ?' जरा व्याकुलता के साथ कुञ्ज़रसिंह ने प्रश्न किया।

'जौहर।' धीरज के साथ सबदलसिंह ने उत्तर दिया—'हमारी स्त्रियाँ और बच्चे हम सबको मरा हुआ समझ कर चेतन चिता पर चढ़ जायेंगे और हम सब थोड़े समय बाद ही अपनी तलवारों के विमान पर बैठकर उनसे स्वर्ग में जा मिलेंगे।'

कुञ्जरसिंह को यह काव्यात्मक कल्पना कुछ कम पसन्द आई। बोला—'मुझे यह बहुत अनुचित जान पड़ता है। जिन बालकों को गोद में खिलाया है, जिन स्त्रियों के कोमल कण्ठों के आशीर्वाद से बाहों ने बल पाया है, उन्हे अपनी आँखों जीते-जी खाक होते हुये कभी नहीं देखा

जा सकता। जब लोग सुनेंगे कि हमने अपने हाथों से निर्दोप बालकों को जरा मारा; तब क्या कहेंगे ?'

सबदलसिंह ने कहा—'क्या कहेंगे ? कहें। हमारे मर जाने के पीछे लोग हमारे लिये क्या कहते है, उसें हम नही सुनेंगे और फिर ऐसी अवस्था में हमारे बड़ों ने भी जगह-जगह यही किया है।'

'यहाँ कदापि न हो।' कुञ्जरसिंह बोला—'इसमें सन्देह नहीं कि जैसे सो जाने के बाद कुछ पता नही रहता कि क्या हो रहा है, वैसे ही मर जाने के बाद की अवस्था है। इसलिये जीते जी ऐसा काम क्यों किया जाय कि मरने के समय जिसके लिये पछताना हो और आसानी के साथ मरने में बाधा पहुंचे ?'

दर्शन शास्त्र की इस संगत या असंगत बात के समझने की चेष्टा न करके सबदलसिंह ने क्षीण स्वर में कहा—'हम लोग कई दिन से यही बात सोच रहे है। मरने से यहाँ कोई नहीं डरता। परन्तु हमारे पीछे जो बिधवायें और अनाथ होंगे, उनकी कल्पना कलेजे को तड़पा देती है।'

'क्या पहले कभी बिधवा या अनाथ नही हुये है ?' अपने मन को आश्वासन देने के लिये अधिक और अपने श्रोताओ को अपेक्षाकृत कम। कुन्जरसिंह ने कहा—'यदि हमारा यही सिद्धाँत है, तो हमें कभी न मरने का ही उपाय सोचना चाहियें और जब हमारे सामने सब प्रियजन समाप्त हो जायें, तब हमे मरना चाहिये। जब रणक्षेत्र मे सैनिक जाता है, तब क्या वह यह सब सोच-विचार लेकर जाता है ? चलो, हम सब मरने के लिये बढ़ें। एक-एक प्राण का मूल्य सौ-सौ प्राण ले और अपने बाल-बच्चों को परमात्मा के भरोसे छोड़ें। उनके लिये हमें इसलिये भी नहीं डरना चाहिये कि हमारे विरोधियों में अनेक हिन्दू भी है।'

सबदलसिह के साथियों ने इस बात को मान लिया। वे सब मरने से नही हिचकते थे, परन्तु अपने नन्हे-नन्हे बच्चो को अपने हाथ से नष्ट नही कर सकते थे।

'परन्तु । उनमें से एक असाधारण उत्साह के साथ बोला-'केशरिया-बाना हम अवश्य पहनेंगे । मौत के साथ हमारा ब्याह होना है, हम सादा कपड़ा पहनकर दूल्हा नही बनेंगे ।'

घोर विपत्ति में भी मनुष्य का साथ हँसी नहीं छोड़ती । वे सब इस बात पर थोड़े हँसे और सभी ने इस बेतुकी-सी बात को पसन्द किया ।

सबदलसिंह बोला—'परन्तु केशर शायद ही विराटा भर मे किसी के घर मिले ।'

उन सैनिकों में से जिसने दूल्हा बनाने का प्रस्ताव किया था, कहा-'मैं अभी ढूँढ़कर लाता हूं । क़ेशर न मिलेगी, तो हल्दी तो मिलेगी । मौत के हाथ भी तो उसी से पीले होंगे ।' और तुरन्त वहाँ से अदृश्य हो गया ।

सबदलसिंह ने कुञ्जर से कहा—'अब अपनी तोपों से और अधिक आग उगलाओ ।'

कुञ्जरसिंह बोला—'परन्तु जान पड़ता है, अन्धेरी रात के युद्ध में दोनों दल गुँथ गये होंगे ।'

'तब जहाँ इच्छा हो गोले बरसाओ सबदलसिंह ने कहा—'परन्तु शत्रु के हाथ गोला—बारूद न पड़ने पावे ।'

कुञ्जरसिंह अपने तोपचियों के पास गया । तोपों के मुंह मुरकाए । बहुत देर लग गई । लक्ष्य बाँधने में कम समय नहीं लगा । जब इस लक्ष्य पर गोलाबारी आरम्भ करा दी तब सबदलसिंह के पास लौटा ।

इस बीच में सबदलसिंह के उन सब सैनिकों ने अपने फटे कपड़े हल्दी से रङ्ग लिये थे । थोड़ी-सी केशर भी एक जगह मिल गई थी । सबदलसिंह ने उसका टीका सबके भाल पर लगाया । कुञ्जरसिंह ने भी अपने वस्त्र हल्दी में रङ्गे । सबदलसिंह ने केशर का टीका उसके भाल पर लगाते हुये कहा—'आज दांगियों की लाज ईश्वर और तुम्हारी तोपों के हाथ है ।'

'राजा !' कुञ्जरसिंह ने कहा—'निराश नहीं होना चाहिये। क्या है, शायद ईश्वर कोई ऐसा ढङ्ग निकाल दे कि वात रह जाय और सव बच जायें।'

'और कुछ रहने की जरूरत नहीं है, रहे या न रहे।' एक अधेड़ सैनिक वोला—'हम लोग केशरिया वाना पहन चुके। यह बिना व्याह के नहीं उतारा जा सकता। सगाई पक्की करके अव विवाह से भागना कैसा ? बचने-वचाने के सव विचार ध्यान से हटाओ। यदि यही वात मन में थी, तो भाल पर केशर का तिलक किस विरते पर लगाया ? अव ब्रह्मा के सिवा उसे कौन पोंछ सकता है ? और इतने दिनों धीरे-धीरे वहुत लड़े, अव जी खोलकर हाथ करेंगे और स्वर्ग में विश्राम लेंगे। सच मानिये देह भार-सी जान पड़ने लगी है।'

सवदलसिंह चिल्लाकर वोला—'मूठ पर हाथ रखकर राम-दुहाई करो कि सव के सव मरने का प्रयत्न करेंगे।'

सवने तलवार की मूठों पर हाथ रखकर जोर से कहा—'राम दुहाई राम—दुहाई।'

ये शब्द कई वार और देर तक दुहराये गये। उत्तरोत्तर उस ध्वनि में प्रचण्डता आती गई। वे लोग इधर-उधर घूम घूमकर दुहाई देने लगे। इन लोगों के वढ़ते हुये शोर को अलीमर्दान ने भी सुना। उसने सोचा खेल विगड गया, अव चुपचाप काम नहीं वन सकता। यही विचार उसके सरदारो और सैनिकों के भीतर उठा। किसी एक ही भाव से प्रेरित होकर वे लोग पहले थोड़े से और कुछ पल उपरान्त ही वहुत से गला खोलकर वोले—'अल्ला हो अकवर।'

'राम दुहाई' पुकार इस प्रहर और प्रवल स्वर की गूंज में पतली और फीकी-सी पड गई। एक वार विराटा के सिपाहियों का कलेजा धसक-सा गया। परन्तु 'अल्लाहो अकवर' की प्रवल गूंज के ऊपर कुन्जर

सैनिकों के हृदय के मरने मारने की धुन ने, एक निराश-जनित भयंकर नवीन अनुभव शीघ्र ही प्राप्त करने की कामना ने पुनः साहस का संचार कर दिया। उन्हें आशा हो चली कि लड़ाई की लम्बी घसीटी हुई थकावट से निस्तार पाने में विलम्ब नहीं है।

देवीसिंह ने भी 'राम-दुहाई और 'अल्लाहो अकबर' के जयकार सुने और उसे भी अपनी योजना को बदलना पड़ा। उसने सोचा—अलीमर्दान विराटा पर आक्रमण करना ही चाहता है। अब किसी उपयुक्त अवसर की बाट जोहना बिलकुल व्यर्थ है। विराटा पर जिसका अधिकार पहले होगा, वही इस युद्ध को जीतने की आशा करे। इन मूर्खों की तोपें बिना किसी भेद्र के गोले बरसा रही है। यदि शीघ्र हमारे हाथ में आ गई तो हम रामनगर और विराटा दोनों स्थानों से अलीमर्दान की सेना को कुचल सकेंगे। वह अपनी सेना लेकर जरा और आगे बढ़ा, सबेरा होने में दो-तीन घण्टे की देर थी। वह थोड़ा-सा और ठहरना चाहता था, कम से कम उस समय तक, जब तक अपने दल को खुलकर लड़ने योग्य परिस्थिति में प्रस्तुत न देख ले।

[१०२]

जैसे जङ्गल के कुपित पशु बिना किसी नियम-संयम के आगे-पीछे, नीचे-ऊँचे कही भी लड़ जाते है, उसी तरह रात के उस पहर में वह युद्ध होता रहा। विराटा की तोपें कभी अपने गोले दलीपनगर के सैनिकों पर कभी कालपी के सैनिकों और कभी वृक्षों, पत्थरों पर फेंकती रही।

पूर्व दिशा में क्षितिज से नभ की ओर एक रेखा खिची। उसकी आभा स्पष्ट न थी परन्तु गगन की नीलिमा और तारिकाओं की प्रभा के ऊपर उसका तिलक सा लग रहा था। वह जिस आगमन की सूचना दे रही थी, कौन जानता था कि उसमें क्या है।

इस समय बड़ी देर बाद छोटी रानी और गोमती का एक भरके मे मिलाप हो गया। दोनों ने एक दूसरे के लिये तलवारें तानी और दोनों ने एक दूसरे के पास पहुंचकर मोड़ लीं।

'महारानी !' गोमती ने कहा ।

'अरे ! मैं समझती थी कोई और है ।' छोटी रानी ने भी आश्चर्य के साथ कहा ।

गोमती बोली—'अच्छा हुआ; आप मिल गईं । मुझे कुछ कहना है ।'

'जल्दी कहो । समय नहीं है ।' छोटी रानी ने कहा ।

'मैं रामदयाल के साथ विवाह न करूँगी, विश्वास रखिये ।'

'इन बातों की चर्चा का यह समय नही है । तुम चाहे उसके साथ विवाह करना, चाहे उसका गला काट-डालना, मुझे दोनों बातों में एक से भी कोई मतलब नहीं ।'

'मैं उसका गला भी न काटूंगी । जितना आश्रय या स्नेह मुझे इन दिनों संसार में रामदयाल से मिला है, उतना कुमुद को छोड़कर मैंने किसी से नही पाया है ।'

'तुम जिस जगह रामदयाल हो, वहीं जाओ, मैं जिस जगह देवीसिंह या जनार्दन होंगे, वहाँ जाऊँगी या जहाँ मेरी मौत होगी, वहाँ । जाओ, हटो ।'

'न । मै आपके साथ रहूंगी । मैं इस तरह नहीं मरना चाहती । मैं दलीपनगर के राजा को भी नहीं मारना चाहती, परन्तु उस नृशंस, निष्ठुर से एक बात कहकर अपनी छाती मे पिस्तौल मारना चाहती हूं । पिस्तौल मेरे पास है । उसे केवल इसी प्रयोजन से अभी तक सुरक्षित रक्खा है ।'

'वह मुझे दे दो । मैं उसका ज्यादा अच्छा प्रयोग करूँगी ।'

'न । मेरी एक बात सुनिये । आप और सब विचार एक ओर रखकर विराटा की कुमारी की रक्षा का कुछ उपाय करिये । अलीमर्दान उसे जबरदस्ती अपनी दासी बनाना चाहता है । वह आपकी बात मानता है । पहले ही यदि आप उसे निवारण कर देती, तो वह आपकी मान जाता ।'

'पागल !' रानी ने कड़ककर कहा—'इन छोटी-छोटी-सी बातों के सोचने का समय मुझे नहीं है। दे अपनी पिस्तौल मुझे और हो जा मेरे साथ। तू रामदयाल की दासी बनना चाहती है, यह मुझे मालूम हो गया है। मैं बाधा नहीं डालूंगी, भरोसा रख, परन्तु पिस्तौल इधर दे और चल मेरे साथ; यहाँ इस तरह खड़े-खड़े हम दोनों मार डाली जायेंगी। चल नदी की ओर जहाँ से प्रातः नक्षत्र का उदय होता हुआ जान पड़ता है वहीं देवीसिंह इत्यादि कोई-न-कोई मिल जायेंगे।'

गोमती ने फिर इनकार किया और कुछ कहने को थी कि रानी गोमती की ओर झपटीं। गोमती उसका उद्देश्य समझकर हटी। रानी ने वार के लिये तलवार सँभाली। गोमती ने भागना आरम्भ किया और रानी ने गाली देकर उसका पीछा किया। जिस ओर जनार्दन की टुकड़ी और कालपी का एक खण्ड परस्पर काँटों की तरह उझल रहे थे, उसी ओर ये दोनों गई। तलवार के उस झंझावात के पास पहुंचकर गोमती उसमें प्रवेश न करने की इच्छा से फिर मुड़ी। रानी ने उसका फिर पीछे किया।

उधर से एक गोला इन दोनों के बीच में पड़ कर आगे को सन्ना गया जहाँ गिरा था, वहाँ उसने इतनी धूल उड़ाई कि दोनों की आँखें भर गईं। दोनों ही एक दूसरे से जरा हटकर आँखें मींचने लगीं।

[१०३]

उसी रात की धूमधाम ने नरपति और कुमुद को भी सजग किया। मन्दिर के पास ही 'राम दुहाई' की ध्वनियों ने नरपति को कारण का पता लगा लाने के लिये विवश किया। कारण की खोज कर लेने में कोई कठिनाई नही हुई। थोड़ी ही देर में वह लौटकर आ गया। भरे हुये स्वर में उसने कुमुद से कहा—'जौहर हो रहा है।'

'जौहर ?' कुमुद ने अचकचाकर नरपति से पूछा—'क्या इसके लिये सब लोग तैयार हो गये हैं ? हम लोगों से किसी ने नहीं पूछा ?'

'मैंने भी यह प्रश्न राजा से किया था। नरपति ने उत्तर दिया—'वह बड़ी रुखाई के साथ बोले—'तुम्हें मरना हो तो तुम भी आ जाओ।' तुम्हारे विषय में उनकी सम्मति माँगी, तो कहा—'जो मन में आवे, सो करें। तुम्हारी सम्मति क्या है? इसी के लिये मैं व्याकुल हो रहा हूं। सब दाँगी केशरिया बाना पहने उछलते-कूदते फिरे रहे है।'

कुमुद ने गला साफ किया। दो पल चुप रही। फिर अर्द्ध-कम्पित स्वर मे बोली—'मै तो कभी की मरने के लिये तैयार हूं। यदि इस युद्ध का कारण पहले ही मिट जाता, तो आज विराटा के इतने शूर–सामन्तों का व्यर्थ बलिदान न होता। मैं न–जाने क्यों जीवित रही? किसके लिये?' फिर तुरन्त चुप हो गई। एक क्षण पश्चात् फिर कहा—'आप तैरना जानते है। तैरकर उस पार चले जाइये।'

'उस पार तो जाऊँगा।' नरपति ने उत्तेजित होकर कहा—'परन्तु तैरकर नहीं। पानी में प्राण देना मुझे कठिन जान पड़ता है। अथाह जल-राशि है। उसमें बड़े-बड़े भयानक मगरमच्छ है। जगह-जगह बड़ी-बड़ी भँवरे पड़ती है और बहुत चौड़ा पाट है। मैं तो तलवार की धार पर मारना अधिक श्रेयस्कर समझता हूं। मैं मूर्ख भले ही हूं परन्तु इतना मूर्ख नही कि तुम्हें छोड़कर भाग जाऊँ। तुम उस पार चलो, तो तुम्हें लेकर चल सकता हूँ। देवी का स्मरण करो। वह बेड़ा पार लगावेंगी। उठो, चलो। मैं तुम्हें अभी सुरक्षित स्थान में पहुंचाऊँगा।'

स्थिर स्वर में कमुद बोली—'यह असम्भव है। सब लोग यही है, मैं भी यही रहूंगी। पार्थ, सारथी और तोपों के चलाने वाले जब यहाँ हैं तो मेरा बाल बाँका नहीं हो सकता और जब कुछ भी न रहेगा, तो माँ बेतवा तो सदा साथ है। आप अपनी रक्षा की चिन्ता अवश्य करें। मैंने जिस गोद में जन्म लिया है, उसे नष्ट होता हुआ नहीं देखना चाहती। आप जायें। अकेले आपके यहाँ रहने से कोई सुविधा नही बढ़ेगी। देवी की आज्ञा है दुर्गा का आदेश है, आप जायें। आपके यहाँ ठहरने से अनिष्ट हो सकता है। आप जायें। अभी चले जायें।'

'मैं कदापि न जाऊँगा।' नरपति ने हँसकर कहा—'मैं भी दाँगी हूं। मैं भी अपने कपड़े हल्दो में रङ्गता हूं। हम सब दाँगियों को अपना अन्तिम आशीर्वाद दो। हम थोड़े है और दरिद्र हैं। तुम एक अनेक हो। शक्ति हो शक्तिशालिनी हो हमें वरदान दो जिसमें पुरुप की तरह मरें।' फिर आँखें फाड़कर प्रखर स्वर में ऊपर की ओर देखकर बोला-दुर्गेदेवी !'

हम थोड़े से दाँगियों ने अपने अन्तिम रक्त-कण से आपके देवालय की रखवाली की है। हमारे हृदय को अब इतना बल दो कि अन्त समय हमारे भीतर किसी तरह की हिचक न आवे और हम हँसते हँसते तुम्हारे झूले की डोर पकड़कर पार हो जायें। माँ, माँ आशीर्वाद दो। 'दो, दो' की अन्तिम गूँज उस खोह में कई बार गूँजी—नरपति का शरीर थिरकने लगा प्रमत्त होकर गाने लगा और ताली बजाने लगा—

मलिनिया, फुलवा ल्याओ नदन-वन के।
ऊँची नीची घटिया डगर पहार
जहाँ वीरा लँगुरा लगाई फुलवार
मलिनिया, फुलवा ल्याओ नंदन-वन के।
छोटी-सी रे मालिन लम्बे ऊके केश,
फुलवा बीने पुरुष के वेस।
मलिनिया, फुलवा ल्याओ नदन-वन के।
बीन-बीन फुलवा लगाई बड़ी रास,
उड़ गये फुलवा रह गई वास।
मलिनिया, फुलवा ल्याओ नदन-वन के।'

नरपति उठ खड़ा हुआ। गीत की गूँजती हुई तान में वह अपनी खोह के वाहर हो गया। शायद हल्दी के रङ्ग में अपने फटे हुये कपड़े रङ्गने के लिये। कुमुद ने सिर नवा लिया। हाथ जोड़कर अपने कोमल कण्ठ से गाने लगी—

"मलिनिया, फुलवा नंदन-वन के।
वीन-बीन फुलवा लगाई बड़ी रास,।
उड़ गये फुलवा रह गई बास।
मलिनिया, फुलवा ल्याओ नंदन-वन के।"

उस खोह में, उस रात्रि में उस धूमधाम में, उस प्रकार के चीत्कार में उस धाँय-धाँय, साँय-साँय मे उस कोमल कण्ठ की वह स्वर्गीय तान समा गई—

"उड़ गये फुलवा, रह गई बास।"

[१०४]

प्रभात-नक्षत्र क्षितिज के ऊपर उठ आया। दमक रहा था और मुस्करा-सा रहा था। वनराशि और नीचे की पर्वत-श्रेणी पर उसका मन्द मृदुल प्रकाश झर-सा रहा था।

देवीसिंह ने देखा प्रात:काल होने मे अब क्षणिक विलम्ब नही है। उसने रामनगर की ओर वह बँधा हुआ संकेत किया, जिसे पाकर उस गढ़ी की तोपों को विराटा पर गोले बरसाने थे। उस संकेत पाने के आधी घड़ी बाद विराटा पर गोले आने लगे।

तब देवीसिंह ने सोचा, यह अच्छा नहीं किया यदि हमारी तोपों ने इन पागल दाँगियों को पीस डाला, तो अलीमर्दान का विरोध करने के लिये केवल हम है। अब किसी तरह यहाँ से अलीमर्दान को हटाना चाहिये। दिन निकलने के पहले यदि हम विराटा पहुंच गये, तो कदाचित हमारी ही तोपों से हमारा ही चकनाचूर हो जाय, इसलिये सूर्योदय तक केवल अलीमर्दान को खदेड़ने का उपाय करना ही ठीक जान पड़ता है।

देवीसिंह ने अपने दल को आक्रमण करने का आदेश दिया। 'अल्ला हो अकबर' के साथ 'दलीपनगर की जय, महाराज देवीसिंह की जय' की पुकारें सम्मिलित हो गईं। अलीमर्दान को अनजानी दिशा के आकस्मिक आक्रमण के धक्के को झेलने में विचलित हो जाना पड़ा; परन्तु उसके

सैनिक दलीपनगर के सैनिकों की तरह ही युद्ध के लिये तैयार खड़े थे। मुठभेड़ के प्रथम धक्के से पहले जरा पीछे हटकर फिर आगे बढ़े। आज अलीमर्दान बेतरह सचेष्ट था। देवीसिंह भी कोई कसर नहीं लगा रहा था। दोनों ओर के सैनिक भी हाथ और हथियार दोनों पर प्राणों की होड़ लगा रहे थे। बराबरी का युद्ध हो रहा था। दोनों संयत तेजस्विता के साथ लड़ रहे थे। ऐसा भासित होता था कि उस युद्ध का भाग्य-निर्णय एक बाल से टँगा हुआ है।

प्रातःकाल का प्रकाश होने तक देवीसिंह ने जमकर लड़ना ही ज्यादा अच्छा समझा। तितर-बितर होने में सारी योजना भ्रष्ट हो जाने का भय था। यही बात अलीमर्दान ने भी सोची।

निदान, पूर्व दिशा में लाली दौड़ी। अन्धकार एक क्षण के लिये सघन और एक क्षण के लिये छिन्न-भिन्न सा होता दिखलाई दिया। उत्सुकता के साथ देवीसिंह ने जनार्दन शर्मा और लोचनसिंह के दलों को आँख से टटोला। जनार्दन की टुकड़ी तितर-बितर हो गई थी। कालपी के दल का एक भाग रामनगर की तलहटी में पहुंच गया था, दूसरा देवीसिंह की बगल में ही जनार्दन के एक भाग से उलझा हुआ था और जनार्दन थोड़े से सैनिकों के साथ कालपी की दूसरी टुकड़ी से घिरा हुआ था। इसमें छोटी रानी भी भाग ले रही थीं लोचनसिंह का एक दस्ता कालपी के टुकड़े को अलीमर्दान की छावनी के पीछे निकल चुका था। लोचनसिंह कालपी वाले दस्ते पर एक ओर और अलीमर्दान के तैयार योद्धाओं पर दूसरी ओर प्रहार कर रहा था।

लोचनसिंह को अपने निकट देखकर देवीसिंह ने चिल्लाकर कहा—'शाबाश चामुण्डराय बढ़े चले जाओ।' इस वाक्य को लोचनसिंह या उसके किसी सैनिक ने नहीं सुन पाया, परन्तु देवीसिंह के अनेक सैनिकों के मुंह से यह वाक्य एक साथ निकला।

लोचनसिंह की टुकड़ी ने भी उत्तर दिया—'आये अभी आये।'

जनार्दन देवीसिंह के और भी पास था देवीसिंह ने चिल्लाकर कहा–'जनार्दन, घबराना नहीं। लोचनसिंह और हमारे बीच में शत्रु अभी दबोचा जाता है। देवीसिंह इतने जोर से चिल्लाया था कि उसका गला भर्रा गया और उसे खांसी आ गई। खांसी ने उसके सिर को जरा नीचा कर दिया और तिरछा भी, इसलिये एक स्थान से आई हुई एक अचूक गोली उसके कान को लेती हुई चली गई, परंतु प्राण बच गया।

चिन्ता के साथ अलीमर्दान ने देखा। भयानक उत्तेजना के साथ उसकी सेना ने जनार्दन के खण्ड पर वार करने शुरू किये। जनार्दन के लिये पीछे हटने को न स्थान था, न अवसर। इसलिये वह देवीसिंह की ओर ढलने लगा। देवीसिंह के सैनिकों की मार के कारण कालपी के सैनिकों ने जनार्दन को स्थान दे दिया और वह अपने सैनिकों सहित देवीसिंह की टुकड़ी के साथ आ मिला।

'महाराज देवीसिंह की जय !' इस छोर से अतुल ध्वनि हुई।

'महाराज देवीसिंह की जय ?' लोचनसिंह के दल से प्रचण्ड शब्द गूंज उठे।

रामनगर के गढ़ से विराटा की गढ़ी पर निशाना बांधकर धांय-धांय गोले बरसने लगे और उसकी दीवारें एक-एक करके टूटने लगी। एक गोला मन्दिर पर गिरा। उसका एक भाग खण्डित हुआ। दूसरा गिरा, दूसरा भाग खण्डित हुआ। तीसरा गिरा, वह धुस्स होकर रह गया। इतनी धूल उड़ी कि चारों ओर छा गई। पत्थरो और ईटों के इतने टुकड़े टूटकर बेतवा की धार में गिरे कि पानी छर्र-छर्र हो गया।

रामनगर की तोपो के मुंह बन्द करने का कोई उपाय देवीसिंह के हाथ में न था। पहले रामनगर फिर विराटा की ओर चिन्तित दृष्टि से देवीसिंह ने देखा। आँखों में आँसू आ गये। वे कान की जड़ से बहने वाले खून में ढलकर जा मिले।

आह भरकर उसने कहा—'मेरे हाथ से मन्दिर टूटा। हे भगवन, किसी तरह इस युद्ध को बन्द करो—'चाहे मेरा प्राण लेकर ही।'

परन्तु न तो रामनगर की तोपों ने गोले बरसाने बन्द किये और न देवीसिंह का प्राण ही किसी ने उस समय ले पाया ।

विराटा की टूटी हुई दीवारों से फटे चिथड़े पहने हुये सबदलसिंह के सैनिक दिखलाई पड़ने लगे । उनके चिथडे पीले रंगे हुये थे । सिर से फटे हुये साफों के चिथड़े लहरा रहे थे, मानो विजय-पताकाये हों । रामनगर की तोपों से वे नही डर रहे थे । उनकी तोपें कभी अलीमर्दान और कभी जनार्दन की टुकड़ियों पर आग उगल रही थीं । परन्तु एक गोले के बाद दूसरे के चलने में बराबर अन्तर बढ़ता चला जाता था ।

सूर्योदय हुआ—उसी सज-धज के साथ, जैसा असंख्य युगों से होता चला आया है । सूर्य की किरणों ने भी विराटा के दुर्बल, विवर्ण सैनिकों के पीले वस्त्र-खण्डों की ओर झांका और उनकी दमकती तलवारों को चमका दिया, मानो रश्मियों ने उन्हें अर्घ दिया हो ।

विराटा के सैनिक उन टूटी–फूटी दीवारों के पीछे डटे हुये थे । बाहर निलककर लड़ने को अब नही आये थे ।

देवीसिंह ने इन पीत-पट-धारियों की चुप्पी का अर्थ समझ लिया । आह भरकर मन में कहा—'इसका पाप भी मेरे सिर आना है । किस कुघड़ी में दलीपनगर का राजमुकुट मेरे माथे पर रक्खा गया था ! एक ही क्षण पीछे देवीसिंह ने दांत पीसकर निश्चय किया—'इन्हें अवश्य बचाऊँगा, चाहे होड़ में दलीपनगर नहीं, सारी पृथ्वी और स्वर्ग को भी भले ही हार जाऊँ और चिल्लाकर बोला—'बढ़ो बढ़ो । क्या खड़े होकर युद्ध कर रहे हो ? आज ही माँ का ऋण चुकाना है । बढ़ो और मरो । इससे अच्छी मृत्यु कभी नही मिलेगी ।'

सैनिक बढ़े और उन सबके आगे उछलता हुआ देवीसिंह ।

सूर्य की किरणें कान की जड़ से बहने वाले रक्त को दमक देने लगी । अपने राजा को घायल और उछलकर सबसे आगे बढ़ा हुआ देखकर दलीपनगर के योद्धा सब ओर से अलीमर्दान की सेना पर पिल पड़े ।

[१०५]

परन्तु अलीमर्दान वाले दस्ते ने इस भीषण आक्रमण को उसी तरह रोक लिया, जैसे ढाल तलवार का वार रोक लेती है। जिस ओर से लोचनसिंह आक्रमण कर रहा था, उस ओर कालपी की एक टुकड़ी ने भयङ्कर संग्राम आरम्भ कर दिया। परन्तु वह दो तरफ से घिर गई।

अलीमर्दान देवीसिंह के सैनिकों से लड़ता-भिड़ता, पंक्तियों को चीड़ता-फाड़ता नदी के किनारे आ गया, जहाँ रात के आरम्भ से ही विराटा के कुछ सैनिक प्रहरी का काम कर रहे थे। उन्हे थोड़े-से क्षणों में समाप्त करके वह अपने कुछ सैनिको सहित नाव पर चढ़ गया। उसके एक दस्ते ने तीरवर्ती गाव पर अधिकार कर लिया। विराटा-गढी की फूटी दीवारों में से बन्दूकों की एक बाढ़ चली। अलीमर्दान के कुछ सैनिक हताहत हुये। उसके और सैनिक प्रचुर संख्या मे पानी मे कूद पड़े। वहाँ धार छोटी थी वे लोग जल्दी ध्वस्त मन्दिर के पीछे वाली पठारी पर आ गये। अलीमर्दान भी वही नाव द्वारा आ गया।

देवीसिंह प्रबल पराक्रम से ही अलीमर्दान के शेष सैनिकों को पानी मे कूद पड़ने से रोक सका। उसके दल ने उन लोगो को थोड़ा-सा पीछे हटाया फिर देवीसिंह भी अपने कुछ सैनिकों के साथ पानी में कूद पड़ा।

अलीमर्दान और उसके सैनिक दौड़ते हुये ऊपर चढ़े।

विराटा के पीत-पट-धारी अपनी टूटी दवारों के बाहर निकल पड़े। तलवारों से सिर और धड़ कटने लगे। अलीमर्दान के सैनिक कवच और झिलम पहिने हुये थे, तो भी दाँगियों की तलवारों ने उन्हें चीर डाला।

सबदलसिंह ने अलीमर्दान को ललकारा—'जब तक इस गढ़ी में दाँगी का जाया जीवित है, तेरी साध पूरी न हो पायगी। ले।'

अलीमर्दान चतुर लड़ाका था। सबदलसिंह के वार को बचा गया। और फिर उसने अपनी तलवार का ऐसा प्रहार किया कि उसका दांया हाथ कंधे से कटकर अलग जा गिरा। सबदलसिंह भ शायी हो गया।

बेतवा की मंदगामिनी-धारा पर रपट-रपटकर चमकने वाली किरणों की ओर उसकी दृष्टि थी ।

फिर जो कुछ हुआ, वह थोड़े-से क्षणों का काम था । सबदलसिंह के योद्धा अलीमर्दान के बचे हुये दस्ते की तलवारों की नोकों पर झूम-झूम-कर आ टूटने लगे । अलीमर्दान के थोड़े से ही कवचधारी उन लोगों से बच पाये । परन्तु दाँगी कोई न बचा । जगह-जगह कटे-कुटे शरीरों के ढेर लग गये । 'केशरिया बानों' से ढँकी हुई पृथ्वी हल्दी से रङ्गी मालूम होती थी, मानो रण-चण्डी के लिये पांवड़ा बिछाया गया हो ।

देवीसिंह ने अपने थोड़े से सैनिकों-सहित गढ़ी के नीचे आया । विलम्ब हो गया था । अलीमर्दान गढ़ी में प्रवेश कर चुका था ।

देवीसिंह अपने थोड़े से सैनिकों को, जो उस पार थे, नदी में कूद पड़ने के लिये हाथ झुकाया ।

इतने में कुञ्जरसिंह ने एक गोला दलीपनगर की इसी टुकड़ी पर फेंका । इस कारण इन्हें जरा पीछे हटना पड़ा । परन्तु दलीपनगर की सेना का एक बहुत बड़ा भाग नदी-किनारे के जरा ऊपरी भाग से पानी में कूद पड़ा । और वेग तथा व्यग्रता के साथ देवीसिंह की ओर आने लगा । देवीसिंह धीरे-धीरे गढ़ी की टूटी दीवारों की ओर चढ़ने लगा । पीले कपड़ों से ढकी हुई मृत और अर्द्ध-मृत देहों को देखकर उसका कलेजा धँसने लगा और पैर लड़खड़ाने लगे । वह गढ़ी के भीतर न जा सका । धार तैरकर आने वाले अपने सैनिकों के आने तक वहीं ठिठक गया । पीले वस्त्रों से ढके हुये लोहू-लुहान शवों की ओर फिर आँख गई । होठ दबाकर मन में कहा—'कुञ्जरसिंह की हिंसा ने इन्हें मुझसे न मिलने दिया ।'

[१०६]

कुञ्जरसिंह की तोप का वह अन्तिम गोला था । उसे दागकर कुञ्जरसिंह अपनी तोपों को नमस्कार कर खोह की ओर तेजी के साथ आया । खोह के बाहर उसे वीणा-विनिंदित स्वर में सुनाई पड़ा—

'मलिनिया, फुलवा ल्याओ नंदन-वन के ।
बीन-बीन फुलवा लगाई बड़ी रास,
उड़ गये फुलवा रह गई बास ।
मलिनिया, फुलवा ल्याओ नंदन-वन के ।'

'उठो चलो ।' कुञ्जरसिंह ने खोह में घसकर कुमुद से कहा—'मुसलमान घुस आये । हमारे सब सैनिकों ने जौहर कर लिया है ।'

कुमुद खड़ी हो गई । मुस्कराई । परन्तु आँखों में एक विलक्षण प्रचण्डता थी । बोली—'सब ने जौहर कर लिया है ! सब ने ? अच्छा किया । चलो, कहाँ चलें ?'

'नदी के उस पार गढ़ी के पूर्व की ओर से । अभी वहाँ कोई नही पहुंचा है । हम दोनों चलेंगे ।'

'हाँ, दोनों चलेंगे उस पार, परन्तु अकेले-अकेले ।'

'मैं समझा नही ।' कुञ्जरसिंह ने व्यग्रता के साथ कहा ।

'मैं उस ओर से जाऊँगी, जहाँ मार्ग में कोई न मिलेगा ।' कुमुद दृढ़ता के साथ बोली—'आप उस ओर से आयें, जहाँ जौहर हुआ है । हम लोग अन्त में मिलेंगे ।'

और उसने अपने आँचल के छोर से जङ्गली फूलों की गूंथी हुई एक माला निकाली और कुञ्जर के गले में डाल दी । उस माला में फूल अधखिले और सूखे थे ।

कुञ्जरसिंह ने कुमुद को छाती से लगा लिया । कुमुद तुरन्त उससे अलग होकर बोली—'यह मेरा अक्षय भँडार लेकर जाओ अब मेरे पास और कुछ नहीं ।' कुमुद के आँसू आ गये । उसने उन्हें निष्ठुरता के साथ पोंछ डाला । थोड़ी दूर पर लोगों की आहट सुनकर कुमुद ने आदेश के स्वर में कहा—'जाओ । खड़े मत रहो । मुझे मार्ग मालूम है ।' फिर जाते-जाते मुड़कर बोली—'मेरा मार्ग निःशंक है; तुम अपना असंदिग्ध करो ।'

'मैं अभी आकर मिलता हूं। तुम चलो।' कुञ्जरसिंह ने कहा। कुमुद तेजी के साथ एक ओर चली गई और दूसरी ओर तेजी के साथ कुञ्जरसिंह।

उन दोनों के चले जाने के थोड़ी देर बाद अलीमर्दान अपने लहू-लुहान सैनिकों के साथ आ धमका। जब वहाँ कोई न मिला, उसने अपने सैनिकों से कहा—'यही कहीं है। इन चट्टानो में तलाश करो। मैं इधर देखता हूं। कुछ लोग इधर से आने वालों को रोकने के लिये मुस्तैद रहना।'

अलीमर्दान और उसके कुछ सैनिक इधर-उधर ढूंढ़ने-खोजने लगे। जिस ओर कुञ्जरसिंह गया था, उसी ओर अलीमर्दान गया। एक ऊँची चट्टान पर खड़े होकर अलीमर्दान ने धीरे से अपने निकटवर्ती एक सैनिक से कहा—'वह देखो, धीरे-धीरे उस ढालू चट्टान की तरफ जा रही है। कमाल है, देखो।'

[१०७]

कुञ्जर को मार्ग में देवीसिंह मिल गया।

'तुम कहाँ जा रहे हो?' देवीसिंह ने पूछा और जो बात वह कहना नही चाहता था, वह उसके मुंह से निकल गई 'तुमने जौहर नही किया?'

कुञ्जर ने भी अपने कपड़े पीले किये थे, परन्तु वह सार्वजनिक बलिदान में अपनी तोपों की धुन के कारण शामिल न हो पाया था। देवीसिंह की बात उसके कलेजे में काँटे की तरह चुभ गई।

बोला—'जौहर ही के लिये आया हूं आज जीवन-भर की कसक मिटाऊँगा। तुमने मेरे स्वत्व का अपहरण किया। तुम्हें मारे बिना मुझे कभी चैन न मिलेगा। तुम्हारा सिर काटने से बढ़कर मेरे लिये कुछ भी नही!' और देवीसिंह पर वार करने लगा। वार सम्भालते हुये देवीसिंह ने कहा—'स्वर्ग या नरक जो तुम्हारे भाग्य में होगा वहीं अभी भेजता हूं।'

लडाई के लिये स्थान उपयुक्त न था, इसलिये स्वभावतः दोनों लड़ते-लड़ते नदी की एक ढालू पठारी की ओर क्रमशः चले गये।

दलीपनगर की सेना ने अपने राजा को इस विपत्ति में ग्रस्त देखा। अलीमर्दान भी बहुत अधिक सैनिक लेकर विराटा की गढ़ी में नही गया था, इसलिये उसकी सेना भी अपने नायक की रक्षा के लिये उत्साहित हो उठी। दोनों दल नदी की ओर झुके और परस्पर लड़ते-भिड़ते पानी में कूद पड़े। लोचनसिंह पीछे से दबाता हुआ आ पहुंचा। जनार्दन भी दौड़ पड़ा। इसी भीड़ में एक ही स्थान पर रामदयाल, लोचनसिंह और छोटी रानी आ भिड़े।

रानी ने लोचनसिंह पर तलवार उठाई और कहा—'ले बेईमान, मूर्ख ?' लोचनसिंह के पैर को इस वार ने थोड़ा-सा घायल कर दिया। लोचनसिंह बोला—'दलीपनगर की दुर्दशा के कारण को अभी मिटाता हूं।' और आंधी की तरह तलवार घुमाकर लोचनसिंह ने छोटी रानी की भूलोक-यात्रा समाप्त कर दी।

रामदयाल खिसका। कहता गया—'दाऊजू, मैं लड़ाई में नहीं हूं। मैं तो किसी को ढूंढ़ रहा हूं।'

'जो जन्म-भर किया है, वही किया कर नीच!' लोचनसिंह ने लात मारकर कहा और वह तुरन्त अपनी सेना के आगे पानी में कूद पड़ा रामदयाल एक चट्टान पर से भरभराकर पत्थरों से टकराता हुआ पानी में जा गिरा और फिर कभी नही देखा गया।

नदी की वह छोटी धार उतराते हुये सिपाहियों से भर गई। कोई कूदते जा रहे थे, कोई तैरते और कोई गढ़ी के नीचे पहुंचते जा रहे थे।

उधर खुली और विस्तृत जगह पाकर कुञ्जरसिंह देवीसिंह पर वार करने लगा। दलीपनगर और कालपी के भी कुछ सैनिक लड़ते-लडते इसी ओर आ रहे थे ढालू चट्टान के धारवर्ती छोर की ओर कुमुद सरकती जा रही थी और पीछे-पीछे अलीमर्दान। वह शीघ्र गति से और अलीमर्दान हथियारों के बोझ के मारे जरा धीरे धीरे।

कुञ्जरसिंह ने देवीसिंह पर वार करते-करते उस ओर देखा। हाथ शिथिल हो गया। हाँपते-हाँपते बोला—'प्रलय हुआ चाहती है।'

'अभी,एक क्षण की भी कसर नहीं।' देवीसिंह ने कहा और तलवार का भरपूर हाथ दिया। कुञ्जरसिंह का सिर धड़ से कटकर अलग जा पड़ा। गले की माला छिन्न हो गई। सूखे हुये फूल पर रक्त का छींटा पड़। सूर्य की किरण में वह चमक उठी मानों अनेक रश्मियों की ज्योति उसमें समा गई हो।

अलीमर्दान और कुमुद के बीच में अभी कई डगों का अन्तर था। देवीसिंह उसी ओर लपका।

कुमुद शान्त गति से ढालू चट्टान के छोर पर पहुंच गई। अपने विशाल नेत्रों की पलकों को उसने ऊपर की ओर उठाया। उङ्गली में पहनी हुई अंगूठी पर किरणे फिसल पड़ीं। दोवों हाथ जोड़कर उसने धीमें धीमें स्वर में गाया—

'मलिनिया, फुलवा ल्याओ नन्दन वन के।
बीन–बीन फुलवा लगाई वड़ी रास;
उड़ गये फुलवा, रह गई बास।'

उधर तान समाप्त हुई, इधर उस अथाह जल-राशि में पैंजनी का 'छम्म' से शव्द हुआ। धार ने अपने वक्ष को खोल दिया और तान-समेत उस कोमल कण्ठ को सावधानी से अपने कोश में रख लिया!

ठीक उसी समय वहाँ अलीमर्दान भी आ गया। घुटना नवाकर उसने कुमुद के वस्त्र को पकड़ना चाहा, परन्तु बेतवा की लहर ने मानो उसे फटकार दिया। मुट्ठी बाँधे खड़ा रह गया।

इतने में रक्त से रङ्गी तलवार लिये हुये देवीसिंह आ पहुंचा। अली-मर्दान ने तलवार-समेत अपने दोनो हाथों को अपनी छाती पर कसकर कहा—'आप—'राजा देवीसिंह है?'

'हाँ सम्भालो।' देवीसिंह ने उत्तर दिया।

'क्या झलक थी महाराज !' लड़ने का कोई भी लक्षण न दिखलाते हुये अलीमर्दान बोला—'बहुत हो चुकी । अब बन्द करिये । आप दलीपनगर पर राज्य करिये । हम लोग लड़ना नहीं चाहते । भ्रम ने हमारे-आपके बीच में बैर खड़ा कर दिया था ।'

दोनों पक्षों के सैनिक मतवाले से दौड़ते चले आ रहे थे । अलीमर्दान ने निवारण करने के लिये जोर से कहा—'दूर रहो । चट्टान की उस छोटी-सी खोह पर जो मिट्टी है, उसके पास मत आना । उसमें पद्मिनी के पैर का और सरकने का चिन्ह बना हुआ है । उससे दूर रहना ।'

तलवार नीची करके देवीसिंह ने कहा—'पद्मिनी का नाम आपके मुँह से अच्छा नही लगता नवाब साहब । आप ही ने उनके प्राण लिये है आप यहाँ से जाइये । यह स्थान हमारी पूजा की चीज है ।'

'अवश्य ।' अलीमर्दान क्षीण हँसी हँसकर बोला—'तभी आपकी तोपों ने उसकी एक-एक ईंट धूल में मिला दी है ।'

सैनिको की भीड़ बढ़ती चली जा रही थी, परन्तु वे लड़ नही रहे थे । रण का उत्साह एक अनिश्चित उत्सुकता में परिवर्तित हो गया था, एक ओर से घायल लोचनसिंह और दूसरी ओर से लहू लुहान मुसलमान नायक वहाँ आये । नायक ने अपने नवाब से कहा—'क्या चली गई ? चिड़िया हाथ से उड़ गई ? लड़ाई क्यों बन्द कर दी गई ?'

लोचनसिंह ने लपककर सरदार पर तलवार का वार किया और कहा—'यह उड़ी चिड़िया ।' वह हत होकर गिर पड़ा ।

दोनों ओर के सैनिक ऊँचे-नीचे इधर-उधर भिड़ गये । अलीमर्दान ने तलवार नहीं उठाई । अपने सैनिकों को रोकते हुये बोला—'लड़ाई बन्द करो । महाराज देवीसिंह के साथ हमारी सन्धि हो गई है ।' फिर पास खड़े हुये देवीसिंह से कहा—'रोकिये अपने सिपाहियों को । नाहक खून खराबी को बचाइये । देखिये, अपने प्यारे सरदार को अपनी आँख के सामने मारे जाते हुये भी क्रोध नही आ रहा है ।'

देवीसिंह ने कड़ककर लोचनसिंह से कहा—'तुम्हारे जैसा मूर्ख पशु ढूंढ़ने पर नहीं मिलेगा। शान्त हो जाओ, नहीं तो तुम्हारे ऊपर मुझे हथियार उठाना पड़ेगा।'

'उसने हमें वहुत सताया था, इसलिये मार दिया।' लोचनसिंह वोला-'छोटी रानी को समाप्त कर ही आये है। अव यदि नवाव साहव के मन में कोई साध हो, तो इनके लिये भी तैयार हूं।'

'निकल जाओ यहाँ से पशु।' देवीसिंह ने क्रुद्ध होकर कहा—'नहीं तो किसी से निकलवाऊँ? जनार्दन? कहाँ है जनार्दन?'

भीड के एक कोने से आहत जनार्दन सामने आ गया। परन्तु राजा और मन्त्री में कोई बात नही होने पाई, बीच में ही लोचनसिंह वोल उठा—ऐसे कृतघ्न राजा के राज्य में जो रहे, उसे धिक्कार है। यह पड़ी है पत्थरों पर तुम्हारी चामुण्डराई।' और उसने अपने फेंटे को वड़ी अवहेलना से चट्टान पर फेंक दिया। वह फरफराकर धार में वह गया। लोचनसिंह तीव्र से वहाँ से अदृश्य हो गया।

अलीमर्दान और देवीसिंह के वीच कुछ शर्तों के साथ सन्धि स्थापित हो गई। सब लोग लौटकर धीरे-धीरे चले। अभी ढालू चट्टान के सिरे पर पहुंच न पाये थे कि कुछ सिपाही अचेत, आहत गोमती को देवीसिंह के सामने ले आये।

'क्या महारानी?' देवीसिंह ने पूछा—'पुरस्कार के लिये ले आये हो? मिलेगा, पर यहाँ से सवको ले जाओ।'

'रानी नहीं है महाराज!' एक सैनिक ने उत्तर दिया—'उनका रुण्ड तो उस पार पड़ा है। यह कोई और है। कहती थी राजा के पास ले चलो, वदला लेना है। इतना कहकर अचेत हो गई। इसके पास तमञ्चा था। वह हमने ले लिया है।'

देवीसिंह ने जरा वारीकी के साथ देखा। एक आह ली और कहा-'मरणासन्न है।'

सैनिकों ने अचेत गोमती को नीचे रक्खा। देवीसिंह ने उसके सिर पर हाथ फेरा। एक क्षण वाद गोमती ने आँखें खोलीं। भूली-भटकी हुई दृष्टि। फिर तुरन्त वन्द कर ली। एक वार मुंह से धीरे से निकला—'रामदयाल!' और वह अस्त हो गई।

अलीमर्दान अपनी सेना लेकर चला गया देवीसिंह दाँगी वीरों के शवों के पास गया। सिर नवाकर उसने प्रणाम किया। उसके सव सैनिकों ने नतमस्तक होकर नमस्कार किया।'

देवीसिंह ने कहा—'अपनी वान पर अटल थे ये। अपनी वान पर निश्चलता के साथ ये मरे। इन्हें मरने में जैसा सुख मिला होगा हमें कदाचित् जीवन मे भी न मिलेगा। वहुत समारोह के साथ इनकी दाह-क्रिया की जानी चाहिये।' देवीसिंह का गला भर आया।

फिर संयत होकर थोड़ी देर में वोला—'विराटा का गाँव किसी अन्य को जागीर में कभी नहीं दिया जायगा। जव तक दाँगियों में कोई भी वचेगा, उसी के हाथ में यह गांव रहेगा।'

फिर जनार्दन शर्मा और अपने सरदारों को वह उस स्थान पर ले गया जहाँ जाकर कुमुद ने आत्म-वलिदान किया था। वह स्थान मन्दिर के सामने जरा हटकर दक्षिण की ओर था। ढालू चट्टान पर वारीक मिट्टी का एक वहुत हल्का घर जमा था। उस पर कुमुद के पद और सरकने के चिन्ह अङ्कित थे। दह की लहरें सजग और चपल थीं। देवीसिंह को रोमांच हो आया। उस ओर उङ्गली से संकेत करते हुये जनार्दन से कहा—'देवी ये अन्तिम चिन्ह छोड़ गई हैं लहरें कुछ कह सी रही हैं। उनके नीचे से पैंजनी की ध्वनि अब भी आती जान पड़ती है।'

जनार्दन थके हुये स्वर में वोला—'महाराज, हम लोगों के आने में वहुत विलम्ब हो गया।'

'जनार्दन।' राजा ने कहा—'कुञ्जरसिंह की नादानी ने मेरी सारी योजना पर पानी फेर दिया।' दह की लहरों पर से आँख को हटा कर एक क्षण बाद बोला—'इन चिन्हों को इस चट्टान पर ज्यों का त्यो अङ्कित करवा देना चाहिये। लोग पर्वों पर आकर इस पुण्य-स्मृति से अपने को पवित्र किया करेंगे।'

'जो आज्ञा।' जनार्दन ने उत्तर दिया। देवीसिंह ने दह की ओर देखा।

अभी-अभी थोड़ी देर पहले किसी की उँगली की अँगूठी ने सूर्य की किरणों से होड़ लगाई थी। अभी-अभी थोड़ी ही देर पहले उस जलराशि पर 'छम्म' से कुछ हुआ। किसी आलौकिक सौन्दर्य का उस शब्द के साथ सम्बन्ध था और लहरों पर पवन में वह गीत गूँज रहा था—

'उड़ गये फुलवा, रह गई बास।'